17 नवंबर - 2 दिसंबर 2020, कुल पृष्ठ : 148, मूल्य : 2\-

वर्ष-43 अंक - 16-17(संयुक्तांक)

नैतिक एवं सामजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

जैन पथप्रदर्शक

ए-४ बापू नगर जयपुर - 302015(राज.)

सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा

सहजता विशेषांक

अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंद भारिल्ल

21-11-1932 जीवन यात्रा 12-11-2019

जैन पथप्रदर्शक

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

–: संस्थापक सम्पादक :–

अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंद भारिल्ल

सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

सह–सम्पादक:

पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल

सम्पादक मंडल:

डॉ. शान्तिकुमार पाटिल

श्री अखिल बंसल

पण्डित पीयूष शास्त्री

प्रकाशक व मुद्रक: ब्र. यशपाल जैन द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि. जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४ बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें –

ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

फोन :(0141) 2705581, 2707458

E-Mail : ptstjaipur67@gmail.com

शुल्क :

आजीवन शुल्क : २५१ रुपये

वार्षिक शुल्क : २५ रुपये

एक प्रति : २ रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी: 3500

सहज पुरुष को शत शत नमन

जैन पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचन
अरिहन्त चैनल पर
प्रात: 6:08 से 6:38 तक

Ptst Youtube पर
पुन: प्रसारण 2.30 से 3.00 तक
प्रात: 9 से 10 तक समयसार पर
दोपहर 3 से 4 तक प्रवचनसार पर

21-11-1932

12-11-2019

अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंद भारिल्ल

सहजता विशेषांक

सम्पादक
डॉ. संजीवकुमार गोधा

सह-सम्पादक
पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल

सम्पादक मण्डल
डॉ. शान्तिकुमार पाटील
श्री अखिल बंसल
पण्डित पीयूष शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	तीर्थंकर स्तवन	पण्डित रतनचंद भारिल्ल	7
	सम्पादक एवं सम्पादक मण्डल		
1	चिरकाल तक उनके ऋणी रहेंगे	डॉ. संजीवकुमार गोधा, जयपुर	10
2	बड़े दादा	परमात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर	11
3	इन्द्रधनुष-सा सतरंगी अध्यात्मरत्न	डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, जयपुर	13
4	उनका साहित्य सदैव प्रेरणा देता रहेगा	अखिल बंसल, जयपुर	16
5	प्रथमानुयोग के सुयोग्य शिल्पी : पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल	पीयूष शास्त्री, जयपुर	17
	परिवारजन की दृष्टि में		
6	जहाँ रहें, अपने में रहें	डॉ. हुकमचंद भारिल्ल	19
7	श्रद्धेय पूजनीय दादा के बारे में क्या लिखूं	कमलाबाई भारिल्ल, जयपुर	20
8	सादा जीवन उच्च विचार	गुणमाला भारिल्ल, जयपुर	20
9	मेरे तात के प्रति	अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल, मुम्बई	23
10	दादा जीत गये जीवन की इस रेस को	शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर	24
11	स्वनाम धन्य थे बड़े दादाश्री	सुरेश पाटनी, कलकत्ता	25
12	उनकी रिक्तता बहुत शोर मचाती है	सध्या भारिल्ल, जयपुर	26
13	मेरे जीवन-शिल्पी	सुनील शास्त्री, ग्वालियर	27
14	नित्य स्वाध्याय की प्रेरणा मिली	सुरेशचंद जैन, बैंगलोर	28
15	एक अविस्मरणीय छवि	अविनाश टडैया, मुम्बई	28
16	तुम कर सकती हो	डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई	29
17	स्वाध्याय का सही अर्थ समझा	समता सौगानी, जयपुर	29
18	सरलता विनम्रता व शांतिप्रियता सीखें	सरिता जैन, ग्वालियर	30
19	हमारे कबीरा - बड़े दादा	स्वानुभूति जैन, मुम्बई	30
20	दादा तो वे सिर्फ मेरे हैं	सर्वज्ञ भारिल्ल, जयपुर	31
21	मेरे दादा	चेरी भारिल्ल, जयपुर	32
22	पद, प्रतिष्ठा एवं ज्ञान का मद नहीं था	रवीन्द्र कुमार सौगानी, जयपुर	33
23	मेरे दादा की जगह कोई नहीं ले सकता	सर्वदर्शी भारिल्ल, जयपुर	33
24	चित्त से नहीं उतरती है	अध्यात्मप्रभा जैन, मुम्बई	34
25	बड़े दादा	पूजा भारिल्ल, जयपुर	34
	विद्वत् एवं श्रेष्ठी वर्ग की दृष्टि में		
26	साहित्य सृजन में अविस्मरणीय योगदान	अशोक गहलोत (मुख्यमंत्री - राज.)	35
27	दिशा देने का कार्य किया	प्रदीप जैन 'आदित्य', झांसी	35
28	उनके बताये मार्ग पर चलें	कालीचरण सर्राफ, जयपुर	36
29	'ऐसे क्या पाप किए' कृति का विहंगावलोकन	ब्र. यशपाल जैन, जयपुर	36
30	सबके प्रिय श्री बड़े दादा	बसंतलाल एम. दोशी, मुम्बई	42
31	ज्ञान गरिमामय सरल व्यक्तित्व का अभिनन्दन	पवन जैन, मंगलायतन	43
32	बच्चों की प्रतिभा निखारकर विद्वान बनाया	अनंतराय ए. शेठ, मुम्बई	43
33	आदर्श श्रावक	एन.के. सेठी, जयपुर	44
34	भावपूर्ण श्रद्धांजलि	अजित जैन, बड़ोदरा	44
35	अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंद भारिल्ल	महेन्द्रकुमार पाटनी, जयपुर	45
36	संस्कृत श्लोक	मंथन गाला, मुम्बई	45
37	महामना पण्डित श्री रतनचंदजी भारिल्ल	अशोक बड़जात्या, इन्दौर	46
38	मेरी नजर में बड़े दादा	सुशीलकुमार गोदिका, जयपुर	48
39	मेरे लिये सदैव आदर्श पुरुष	प्रेमचन्द बजाज, कोटा	48
40	भ्रातृत्व-प्रेम की मिसाल	अशोक पाटनी, सिंगापुर	49
41	बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल - सरलता की त्रिवेणी	महिपाल ज्ञायक, बांसवाड़ा	49
42	मार्गदर्शन और संबल प्रदान किया	डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर	50
43	बड़े दादा ज्ञानशरीर से जीवित हैं	डॉ.सत्यप्रकाश गुप्ता(कुरुक्षेत्र विश्व.)	50
44	बड़े दादा के बारे में	अतुल खारा, डलास-अमेरिका	51
45	सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति	प्रो. फूलचंद जैन 'प्रेमी', वाराणसी	51
46	द्रव्यदृष्टि : एक अनुपम कृति	ब्र. हेमचंद 'हेम', देवलाली	52

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
47	मुमुक्षु गगन सितारे	रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर	55
48	आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल को श्रद्धा सुमन	राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर	56
49	सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा मिली	आई.एस. जैन, मुम्बई	57
50	ये दिन भी न रहेंगे	नरेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर	57
51	विदिशा में पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के सत्रह वर्ष	शिखरचंद जैन, विदिशा	58
52	सरलता की प्रतिमूर्ति थे बड़े दादा	अनूपचंद जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद	59
53	चिरवियोग, चिरसयोग में बदल सकता है	राहुल गंगवाल, जयपुर	59
54	हमारे साथ ही हैं	बाधर परिवार, जामनगर	60
55	जीवन जीने की कला सिखायी	संजय दीवान, सूरत	60
56	अन्तर्बाह्य कोमल जीवन	कुसुम-प्रदीप चौधरी, किशनगढ	61
57	धर्मनिष्ठ श्रावक	कमलबाबू जैन, राज.जैनसभा, जयपुर	61
58	हर चीज में बड़े - हमारे बड़े दादा	संस्कृति गोधा, जयपुर	62
59	अध्यात्मरत्नाकर : प्रखर विद्वान पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल	एम.सी. जैन पत्रकार, चिकलठाणा	63
60	प्रभावक प्रवाचक : पण्डित रतनचंद भारिल्ल	डॉ. राजीव प्रचण्डिया, अलीगढ	63
61	शांत स्वभावी, जिनवाणी के सच्चे सपूत पण्डित रतनचंद भारिल्ल	कमलचंद जैन, पिड़ावा	64
62	आदरणीय मेरे जीजाजी	प्रकाशचन्द जैन, मैनपुरी	64
63	अध्यात्म जगत का एक सितारा टूट गया	अशोक जैन, जबलपुर	65
64	जब पण्डितजी ने मेरे गृहीत मिथ्यात्व की विदाई की घोषणा की	लालाराम साहू मधुप एडवोकेट, इन्दौर	66
65	सहज और निश्छल : बड़े दादा	ब्र. विमलाबेन, जयपुर	67
66	विदाई की बेला : घाव पर मरहम का काम करती है	राजकुमारी जैन, सनावद	68
67	वात्सल्यपुंज बड़े दादा	डॉ. ममता जैन, उदयपुर	69
68	अध्यात्म के पुरोधा पुरुष	महेन्द्र चौधरी, भोपाल	70
69	पण्डित रतनचंदजी चारों अनुयोगों का सार छोड़ गये हैं	भानुकुमार जैन, कोटा	71
70	उनका जीवन एक उदाहरण था	अभयकरण सेठिया, सरदारशहर	71
71	बड़े दादा का वियोग, अपूरणीय क्षति	जम्बूकुमार पाटोदी, रतलाम	72
72	शांत-शीतल स्वभाव के धनी	सुशीलाबाई ध.प. स्व.जवाहरलालजी	72
73	सहज पुरुष की सहजता	प्रीति-संजय जैन, जयपुर	73
74	पुस्तकों से ही नहीं, जीवन से भी सिखाया है	ऋचा जैन, सियटल (अमेरिका)	73
75	सरल रेखा से सरल थे	बाबूलालजी बांझल, गुना	74
	चित्र खण्ड		75-82
	शिष्य समुदाय की दृष्टि में		
76	सहजता की मूर्ति अध्यात्मरत्नाकर पं.रतनचंदजी भारिल्ल	जतीशचंद शास्त्री, सनावद	83
77	आदरणीय बड़े दादा...	अभयकुमार शास्त्री, देवलाली	85
78	अत्यन्त सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी	डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर	86
79	'मुकुर'ज्ञानियों की मृत्यु शोक का विषय नहीं होती	डॉ. वीरसागर जैन, दिल्ली	87
80	जल से कमल भिन्न है बड़े दादा रतनचन्दजी का दिल	अशोक लुहाड़िया, मंगलायतन	88
81	हमारे आदर्श बड़े दादा	रमेशचंद शास्त्री 'दाऊ', जयपुर	89
82	बड़े दादा का जाना...	राजकुमार शास्त्री, उदयपुर	89
83	साहित्य साधक तपस्वी	डॉ. महावीरप्रसादजी शास्त्री, उदयपुर	91
84	बड़े दादा बड़े क्यों ?	अजित शास्त्री, अलवर	93
85	प्रेरणादायी व्यक्तित्व	रतन चौधरी, भोपाल	94
86	बड़े दादा का जीवन : खुली किताब	डॉ. सतीश कुमार जैन, अलीगढ़	95
87	सहजता के पर्याय और स्वतंत्रता के उद्घोषक साहित्यकार	डॉ. महेन्द्र जैन 'मुकुर'	97
88	आत्मैव आत्मन: गुरु:.....बोधप्रदाता बड़े दादा	सुनील जैनापुरे, राजकोट	100
89	वात्सल्य के सागर बड़े दादाश्री	संजय शास्त्री, जेवर	101
90	मृदुता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति : बड़े दादा	डॉ. शुद्धात्मप्रकाश शास्त्री, मुम्बई	102
91	पुस्तकों से जीवन परिवर्तन हुआ	राजेश शास्त्री, शाहगढ	103
92	सरलता के प्रतीक बड़े दादा	डॉ. दीपक जैन 'वैद्य', जयपुर	104
93	याद है उनकी पहली डांट	प्रो अनेकांत कुमार जैन, नई दिल्ली	105
94	हम कैसे भूल सकते हैं ?	सुधीर शास्त्री, मंगलायतन	106

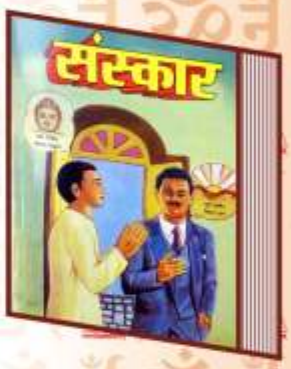

संस्कार विहीन पीढ़ी स्वयं तो संकटग्रस्त है ही परिवार और समाज के लिये भी घातक सिद्ध हो रही है, अतः समाज की सुरक्षा के लिये भावी पीढ़ी को सुसंस्कार देने की महती आवश्यकता है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
95	बड़े हृदय के बड़े दादा	धर्मेन्द्र शास्त्री, कोटा	107
96	उनकी एक छोटी-सी कलम	सोनू शास्त्री, सोनगढ	108
97	सहजता की प्रतिमूर्ति	विपिन शास्त्री, नागपुर	109
98	जीवन के शिल्पकार	डॉ. मनीष शास्त्री, मेरठ	110
99	बोलती तस्वीरें	शुद्धात्म जैन शास्त्री, ग्वालियर	110
100	मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह बड़े दादा के कारण हूँ	डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री, उदयपुर	111
101	ज्ञानपिपासु	डॉ. ऋषभ शास्त्री, ललितपुर	112
102	बहुत याद आएँगे 'बड़े दादा'	डॉ. प्रवीणकुमार शास्त्री, बांसवाड़ा	113
103	सुखी जीवन : एक सार्थक कृति	डॉ. प्रमोद शास्त्री, जयपुर	114
104	सरल स्वभावी दादाजी	श्रीमन्त नेज शास्त्री, जयपुर	116
105	निश्छलता की जीवंत मूर्ति	निलय शास्त्री, आगरा	116
106	थे बोल में सुन्दर सहज	सौरभ शास्त्री, फिरोजाबाद	117
107	बड़े दादाश्री का व्यापक प्रभाव	डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मंगलायतन	117
108	जब कोई फूल मेरी शाख ए हुनर पर निकला	अंकुर जैन, भोपाल	118
109	ऐसी सरलता और कहाँ?	विवेक शास्त्री, इन्दौर	120
110	सबके वन्दनीय गुरुवर्य	परिणति जैन, विदिशा	121
111	एक अनमोल रतन	प्रतीति जैन मोदी, नागपुर	121
112	अन्तरंग-बहिरंग सरलता की दिव्य चमक	जिनकुमार शास्त्री, जयपुर	122
113	सदी के महानायक पुरुषोत्तम आदरणीय दादाश्री	शुभम शास्त्री ज्ञानोदय, भोपाल	124
114	सहजता की प्रतिमूर्ति -बड़े दादा	रूपेन्द्र शास्त्री, जयपुर	125
115	अध्यात्म के बीजारोपक	नीशू शास्त्री, जयपुर	126
116	स्वाभाविक विद्वान : आदरणीय बड़े दादा	जिनेन्द्र शास्त्री, जयपुर	126
117	मेरे लिए हमेशा शिक्षाप्रद बड़े दादा का जीवन	गौरव उखलकर, जयपुर	127
118	बुन्देलखण्ड गौरव : आदरणीय बड़े दादा	अमित जैन 'अरिहंत', मड़ावरा	128
119	यह एक युग का ही अंत है	अनुभव शास्त्री, खनियाँधाना	129
120	सहजता के प्रतीक बड़े दादा	आकाश शास्त्री, हलाज	130
121	खोज प्रवृत्ति से सीखें	हितंकर शास्त्री, उदयपुर	131
122	रतनरंगम : कलाओं की आज़ादी का मंच	पवित्र जैन, आगरा	132
123	एक आधारात्मक एवं विषयात्मक अध्ययन	मानस जैन, बांसवाड़ा	133
124	मुझे कुछ कहना है	प्रो. सुदीपकुमार जैन, नई दिल्ली	134
125	रतन से पारसमणि हुए	समयसत्य प्रधान, शाश्वतधाम-उदयपुर	135
126	**मैंने देखा है**	**बाहुबली भोसगे, कर्नाटक**	136
127	दीप यूँ जलते रहेंगे	विराग शास्त्री, जबलपुर	137
128	एक छोटी सी शाब्दिक श्रद्धांजलि	गणतंत्र शास्त्री, आगरा	138
129	प्रकृति के अनुपम उपहार आ. बड़े दादा	संयम जैन, गुढाचन्द्रजी	139
130	कल भी थे कल भी होंगे दादा	समकित शास्त्री, खनियांधाना	139
131	सदा अमर रहेंगे...	अमित शास्त्री, गुना	140
132	वो सच्चे नायक थे	अभिषेक जैन, देवराहा	142
133	बड़े दादा के लिये	बिपाशा जैन, शाश्वतधाम-उदयपुर	142
	विभिन्न संस्थाओं की दृष्टि में		
134	सुबोध शैली के धनी	चैतन्यधाम, गांधीनगर	143
135	सौम्यता की प्रतिमूर्ति	खुरई गुरुकुल	143
136	अपना जीवन धन्य किया	मुमुक्षु मण्डल, दिल्ली	144
137	साहित्य जगत में अविस्मरणीय योगदान	ज्ञानोदय महाविद्यालय, दीवानगंज	144
138	व्यवहार कुशल व्यक्तित्व	राजस्थान चैम्बर ऑफ कॉमर्स	144
139	सादा जीवन उच्च विचार	सिद्धायतन परिवार, द्रोणगिरि,	145
140	विदाई की बेला	शासन प्रभावना ट्रस्ट, इन्दौर	145
141	सच्चे एवं अच्छे धर्मविद्या गुरु - हमारे बड़े दादा	गजपंथा फाउन्डेशन ट्रस्ट	145
	मेरा धाम	पण्डित रतनचंद भारिल्ल	146

तीर्थंकर स्तवन

– पण्डित रतनचंद भारिल्ल

जो मैं वह परमातमा, जो जिन सो मम रूप।
चिदानन्द चैतन्यमय, सत् शिव शुद्ध स्वरूप।।

श्री आदिनाथ स्तवन

सकल कर्म जिनने धो डाले, वे हैं आदिनाथ भगवान।
लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान।।
तीर्थंकर पद के धारक प्रभु! दिया जगत को तत्त्वज्ञान।
दिव्यध्वनि द्वारा दर्शाया, प्रभुवर! तुमने वस्तु विज्ञान।।

श्री अजितनाथ स्तवन

अनन्तधर्ममय मूल वस्तु है, अनेकान्त सिद्धान्त महान।
वाचक-वाच्य नियोग के कारण, स्याद्वाद से किया बखान।।
आचार अहिंसामय अपनाकर, निर्भय किये मृत्यु भयवान।
परिग्रह संग्रह पाप बताकर, अजित किया जग का कल्याण।।

श्री संभवनाथ स्तवन

जिनका केवलज्ञान सर्वगत, लोकालोक प्रकाशक है।
जिनका दर्शन भव्यजनों को, निज अनुभूति प्रकाशक है।।
जिनकी दिव्यध्वनि भविजन को, स्व-पर भेद परिचायक है।
उन जिनवर संभवनाथ प्रभु को, नमन हमारा शत-शत है।।

श्री अभिनन्दननाथ स्तवन

मैं हूँ स्वतंत्र स्वाधीन प्रभु, मेरा स्वभाव सुखनन्दन है।
राग रंग अरु भेदभाव में, भटकन ही भव बन्धन है।।
यह तथ्य बताया है जिनने, वे तीर्थंकर अभिनन्दन हैं।
त्रैलोक्य दर्शि अभिनन्दन को, मेरा वन्दन अभिवन्दन है।।

श्री सुमतिनाथ स्तवन

जो जानते हैं सुमतिजिन के, जिनवचन को ज्येष्ठतम।
जो मानते हैं सुमति जिनकी, साधना को श्रेष्ठतम।।
जिनके परम पुरुषार्थ में, निज आत्मा ही है प्रमुख।
वे मुक्तिपथ के पथिक हैं, संसार से वे हैं विमुख।।

श्री पद्मप्रभ स्तवन

महामोह के घने तिमिर को, सम्यक् सूर्य भगाता है।
ज्ञान दीप जगमग ज्योति से, मुक्तिमार्ग मिल जाता है।।
मोह नींद में सोये जग को, दिनकर दिव्य जगाता है।
पद्मप्रभ की शरणागत से, भवबन्धन कट जाता है।।

श्री सुपार्श्वनाथ स्तवन

सर्वज्ञ समदर्शी सुपारस, शिवमग बताते जगत को।
सप्तम सुपारस है वही, भगवन बनाते भगत को।।
पत्थर सुपारस है वही, सोना करे जो लोह को।
भगवन सुपारस है वही, भस्मक करे जो मोह को।।

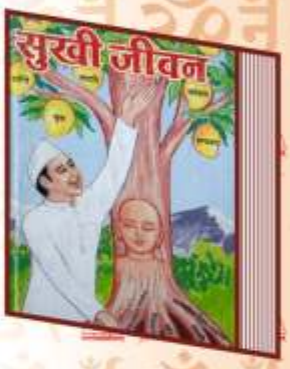

जो पूजा का सही स्वरूप और प्रयोजन समझकर प्रतिदिन भगवान के दर्शन-पूजन करता है, वह एक न एक दिन स्वयं भगवान बन जाता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

चन्द्र जिनका चिह्न है, वे चन्द्रप्रभ परमात्मा।
जो पूजता उनके चरण, वह आत्मा परमात्मा।।
जो चलें उनके चरण-पथ पर, वे भव्य अन्तरात्मा।
जो जानता उनको नहीं, वह व्यक्ति है बहिरात्मा।।

श्री सुविधिनाथ स्तवन

अष्टविधि से रहित हो, फिर भी कहाते सुविधि नाथ।
तिल-तुष परिग्रह भी नहीं, फिर भी कहाते जगतनाथ।।
जो शरण उनकी गहत है, वह होत भवदधि पार है।
अक्षय अनन्त ज्ञायक प्रभु की, वन्दना शत बार है।।

श्री शीतलनाथ स्तवन

चन्दनसम शीतल हो प्रभुवर, चन्द्र किरण से ज्योतिर्मय।
कल्पवृक्ष से चिह्नित हो अरु, सप्तभयों से हो निर्भय।।
तुमसा ही हूँ मैं स्वभाव से, हुआ आज मुझको निर्णय।
अब अल्पकाल में ही होगा प्रभु, मुक्तिरमा से मम परिणय।।

श्री श्रेयांसनाथ स्तवन

कोई किसी का नाथ नहीं, फिर भी तुम नाथ कहाते हो।
श्रेयेस्कर कर्तृत्व नहीं, फिर भी श्रेयांस कहाते हो।।
जिनवाणी का वक्तृत्व नहीं, पर मोक्षमार्ग दर्शाते हो।
अरस अरूपी हो प्रभुवर! अमृत रसधार बहाते हो।।

श्री वासुपूज्य स्तवन

वस्तुस्वातंत्र्य सिद्धांत महा, कण-कण स्वतंत्र बतलाता है।
फिर कोई किसी का कर्ता बन, कैसे सुख-दु:ख का दाता है?
हो वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, अत: बन गये परम पूज्य।
सौ इन्द्रों द्वारा पूज्य प्रभो! इसलिये कहाये वासुपूज्य।।

श्री विमलनाथ स्तवन

हे विमलनाथ! तुम निर्मल हो, कोई भी कर्मकलंक नहीं।
हो वीतराग सर्वज्ञदेव, पर का किंचित् कर्तृत्व नहीं।।
निर्दोष मूलगुणचर्या से, मुनिमार्ग सिखाया है तुमने।
द्वादशांग जिनवाणी से, शिवमार्ग बताया है तुमने।।

श्री अनन्तनाथ स्तवन

अनन्त चतुष्टय आलम्बन से, जीते क्रोध काम कल्मश।
भेदज्ञान क बल से जिसने, जीते मोह मान मत्सर।।
शुक्ल ध्यान से जो करते हैं, घाति-अघाति कर्म भंजन।
ऐसे अनन्त नाथ जिनवर को, मन-वच-काया से वन्दन।।

श्री धर्मनाथ स्तवन

दया धरम है दान धरम है, प्रभु पूजा धर्म कहाता है।
सत्य अहिंसा त्याग धरम, जन सेवा धर्म कहाता है।।
ये लोक धरम के विविध रूप, इनसे जग पुण्य कमाता है।
शुद्धातम का ध्यान धरम, बस यही एक शिवदाता है।।

श्री शान्तिनाथ स्तवन

निज स्वरूप सरवर में जिनवर, नियमित नित्य नहाते हो।
अपने दिव्य बोधि के द्वारा, विषय-विकार बुझाते हो।।
परम शान्त मुद्रा से मुद्रित, शान्ति-सुधा बरसाते हो।
परम शान्ति हेतु होने से, शान्तिनाथ कहलाते हो।।

देवेन्द्रचक्र से चयकर प्रभु ने, पुनर्जन्म का अन्त किया।
राजेन्द्रचक्र को त्याग कुन्थु ने, मुक्तिमार्ग स्वीकार किया।।
धर्मेन्द्रचक्र को धारणकर, जिनशासन का विस्तार किया।
सिद्धचक्र में शामिल होकर, निजानन्द रसपान किया।।

श्री कुन्थुनाथ स्तवन

श्री अरनाथ स्तवन

हे अरनाथ! जिनेश्वर तुमने, छह खण्ड छोड़ वैराग्य लिया।
चक्र सुदर्शन त्यागा तुमने, धर्मचक्र शिरधार लिया।।
सिद्धचक्र के साधनार्थ प्रभु सकल परिग्रह त्याग दिया।
शुक्लध्यान की सीढी चढ, सुखमय अर्हत् पद प्राप्त किया।।

हे मल्लिनाथ! तुम परमपुरुष, हे मंगलमय हो प्रभुवर आप।
भक्तिभावना से हे भगवन, भक्तजनों के कटते पाप।।
प्रभो! आपका भक्त कभी भी, अधोगति नहीं जाता है।
निजस्वभाव को पाकर प्रभुवर, शीघ्र मुक्तिपद पाता है।।

श्री मल्लिनाथ स्तवन

श्री मुनिसुव्रतनाथ स्तवन

मिथ्यादर्शन-क्रोध-मान को, दुःखद बताया हे जिननाथ।
माया-लोभ कषाय पाप का, बाप बताया सुव्रतनाथ।।
शरण आपकी पाने से, भविजन होते भव सागर पार।
हे मुनिसुव्रतनाथ! आपको, वन्दन करते सौ-सौ बार।।

हे नमि! तेरी अर्चन-पूजन, पापों से हमें बचाती है।
समयसार की सात्त्विक चर्चा, शिव सन्मार्ग दिखाती है।।
जिनवर! तेरी दिव्यध्वनि मम, मोह तिमिर हर लेती है।
भवभ्रमण का अन्त कराकर, मोक्ष सुलभ कर देती है।।

श्री नमिनाथ स्तवन

श्री नेमिनाथ स्तवन

तीन लोक में सार बताया, वीतराग विज्ञानी को।
भव सागर में दुःखी बताया, मिथ्यात्वी अज्ञानी को।।
मुक्तिमार्ग का पथिक बताया, स्व-पर भेदविज्ञानी को।
सहज स्वभाव सरलता से सुन! नेमिनाथ की वाणी को।।

पारस पत्थर छूने से ज्यों, लोह स्वर्ण हो जाता है।
पार्श्वप्रभु की शरणागत से, पाप मैल धुल जाता है।।
जो भी शरण गहे पारस की, आनन्द मंगल गाता है।
पार्श्व प्रभु के आराधन से, पतित पूज्यपद पाता है।।

श्री पार्श्वनाथ स्तवन

श्री महावीर स्तवन

जो निज दर्शन ज्ञान चरित अरु, वीर्य गुणों से हैं महावीर।
अपनी अनन्त शक्तियों द्वारा, जो कहलाते हैं अतिवीर।।
जिसके दिव्य ज्ञान दर्पण में, नित्य झलकते लोकालोक।
दिव्यध्वनि की दिव्यज्योति से, शिवपथ पर करते आलोक।।

जिन सा निज को जानकर, जो ध्याते निजरूप।
वे पाते अरहन्त पद, भोगें सुख भरपूर।।

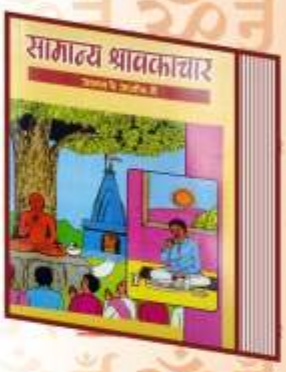

जो आज त्रिलोक पूज्य देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे ही कभी पतित, पापी और पशु-पर्याय में थे। अतः पाप तो घृणा योग्य हैं, पर पापी नहीं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सम्पादक एवं सम्पादक मण्डल

सम्पादकीय –

चिरकाल तक उनके ऋणी रहेंगे...

– डॉ. संजीवकुमार गोधा, जयपुर

सफेद खादी का कुर्त्ता-धोती और उसमें दुबली-पतली सुन्दर देह, सिर पर सफेद टोपी और चेहरे पर शाश्वत मुस्कान – ये थी जिनकी बाहरी पहचान। जैसा बाहर वैसा अन्दर, बालकवत् निश्छल छवि, अन्तर-बाह्य सरलता के धनी, **'जबान से नहीं, जीवन से उपदेश'** की उक्ति को चरितार्थ करनेवाले – ऐसे थे हमारे बड़े दादा, विद्वत्शिरोमणी पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल।

वे अनेक कालजयी कृतियों के अमर रचनाकार हैं। गुरुदेवश्री के समयसार पर प्रवचनों के लगभग 6000 पृष्ठों का हिन्दी अनुवाद कर प्रवचन रत्नाकर के 11 भागों के सम्पादन द्वारा उन्होंने मुझ जैसे हजारों हिन्दी प्रान्त के लोगों को गुरुदेवश्री से परिचय कराया, इसके लिए देश के समस्त हिन्दी भाषी **चिरकाल तक उनके ऋणी रहेंगे...**

यह मेरा सौभाग्य ही रहा कि उनके द्वारा लिखित 'सुखी जीवन', 'पर से कुछ सम्बन्ध नहीं', 'हरिवंश कथा', 'ये तो सोचा ही नहीं' आदि 20 से अधिक पुस्तकों को छपने से पूर्व लेखन काल में ही पढ़ने का अवसर मिला। अत्यन्त शारीरिक अस्वस्थता, हार्ट की प्रोब्लम एवं ऑपरेशन के बावजूद भी उनकी कलम कभी रूकी नहीं। बैठे हुए कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे, कभी चलते-फिरते दिखते तो भी हाथ में कोई किताब व प्रुफ के पेपरों के साथ...

तत्त्वज्ञान से भीगे महापुरुषों का जीवन कैसा होता है, यह उनको देखकर अनुमान लगाया जा सकता था। उनकी सौम्य शांत मुद्रा को देखकर विरोधियों का विरोध भी अपने आप ही मिट जाता था, यही कारण है कि उनका कभी किसी ने विरोध नहीं किया। जो थोड़ी देर के लिए भी उनके सम्पर्क में आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

मेरा तो अब तक का लगभग पूरा ही जीवन दोनों दादाओं के सान्निध्य में ही बीता है। बड़े दादा जैनपथप्रदर्शक के आद्य सम्पादक थे और मुझे उनका सहयोगी बनने का सौभाग्य मिला। 1996 से अब तक की लम्बी कालावधि में उनके जीवन से बहुत कुछ सीखने को मिला। आज वे आशीर्वाद के हाथ हमारे सिर पर नहीं हैं, फिर भी हम कैसे कहें कि वे हमारे बीच नहीं हैं।

दीपक होते तो कदाचित् बुझ जाते,
पर वे तो रत्न थे, रत्न कभी बुझा नहीं करते।
वे ऐसे रत्न थे जो सदा चमकते रहेंगे,
अपनी कृतियों में हमारी स्मृतियों में...।।

आज उनकी छवि आँखों के सामने घूम रही है। उनके उठने-बैठने, चलने-बोलने, जीवन की प्रत्येक क्रिया से सिर्फ सहजता...सहजता...सहजता... ही झलकती थी। सहजता और सरलता ही उनके आभूषण थे, उन्होंने जीवन के अंतिम समय (मरण) को भी घर पर जिनवाणी सुनते हुए सहजता से ही वरण किया। दादा की सहजता जग जाहिर थी, उन्हें देखते ही परिणामों में सहजता आ जाती थी; और अब सहजता शब्द सुनते ही उनकी याद आ जाती है। ऐसे सहज पुरुष के जन्मदिवस (21 नवम्बर) को सभी ने सहजता दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। उनकी स्मृति में हम यह **'सहजता विशेषांक'** प्रकाशित कर रहे हैं। इसके प्रकाशन में प्रत्यक्ष-परोक्ष सभी सहयोगियों का हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। ●

बड़े दादा

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर

अब तक हमारे पास था वो बिन्दास सा रतन
लाखों में वो बस एक था हरदास का रतन
तेजस्वी था वह सूर्य सा व चाँद सा शीतल
सिन्धु में अब खो गया वो नायाब सा रतन

कैसी विडम्बना है कि जिनका दादागिरि से कोई नाता ही नहीं रहा वो जिन्दगीभर बड़े दादा कहलाते रहे।

कौन कहता है कि ''बड़े दादा नहीं रहे''?

बड़े दादा मात्र व्यक्ति नहीं वरन् एक मौन साधना थे, एक वह मौन साधना जो अब अपने हजारों मनीषी शिष्यों के माध्यम से चिरकाल तक मुखरित होती रहेगी।

एक पिछड़े और अभावग्रस्त माहौल से अपनी जीवनयात्रा प्रारम्भ कर शिखर तक पहुंचने की यह सम्पूर्णक्रांति शान्तिपूर्वक ही संपन्न हुई, बिना किसी कोलाहल और शोरशराबे के।

यहाँ शिखर तक पहुंचने से मेरा तात्पर्य मात्र किसी भौतिक उपलब्धि से ही नहीं वरन् इसमें उनकी आत्मोत्थान की वह प्रक्रिया सम्मिलित है, जिसमें उन्होंने एक साधारण श्रावक के रूप में अपनी जीवनयात्रा प्रारम्भ कर अंतत: सर्वज्ञता, क्रमबद्धपर्याय, वस्तु-स्वातंत्र्ययुक्त वस्तु-व्यवस्था के प्रति अटूट आस्था और जीवन में तद्जनित अपूर्व गरिमा व अनन्त शान्ति का प्रादुर्भाव किया है।

यह तो हुआ संक्षिप्त रुचि प्रबुद्ध पाठकों के लिए वर्णित उनकी जीवनयात्रा का निष्कर्ष। अब यदि इस क्रम को विस्तार दिया जाए तो कहा जा सकता है कि जीवन में उपलब्धियाँ और विजय हासिल करने की जनसामान्य की प्रक्रिया और विधि यह है कि अन्य सहयात्रियों और प्रतिस्पर्धियों को धकियाते और खदेड़ते हुए सभी प्रकार के नैतिक या अनैतिक तौरतरीके अपनाकर किसी तरह सबसे आगे निकल जाना, बस!

उक्त के विपरीत बड़े दादा ने अपने जीवन में न तो किसी को अपना प्रतिस्पर्धी माना और न ही अपने अन्दर किसी के साथ स्पर्धा की भावना पनपने दी। वे तो बस चल पड़े, चलते रहे अपने पथ पर, अविचल, अविराम; इस तथ्य से बेखबर और बेपरवाह कि कौन आगे दौड़ रहा है और कौन पीछे छूट गया।

वे आगे बढे तो कोई पीछे नहीं छूटा, वे ऊपर चढे तो कोई नीचे नहीं गिरा, वे बड़े बने तो कोई छोटा नहीं हुआ।

वे वह तूफान नहीं थे, जिसके कहीं से गुजर जाने मात्र से न जाने कितने गुजर जाते हैं, कितने उजड़ जाते हैं। वे तो शीतल, मंद बयार (हवा) के समान थे, जो जहाँ से गुजरती है वहाँ शीतलता और सुकूल बिखेरती जाती है।

वे योगी थे, प्रतियोगी नहीं।

उनका विकास किसी के विनाश पर आधारित नहीं था।

जो स्वयं सरल, सज्जन और ईमानदार होता है, वह सबको अपने समान ही समझता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

उनका उदय सर्वोदय पर आधारित था।

वे अतिविशिष्ट थे, पर उनमें विशिष्टता का अहसास नहीं था, वैशिष्ट्य का प्रदर्शन नहीं था।

जैसा सरल उनका स्वभाव था वैसा ही उनका जीवन भी था। उनकी भाषा और शैली भी सरल ही थी और उनका कथ्य भी। वे सहजता से अपनी बात कहते थे और लोग सरलता से उनका आशय समझ जाते थे।

उनका जीवन शर्तविहीन था, न तो उनकी कोई शर्त थी और न ही उन्हें किसी तामझाम की आवश्यकता ही थी। वे कहीं भी रहकर किसी भी समय अपना कार्य कर सकते थे, विशेषकर लेखन। वे न तो मूड के मोहताज थे और न ही माहौल के। मैंने उन्हें समय-असमय अपने पलंग पर बैठे, अपने घुटनों की टेबिल पर कागज रखकर साधारण से पैन से असाधारण रचनाकार्य करते देखा है।

मैंने कभी उन्हें गिला-शिकवा करते नहीं देखा, अन्यथा जीवन में किसी न किसी से शिकायत किसे नहीं होती है।

मैंने उन्हें कभी किसी से याचना करते नहीं देखा। मानो उनका मूलमंत्र था - ''जो प्राप्त है वह पर्याप्त है''।

एक लेखक के रूप में उन्होंने साहित्य की हर विधा में अपनी कलम चलाई है। गद्य हो या पद्य, कहानी हो या उपन्यास, निबंध हो या नाटक। यही नहीं उन्होंने जिनवाणी के हर अनुयोग को छुआ। मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने अनुवाद का कार्य भी किया। पाक्षिक पत्र ''जैनपथप्रदर्शक'' के संस्थापक सम्पादक के रूप में 40 वर्षों से अधिक बड़ा कार्यकाल पत्रकारिता के क्षेत्र में एक बड़ा कीर्तिमान है।

लगभग एक हजार स्नातक विद्वानों का गुरु होना अपने आपमें एक ऐसा कर्तृत्व है, जो किसी भी व्यक्ति को महापुरुषों की श्रेणी में स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

अधिक क्या कहूं, उक्त सभी के अतिरिक्त वे एक सच्चे, सरल, सहज और सादगीभरे व्यक्तित्व के धनी, निस्पृही महामानव थे।

मूलत: वे एक आत्मार्थी थे, मुमुक्षु थे। वे शीघ्र ही परमपद पर स्थित हों - यही कामना है।●

जब संयोग के मिलाने में या अलग करने में, किसी का भला-बुरा होने में, सुख-दुःख पाने में किसी अन्य का कुछ हस्तक्षेप ही नहीं है तो कोई किसी पर बिना कारण क्रोधादि क्यों करें? खेद-खिन्न क्यों हो? हर्ष-विषाद क्यों करे? संक्लेशित भी क्यों हो?

वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त की श्रद्धावाले व्यक्ति तो केवल ज्ञाता-दृष्टा रहकर सब परिस्थितियों में साम्यभाव ही धारण करते हैं, उन्हें संयोगों में सुख बुद्धि नहीं रहती; क्योंकि वे जानते हैं कि संयोगों में सुख है ही नहीं।

- पण्डित रतनचंद भारिल्ल

इन्द्रधनुष-सा सतरंगी अध्यात्मरत्न

– डॉ. शांतिकुमार पाटील, जयपुर

धूप की उपस्थिति में जब पानी की बौछारें आने लगती हैं, तब आकाश पर एक इन्द्रधनुषी छटा छा जाती है; उसी प्रकार जीवन की अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं की धूप में भी अध्यात्म की शीतल फुहारें जब जीवन में बरसने लगती हैं, तब एक सतरंगी आभा बिखरने लगती है। आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल भी ऐसे ही एक अध्यात्मरत्न हैं, जो अपने में सतरंगी आभा समेटे हुए हैं।

इस अध्यात्मरत्न के सात रंग हैं – सर्वोपरि आत्महित, सम्पादन, साहित्य-सृजन, प्रवचन, अध्यापन, प्रशासन और इन सबमें व्याप्त सहजता।

(1) सर्वोपरि आत्महित – 'आदहिद परहिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए आदरणीय बड़े दादा ने सम्पूर्ण जीवन में जो भी कार्य किया, उसमें आत्महित को सर्वोपरि रखा। यह बात उनके जीवन पर दृष्टिपात करने से सहज ही परिलक्षित होती है।

आपने प्रारंभिक शिक्षा जब मुरैना विद्यालय में प्राप्त की, तभी संस्कृत भाषा के साथ अनेक जैनशास्त्रों का मूल से अध्ययन किया। न्यायतीर्थ की डिग्री भी ली। तत्पश्चात् आजीविकार्थ व्यापार प्रारम्भ किया, तब भी नितप्रति स्वाध्याय व प्रवचनादि के माध्यम से आत्महित में संलग्न रहे।

आत्मधर्म के माध्यम से आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा प्रचारित अध्यात्मधारा के परिचय में आने के पश्चात् तो स्वाध्याय की विशेष रुचि जागृत हुई। व्यापार प्रभावित होने लगा और व्यापार के साथ विशेष स्वाध्याय संभव नहीं दिख रहा था, अत: व्यापार बन्द करके भीलवाड़ा, कोटा, खुरई आदि अनेक जगहों पर अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया। प्रतिवर्ष सोनगढ जाकर प्रत्यक्ष में गुरुदेव का सान्निध्य पाकर अध्यात्म-रुचि व तत्त्वज्ञान को पुष्ट करते रहे व जगह-जगह पर प्रवचन-कक्षाओं के माध्यम से अध्यात्म के प्रचार-प्रसार का कार्य एकमात्र आत्महित को सर्वोपरि रखकर ही किया।

आपने शासकीय सेवा हेतु विदिशा (म.प्र.) का ही चुनाव किया; क्योंकि वहाँ अध्यात्मप्रेमी मुमुक्षु समाज की बहुलता है। वहाँ विद्यालय में अध्यापन कार्य के साथ सुबह-शाम प्रवचन के माध्यम से तथा अन्य अनेक प्रकार की आध्यात्मिक गतिविधियों का संचालन करते रहे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबाई भारिल्ल भी शासकीय सेवा में रहते हुए इस कार्य में आपका योगदान करती रहीं। महिलाओं की जागृति में आपका विशेष

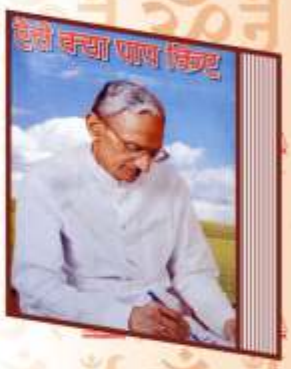

'जब तक श्वांसा तब तक आशा', इस उक्ति के अनुसार अपनी वांछित वस्तु को पाने के लिए व्यक्ति जीवन की अन्तिम श्वांस तक भी आशान्वित रहते हैं; अत: हताश होकर हिम्मत न हारो।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

योगदान रहा। आपके सान्निध्य में उन्हें भी अच्छी तरह यह बात अवगत हो गयी थी कि आत्महित ही परम कर्तव्य है।

(2) सम्पादन – मुमुक्षु समाज की गतिविधियों की जानकारी सभी को होवे – इस उद्देश्य से एक पत्रिका प्रारम्भ करने का विचार जब आया, तब सभी को आपका ही नाम ध्यान में आया। आपने शासकीय सेवा व प्रवचनादि प्रतिदिन की व्यस्तता के बावजूद विदिशा में रहते हुए भी इसकी जिम्मेदारी ली और स्थापना से लेकर यावज्जीवन आप इसके सम्पादन का दायित्व बखूबी सम्हालते रहे। इस पत्र में समाचारों की मुख्यता होते हुए भी आपके ही सत्प्रयासों से सम्पादकीय के रूप में अनेक विषयों पर आध्यात्मिक सामग्री भी उपलब्ध होती रही। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनादि का भी प्रकाशन इसमें होता रहा। अनेक विशेषांकों के माध्यम से विविध विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण विचार समाज के समक्ष आ सके – यह आपके सम्पादन कौशल से ही संभव हो सका।

पूज्य गुरुदेवश्री के समयसार पर प्रवचनों का गुजराती भाषा में 'प्रवचनरत्नाकर' के नाम से प्रकाशन तो हो चुका था, लेकिन हिन्दी भाषी समाज को भी इसका लाभ प्राप्त हो सके – इस उद्देश्य से इनका अनुवाद करने की महती जिम्मेदारी आपको सौंपी गयी और वर्षों के अथक् प्रयासों से इस कार्य को पूर्ण रुचि व लगन से आपने सम्पन्न किया। इसके लिये हिन्दी भाषी अध्यात्मप्रेमी समाज सदैव आपकी ऋणी रहेगी।

इसके अतिरिक्त भक्तामर-प्रवचन, समाधि शतक प्रवचन, पदार्थ विज्ञान एवं सम्यग्दर्शन प्रवचन आदि भी हिन्दी में अनूदित एवं सम्पादित कर आपने प्रकाशित करवायी हैं।

(3) साहित्य सृजन – आपने जितनी भी साहित्य रचना की है, उनका उद्देश्य साहित्यिकता अथवा उसके माध्यम से अपनी प्रसिद्धि कदापि नहीं रहा है। मात्र जिनागम के प्रमुख सिद्धान्तों विशेषकर जिन अध्यात्म को सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाने का ही आपका उद्देश्य रहा है।

किसी भी साहित्य की रचना से पूर्व आपके चित्त में पहले सिद्धान्त आते हैं, फिर उनको समझाने के लिये उपन्यास या बृहद् कहानी का ताना-बाना तैयार होता है। लेकिन आपके इन उपन्यासों में ये सिद्धान्त जबरदस्ती ठूँसे हुए नहीं; बल्कि सहज उपन्यास का हिस्सा ही प्रतीत होते हैं। कहानी के बीच तत्त्वज्ञान मणिकांचनवत् जड़ा हुआ है।

प्रथमानुयोग के बड़े-बड़े पुराणों को आधुनिक भाषा में व सरल-सुबोध शैली में प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इस क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाकर आपने इसकी आपूर्ति कर दी है। हरिवंश पुराण को 'हरिवंशकथा' में व समग्र महापुराण को 'शलाकापुरुष' के दो भागों में समाहित किया है। कथानकों के बीच प्रसंगप्राप्त तत्त्वज्ञान का विवेचन करना पण्डितजी के साहित्य लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है, जो यहाँ भी प्रचुरता

से देखने को मिलती है। इसप्रकार आपने साहित्य की विविध शैलियों में जैनदर्शन के आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का महान कार्य किया है, उसके लिये समाज सदैव आपका ऋणी रहेगा।

(4) प्रवचन – आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के सान्निध्य से एवं स्वयं के अभीक्ष्ण ज्ञानोपासना से प्राप्त तत्त्वज्ञान के मर्म को सरल-सुबोध भाषा में एवं दृष्टांतों की शैली में श्रोताओं के गले उतारने की कला आपको सहज ही अवगत थी। आपकी शैली में इतनी सहजता थी कि उसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता महसूस नहीं होती थी।

जब भी जहाँ भी जिस समय भी प्रवचन के लिये आपको निवेदन किया जाता तो जिनवाणी की सेवा का अवसर मानकर सदैव तत्पर रहते थे। श्री टोडरमल स्मारक भवन में तो आपके स्वास्थ्य के अनुकूल रहने तक प्रतिदिन ही आपके प्रवचन होते थे। सर्दी-गर्मी-बरसात - हर परिस्थिति में समय से पूर्व ही प्रवचन के लिये उपस्थित रहना आपने गुरुदेवश्री से सीखा था। दशलक्षण महापर्वादि अनेक प्रसंगों पर देश के विभिन्न स्थानों पर भी आपके प्रवचन होते थे। इन सबमें स्वान्तः सुखाय की भावना ही आपकी मुख्य रहती थी।

(5) अध्यापन – मुख्यरूप से तो आप अध्यापक ही थे। प्रशिक्षण शिविरों के आप मुख्य प्रशिक्षक अध्यापक थे। अन्य शिविरों में भी आपकी कक्षाएँ सुनकर अनेकों ने प्रेरणा प्राप्त की और स्वाध्याय के मार्ग में लग गये। महाविद्यालय में भी समय-समय पर विभिन्न विषयों का अध्यापन आपके द्वारा किया गया, जिसे छात्र अभी तक स्मरण करते हैं। अध्यापन में भी सरलता व सहजता ही रहती थी। छात्रों के स्तर को ध्यान में रखकर आप पढाते थे।

(6) प्रशासन – श्री टोडरमल महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में आपका प्रशासनिकरूप देखने को मिलता है। आपके प्राचार्यत्व में इस महाविद्यालय ने सफलता के कीर्तिमान स्थापित किये। प्रशासक के रूप में आपका हर निर्णय छात्रों के हित को सर्वोपरि मानकर ही होता था। कभी भी कोई भी परिस्थिति खड़ी होने पर उसका समाधान तात्त्विकरूप से ही देने का प्रयास रहता था। आपके साथ कार्य करने वालों को कभी आप अपना अधिकारीपना नहीं दिखाते थे, बल्कि एक परिवार के प्रमुख की तरह व्यवहार करते थे। छात्रों को भी सदैव आत्महित को मुख्य रखने की ही प्रेरणा देते थे।

(7) सहजता – आपके जीवन के हर पहलू में सहजता व्याप्त है। कहीं कोई कृत्रिमता, लुकाछिपी, छलावा आपके जीवन में नहीं रहता था। इसी कारण उपरोक्त सभी कार्यों में सहज ही सफलता मिलती थी। आपके साथ कार्य करने वालों को भी सहजता महसूस होती थी और आपसे बहुत कुछ सीखने व आगे बढने की प्रेरणा भी मिलती थी।

यद्यपि अब आप हमारे बीच नहीं हैं; परन्तु आपके अध्यात्मरत्न की आभा अभी भी स्मारक भवन के कण-कण में व्याप्त अनुभूत होती है और हमें भी सहजता का पाठ पढाती है।●

भावुकतावश भीष्म प्रतिज्ञायें कर लेना एक बात है और उन्हें आजीवन निभाना दूसरी बात; अतः प्रतिज्ञा लेने के पहले दूरदृष्टि से विचार कर लेना चाहिए।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

उनका साहित्य सदैव प्रेरणा देता रहेगा

– अखिल बंसल, जयपुर

गौर वर्ण, लम्बा छरहरा बदन, सिर पर गांधी टोपी धोती कुर्ता के लिबास में छुपी अत्यन्त सौम्य मुस्कानयुक्त देह। ऐसी आकर्षक मुद्रा में अध्यात्म का डंका बजाने वाले पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल उ.प्र. के ललितपुर जिला स्थित बरौदास्वामी नामक छोटे से ग्राम में 21 नवम्बर 1932 को पैदा हुए। आपके पिता श्री हरदासजी एवं माता श्रीमती पार्वती बाई थीं। डॉ. हुकमचंद भारिल्ल एवं डॉ. उत्तमचंद भारिल्ल आपके अनुज एवं भागवतीबाई आपकी बड़ी बहिन थी। आपने शास्त्री, एम.ए. बी.एड. की शिक्षा प्राप्तकर विदिशा स्थित एस.एस. एल.जैन हायर सैकेण्डरी स्कूल में संस्कृत शिक्षक के रूप में अध्यापन किया। युगपुरुष कानजीस्वामी की क्रमबद्धपर्याय पढकर 24 वर्ष की अवस्था में आपने उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु बना लिया।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ आपके जीवन पर सटीक बैठती हैं –

जितने कष्ट कंटकों में है, जिसका जीवन सुमन खिला,
गौरव गंध उन्हें उतना ही, यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।।

आपका जीवन बड़े अभावों में व्यतीत हुआ। सन् 1963 में विदिशा पहुंचकर आपको जीवन की नयी राह मिली और 16 वर्ष तक वहाँ रहकर आपने शिक्षक की भूमिका अदा की। सन् 1979 में आपके जीवन में नया मोड़ तब आया जब जयपुर में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में आपने कार्यभार सम्हाला। यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण ने आपके जीवन में चार चाँद लगा दिये, मानो आपकी मन की मुराद भी यहाँ आने से परिपूर्ण हो गयी। जैनपथप्रदर्शक पाक्षिक पत्र के कुशल सम्पादन ने आपको जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में स्थापित तो किया ही, टोडरमल महाविद्यालय की सुवासित बगिया में रहकर आपकी लेखनी से 28 कृतियों का सृजन हुआ। उनमें मुख्य हैं – संस्कार, विदाई की बेला, सुखी जीवन, नींव का पत्थर, ऐसे क्या पाप किये, णमोकार महामंत्र, शलाका पुरुष, हरिवंश कथा, इन भावों का फल क्या होगा, जिनपूजन रहस्य, सामान्य श्रावकाचार तथा चलते-फिरते सिद्धों से गुरु। यही नहीं आपने पू. कानजीस्वामी के मूल गुजराती प्रवचनों का लगभग 6000 पृष्ठों में हिन्दी अनुवाद किया, जो प्रवचन रत्नाकर नाम से 11 भागों में जन-जन के लिये उपलब्ध है। जैनपथप्रदर्शक के अनेक संग्रहणीय विशेषांक आज समाज की धरोहर है। उदयपुर के डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री ने आपके व्यक्तित्व कर्तृत्व पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय से 'पण्डित रतनचंद भारिल्ल के साहित्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की। इससे आपकी गौरव गरिमा में एक और नया अध्याय जुड़ गया।

आपने अपना पूरा जीवन युगपुरुष कानजीस्वामी के आध्यात्मिक चिन्तन को जन-जन तक पहुँचाने में लगा दिया। साहित्य के माध्यम से आपने माँ जिनवाणी की जो सेवा की है, वह तो अकथनीय है ही, परन्तु इससे भी बड़ा योगदान है टोडरमल महाविद्यालय के माध्यम से आपने सहस्राधिक आगमनिष्ठ विद्वान तैयार किये हैं, जो आज भारतवर्ष के कोने-कोने में

अध्यात्म का डंका बजा रहे हैं।

आपकी देव-शास्त्र-गुरु में दृढ आस्था थी, जिसका प्रतिबिम्ब आपके साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'चलते-फिरते सिद्धों से गुरु' पुस्तक पढकर आपकी आँखें खुली रह जाएंगी और उन लोगों का भ्रम भी तिरोहित हो जायेगा, जो येन-केन-प्रकारेण आत्मार्थियों को मुनि विरोधी सिद्ध करने में अपनी ऊर्जा नष्ट कर रहे हैं।

आचार्य विद्यानंदजी ने तो आपको आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार प्रदानकर अपना भरपूर आशीर्वाद ही नहीं दिया; अपितु आपकी विद्वत्ता पर मुहर लगा दी है। आपने लिखा है - ''धर्मानुरागी विद्वान पण्डित रतनचंद भारिल्ल जैन समाज के उच्चकोटि के विद्वानों में एक हैं। वर्तमान में जिस प्रकार एक दीपक से हजारों दीपक जलते हैं, एक बीजान्न से अनेक बीजान्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वे अनेक विद्वानों को तैयार करके जिनवाणी की महान सेवा कर रहे हैं।

पण्डितजी एक सिद्ध हस्त एवं आगम निष्ठ लेखक भी हैं, उनका ज्ञान अत्यन्त प्रामाणिक है जो उनकी प्रत्येक कृति में अभिव्यक्त हो रहा है। चाहे वह जिनपूजन रहस्य हो, चाहे णमोकार महामंत्र मुझे उनकी किसी भी कृति में एक अक्षर भी आगम विरुद्ध लिखा नहीं मिला। उन्हें आचार्यकल्प कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।''

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के साथ मुझे भी लगभग 40 वर्ष कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनका सद्व्यवहार, निरभिमानता, तेजस्विता तथा व्यवहार कुशलता सदा प्रेरणा देती रहेगी। वे आज भले ही सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनका साहित्य हमें सदैव प्रेरणा देता रहेगा। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला भारिल्ल भी परम विदुषी हैं तथा एकमात्र पुत्र शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल उनके बताये पथ का अनुसरण करते हुए अपनी महक से विश्व के कोने-कोने को सुरभित कर रहे हैं। मैं ऐसी दिव्य विभूति के चरणों में अपना अर्घ समर्पित करता हूँ वे सिद्ध अवस्था को प्राप्त हों और अपने दिव्य प्रकाश से संसार के हर प्राणी को आलोकित करें - यही भावना है। ●

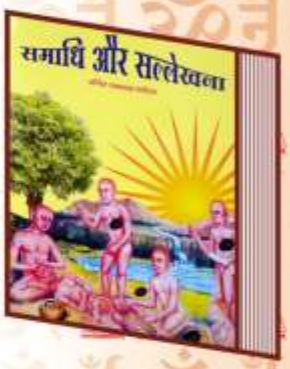

प्रथमानुयोग के सुयोग्य शिल्पी : पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल

- पीयूष जैन (मैनेजर-पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर)

धर्ममार्ग का अनुसरण करने वालों को प्रथम भूमिका में हस्तावलम्बरूप प्रथमानुयोग जैनशासन को अत्यन्त सुगमतापूर्वक आत्मसात करानेवाली शैली का नाम है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रथमानुयोग साहित्य की रचना हुई, जिसमें कथा-कहानी एवं लोकजीवन के कथाव्यवहार के माध्यम से तत्त्वज्ञान समझाने की चेष्टा की जाती है। समय-प्रवाह के क्रम में यह कथा व्यवहार और काव्य का कलात्मकरूप इतना मुखर हो उठा कि उसमें से तत्त्वज्ञान गायब सा ही हो गया; फलत: जो प्रथमानुयोग सामान्यजनों को तत्त्वज्ञान का साधन था वह विद्वत् विलास का सूचक हो गया। इसके अलावा निरन्तर बदलते संदर्भों में प्राचीन शैली में लिखे गये अपभ्रंश/संस्कृत/ढूंढारी भाषा में प्रकाशित प्रथमानुयोग के ग्रन्थ सामान्यजनों को दुरूह होने

खटमलों के कारण खाट और बिस्तर थोड़े ही फेंक दिये जाते हैं और मच्छरों की वजह से मकान थोड़े ही छोड़ दिया जाता है। इसीतरह किसी के द्वारा सच्चे धर्म की बुराई सुनकर उसे छोड़ा नहीं जाता।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

से स्वाध्यायी जनसामान्य इससे वंचित थे।

तुलनात्मकरूप से अन्य अनुयोगों के संदर्भ में जिस मात्रा में साहित्य का सृजन हो रहा था, प्रथमानुयोग के नाम पर या तो साहित्य लिखा ही नहीं जा रहा था, जो लिखा भी जा रहा था, वह तत्त्वज्ञान से शून्य, अनेक अज्ञान-पाखण्ड-चमत्कारों का पोषक था। अत: सर्वसाधारण को बोधगम्य तत्त्वज्ञान को प्रस्तुत करने में समर्थ प्रथमानुयोग के साहित्य लेखन की जितनी आवश्यकता इस युग में हो रही थी, उतनी इसके पहले कभी नहीं रही।

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने साहित्य-सृजन की इस अतिमहत्वपूर्ण विधा का पुनर्संस्कार किया। आने वाला इतिहास प्रथमानुयोग के 'सुयोग्य शिल्पी' के रूप में इनका मूल्यांकन करेगा। हरिवंशपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, प्रथमानुयोग के प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं; परन्तु अनेक स्वाध्यायी इनके बड़े आकार को देखकर इनके अध्ययन से पराङ्मुख हो जाते हैं। इस समस्या के समाधान के रूप में पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने हरिवंशपुराण का संक्षिप्त संस्करण हरिवंशकथा के रूप में और आदिपुराण तथा उत्तरपुराण (महापुराण) का संक्षिप्त संस्करण शलाकापुरुष पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के रूप में प्रस्तुत करके प्रथमानुयोग को आधुनिक भाषा शैली में रोचक ढंग से जनसामान्य को सुलभ बनाया।

इन ग्रन्थों को हम लोग हरिवंशपुराण-आदिपुराण का आधुनिक लघु संस्करण भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

शलाकापुरुष और हरिवंशकथा में कथानक पाठकों की रुचि के अनुकूल सरल-सुबोध-आधुनिक शैली में तत्त्वज्ञान के पुट के साथ सरसता-सरलता-बोधगम्यता के साथ प्रवाहित हो रहा है। इसमें उचित संशोधनों के साथ सभी धार्मिक कथानकों का समावेश तो है ही, साथ ही करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग सम्बन्धी विषयों का समावेश भी समानुपातिक रूप से इसप्रकार किया गया है कि ग्रन्थ की रोचकता व कथा की क्रमबद्धता में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

इसके अलावा 'विदाई की बेला', 'इन भावों का फल क्या होगा', 'संस्कार', 'ये तो सोचा ही नहीं', 'ऐसे क्या पाप किये' आदि अनेक मौलिक रचनाएँ प्रथमानुयोग की शैली का अनुसरण करके रचीं। इनमें से अनेक रचनाएँ तो कालजयी बन पड़ी हैं। अनगिनत लोगों के जीवन परिवर्तन में इन रचनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और निभा रही हैं।

अनतिविस्तृत और अल्पमूल्य में सुन्दर सज्जा के साथ इसकी उपलब्धता ग्रन्थों की सार्थकता को कई गुना बढाती है।

ग्रन्थ का सांगोपांग महत्व तो इसके स्वाध्याय के बाद ही पाठक समझ सकते हैं; परन्तु प्रथमानुयोग को इस रूप में प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता और सार्थकता उक्त प्रकाशनों की हजारों प्रतियों में बिक्री के आंकड़ों को देखकर सहज ही महसूस की जा सकती है। अत: सारांश रूप में पण्डित रतनचंदजी का मूल्यांकन 'आधुनिक प्रथमानुयोग के प्रणेता' के रूप में आने वाला समय अवश्य करेगा। बड़े दादा अपने साहित्य संसार से हमारे बीच सदैव बने रहेंगे।

उनकी कृतियों से तत्त्वज्ञान ग्रहणकर जीवन में परिवर्तन ला सकें - यही उनका सच्चा अभिनन्दन है और उनको सच्ची श्रद्धांजलि भी। ●

परिवारजन की दृष्टि में

जहाँ रहें अपने में रहें

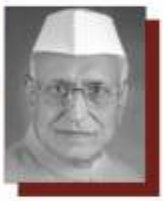

भाई साहब को गये एक वर्ष हो गया है। 12 नवम्बर, 2019 को वे गये और मार्च 2020 से कोरोना आ गया। यदि वे कोरोना के समय में रहते और अपेक्षाकृत स्वस्थ रहते तो हमारी साथ रहने की आकांक्षा बहुत कुछ सार्थक हो जाती।

यद्यपि हम जयपुर में बहुत वर्षों से साथ-साथ ही रहते रहे हैं, पर बाहर के कार्यक्रम होने से वास्तविक रहना बहुत कम हो पाता था। कोरोना काल में बाहर आना-जाना समाप्त हो गया है; अत: वास्तविक एक साथ रहना बन पाता; पर वे अधिक अस्वस्थ हो गये और फिर चले गये।

कोरोना ने सबका बाहर आना-जाना बन्द कर दिया और किसी से मिलना-जुलना भी प्रतिबन्धित हो गया। अब एकमात्र शरण अध्यात्म ही रह गया था। आध्यात्मिक लगन और सहजता की धुन ने एकदम आत्मकेन्द्रित कर दिया।

ऑफिस आना-जाना तो मैंने पहले ही बन्द कर दिया था। फिर कोरोना ने ऑफिस ही बन्द करा दिया। अब तो हम सब अपने-अपने घर में ही कैद हैं। सबका आना-जाना बन्द ही है, एकमात्र परमात्म आता-जाता रहा। बहुत टोकाटोकी होने पर भी उसका आना-जाना बन्द नहीं हुआ।

भाईसाहब का परलोक गमन, अन्तर्मुख रुचि की तीव्रता और सहज प्राप्त एकान्त ने सहज ही एकदम सहज कर दिया। इस काल में जो कुछ भी लिखा गया, वह सब सहज लिखा गया है। भरत का अन्तर्द्वन्द और समाधि का सार आदि कुछ-कुछ पद्य रचनाएँ सहज हो गई हैं, जो अत्यन्त मार्मिक हैं, मरम को छूने वाली हैं। मैं निरन्तर उन्हें ही सुनता रहता हूँ। वे सब लगभग आप सब लोगों के पास पहुँच गई हैं। आप लोग उन्हें पढ रहे हैं, रस ले रहे हैं।

भाईसाहब के जन्मदिन पर विशेषांक निकल रहा है। संबंधित लोग आग्रह कर रहे हैं कि मैं कुछ लिखूं, मुझसे कुछ लिखा नहीं जा रहा है।

सहजभाव से जो कुछ लिखा गया, बस वही प्रस्तुत है।

भाईसाहब! आप जहाँ भी रहो, अपने में ही रहना। सुखी होने का एक ही रास्ता है। सिर्फ अपने में रहना, अपने में ही अपनापन होता है और कहीं नहीं, किसी से भी नहीं; बस अपने में ही समा जाना। सब कुछ सहज, एकदम सहज। मुझे विश्वास है कि आप ऐसी ही स्थिति में होंगे। मैं भी सहज ही हूँ, एकदम सहज, ज्ञाता-दृष्टा। अधिक क्या? आप भी बस अपने में ही रहना।

आपका अपना

28 अक्टूबर, 2020 **हुकमचंद भारिल्ल**

आदरणीय बड़े दादा और छोटे दादा - (दोनों भाईयों) के बीच वात्सल्य/प्रेम अपने आपमें एक मिसाल रहा है। यही कारण है कि आदरणीय छोटे दादा अभी बड़े दादा के संबंध में कुछ भी लिखने की मनोस्थिति में नहीं थे; फिर भी विशेष आग्रह करने पर जो कुछ सहज लिखा जा सका; वह आप सबने पढा ही है। **- सम्पादक**

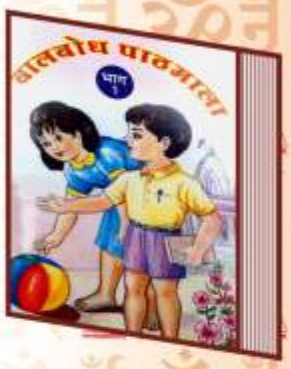

साधु नगर में गृहस्थी के बीच नहीं रहते; क्योंकि गृहस्थों का सान्निध्य, नगर का कोलाहल तथा गृहस्थों के आवास उनकी आत्मसाधना के अनुकूल नहीं होते।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

श्रद्धेय पूजनीय दादा के बारे में क्या लिखूं

– कमला भारिल्ल, जयपुर

वे तो मेरे जीवन के शिल्पकार थे, उनकी ही प्रेरणा से आज मैं आप सबके सामने हूँ। जो कुछ भी धार्मिक, लौकिक एवं व्यावहारिक प्रेरणाएं सब उनसे ही मिलीं। वे हमेशा मुझे आगे बढाना चाहते थे, जबकि मैं इस योग्य नहीं थी, फिर भी उनकी प्रेरणा सदैव मेरे साथ रही। मेरा जन्म तो एक छोटे से गाँव में हुआ था, जहाँ न स्कूल था न कोई पढाई, गाँव में जैसा होता है, पढाई का साधन। मैं शायद 3 या 4 क्लास पास थी, 14 साल की उम्र में बहू बनकर आ गई थी। आप समझ नहीं सकते कि उस समय मेरा जीवन कैसा होगा। सासू माँ का बीमार होना, दोनों भाईयों का बाहर पढने जाना। देहात के सारे काम मेरे ऊपर आ गये, पिताजी का बाहर बंजीभोरी का काम करना। शाम को आते ही उनकी सेवा करना, माँ के हाथ-पैरों की मालिश करना, सुबह 4 बजे उठकर चक्की चलाना, पानी भरना आदि सभी कार्य करना। पीहर भी ज्यादा जाने को नहीं मिलता था, क्योंकि पिताजी ने अपने सहारे के लिये ही शादी की थी। दादा उस समय 18 वर्ष के होंगे। जब वे घर आते तो मैं बहुत रोती, तो मुझे समझाते थे कि तुम धैर्य से काम लो, थोड़े बहुत दिनों की बात है, हम दोनों भाई घर आकर कुछ धन्धा करेंगे। दो साल बाद छोटे दादा की भी शादी हो गई थी। एक भीलवाड़ा में और दूसरे पारोली में नियुक्त हो गये। बाद में तो जीवन में बहुत ही उतार-चढाव आये; पर हम दोनों के प्रेम और सहानुभूति से बहुत खुश रहते थे।

समय बीतता गया, दादा को विकल्प आया कि अपने बच्चे तो हैं नहीं, ज्यादा चिन्ता भी नहीं है, तुम पढ लो और अपने पैरों पर खड़ी हो जाओ। मेरे जीवन का कोई पता नहीं है। हायर सैकेण्डरी करायी, 2 साल ट्रेनिंग करायी। बाद में मिडिल स्कूल सर्विस लग गई। जब शुद्धात्म 2 माह का था तो सरकारी नौकरी में आ गई। 18 साल के बाद दोनों भाईयों ने आग्रह किया कि तुम स्मारक आओ, सर्विस छोड़कर। आज 38 साल से बेटे-बहुओं के साथ रह रही हूँ। बड़े दादा के अलावा छोटे दादा ने भी मेरा बहुत साथ दिया, मैं उनका उपकार नहीं भूल सकती। आज भी मेरे परिवार में सभी में प्रेम है, एकता है। ●

सादा जीवन उच्च विचार

– गुणमाला जैन भारिल्ल, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी शास्त्री सादा जीवन और उच्च विचार वाले महापुरुष थे। मैं जबसे उनके संपर्क में आयी, उन्हें सदा ही इसी रूप में देखा है।

बड़े दादा और छोटे दादा - इन दोनों भाईयों में अगाध प्रेम था। ये दोनों हमेशा साथ-साथ रहना ही पसन्द करते थे और सदा साथ-साथ ही रहते थे। दोनों की आदतें, रुचियाँ, रहन-सहन, खान-पान सब कुछ एक-सा ही था। यहाँ तक कि दोनों को बीमारियाँ भी एक-सी ही होती थीं।

ये दोनों भाई जब राजाखेड़ा में पढते थे, तब मेरे फूफाजी पण्डित परमानन्दजी शास्त्री

साहित्याचार्य वहाँ पढाते थे। ये दोनों भाई उनके पास पढते थे। वे इनके बारे में मेरे पिताजी पण्डित चुन्नीलालजी से बहुत चर्चा करते थे। वे कहते थे कि बड़ा भाई तो सीधा-सादा है, पर छोटा भाई तेजतर्रार है। यह बात सन् 1952-53 की होगी।

फूफाजी इन दोनों भाईयों को भी हमारे परिवार के बारे में बताया करते थे, चर्चा करते रहते थे। इसप्रकार हमारे परिवार का इनसे परोक्ष परिचय था, इनके बारे में हमारे परिवार को सामान्य जानकारी थी।

इसी सामान्य परिचय के आधार पर मेरा सम्बन्ध इस परिवार में हो गया। तब मैं 14 वर्ष की ही थी। सन् 1954 को अक्षत तृतीया के दिन मेरी शादी हुई थी। वे मेरे जेठ होने पर भी जेठ जैसा व्यवहार नहीं करते थे। हमारे घर में एकदम खुला व्यवहार का वातावरण था।

एक बार पर्दा प्रथा के बारे में चर्चा चली तो दादाजी का कहना था - 'हमें तो कोई भी विकल्प नहीं है। हमारे घर में तो सभी एक साथ उठते-बैठते हैं, खाते-पीते हैं। सभी अच्छी चर्चा करते हैं, तो घर में तो पर्दा की जरूरत नहीं है; अत: बाहर गाँव का व्यवहार जरूर सम्हाल लेना।'

बबीना में हम मन्दिर के पास ही रहते थे। मन्दिरजी में होने वाले पूजन आदि कार्यक्रमों की आवाज हमारे घर पर आती थी। भादों का महीना था, रविवार का दिन था, हम दोनों देवरानी जेठानी नमक नहीं खाते थे। सो घर में सब्जी की जगह मीठी लापसी बनती थी।

छोटे दादा खाना खाने बैठे और भाभी ने वह लापसी परोसी तो दादा बोले कि अच्छा आज रविवार है, इसलिये यह बनी है। यदि नमक नहीं खाना है तो ये रास्ता क्यों निकालते हो।

इसी बात पर भाभी और उनकी दोनों की नोंकझोंक हो गई, वैसे भी कभी-कभी चलती ही रहती थी। वे बोलीं - 'हाँ, नमक छोड़कर तो देखो, तब पता चलेगा।' ये बोले कि चलो आज शाम को ही बिना नमक के खाना बनाना, हमने नमक छोड़ दिया है। घर में बहुत हल्ला-गुल्ला हो गया। इनके जाने के बाद बड़े दादा भोजन करने आये, तो उन्हें कुछ अजीब सा लगा। उन्होंने पूछा कि आज क्या बात है? भाभी ने कहा कि लालाजी ने नमक छोड़ दिया। मैंने उनसे जरा-सा कहा कि तुम छोड़कर तो देखो, कैसे छोड़ा जाता है। वे बोले अब आज से मैं नमक नहीं खाऊँगा। दादाजी ने भी कहा कि मैं भी छोड़ता हूँ।

इसप्रकार जो भी छोटे को करना, वह बड़े को भी करना, जो बड़े को करना वह छोटे को भी करना।

विद्वान तो दोनों भाई थे ही। दोनों ही प्रवचन करते थे। बाद में चीनी भी छोड़ दी। इसप्रकार लगभग छह माह तक घर में बिना नमक और चीनी के ही भोजन बना और सारा घर भी वही खाता रहा।

नया-नया गुरुदेव का समागम हुआ था। तत्त्व का गहरा रस लगा था। उसी में मगन रहते थे। सो इन्होंने बाल कटवा लिये, गले में दुपट्टा डाल लिया, जूते-चप्पल भी छोड़ दिये। हाथ में बेंत ले लिया और त्यागियों जैसे रहने लगे। मन्दिर में सोने लगे, सो दादाजी भी उसी रास्ते पर चल पड़े। लोगों को बड़ा ही अटपटा लगता था। पर इन्हें तो किसी की भी परवाह नहीं थी। दोनों भाईयों की शादी हुए भी 5-7 वर्ष ही हुए थे। कोई बाल-बच्चा भी नहीं था। ये तो दिन रात तत्त्वचर्चा अध्ययन मनन में ही लगे रहते थे।

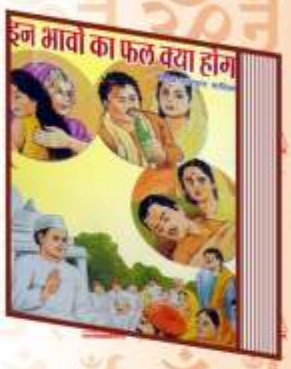

कुसंस्कारों का कुप्रभाव भी कहाँ तक हो सकता हैं, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि हम अपनी संतान को दुराचारी नहीं देखना चाहते हैं तो हमें अपने दुराचारों को तिलांजलि देनी होगी और अपने बच्चों को सदाचार के संस्कार देने होंगे।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सोनगढ भी गये तो साथ-साथ गये। वहाँ शिविर में बीस दिन रहे और तीर्थयात्रा करते हुए महीनेभर में लौटे। जिनागम का सही रहस्य समझते थे। धीरे-धीरे नॉर्मल हुये। फिर तो जो भी कार्य इन भाईयों ने किये, वे सब जगत के सामने है ही। पर सभी काम दोनों ने मिलजुलकर किये, साथ-साथ ही किये।

जब से दादाजी गये हैं, तब से अब इनका मन कहीं भी लगता ही नहीं। कविताएँ ही लिखते रहते हैं। भरत का अन्तर्द्वन्द लिखा, समाधि का सार आदि। अब ऑफिस जाना भी छोड़ दिया। ऑफिस में दोनों भाई एक कमरे में एक साथ ही बैठते थे। सभी तरह की बातें करते रहते थे। तत्त्वचर्चा करते रहते थे। योजनाएँ बनाते रहते थे और अपना-अपना लेखन कार्य करते रहते थे। फिर अपना लिखा हुआ एक-दूसरे को पढाते थे। अब तो इनका ऑफिस जाने का भी मन नहीं होता। दादाजी के बिना तो इनका मन कहीं भी नहीं लगता है। मैं तो बहुत कहती हूँ, परमातम भी कहता है कि एक घण्टे को ही जाओ, थोड़ा चेंज हो जायेगा; पर एक भी नहीं सुनते।

अभी-अभी बड़े दादाजी के जाने के बाद जो भी इन्होंने लिखा, वह सब पद्य में ही है। बहुत ही मार्मिक है, तत्त्व से भरा है। एकदम अध्यात्म के रस से लबालब है। प्रवचन भी जब भी करते हैं, बहुत ही गम्भीर करते हैं। नये-नये रहस्य भी खोलते हैं, पर अब उत्साह नहीं है। कहीं बाहर भी जाना नहीं चाहते, अपने में ही मगन रहते हैं। किसी से मिलना-जुलना भी अच्छा नहीं लगता है। फिर कोरोना ने भी कहर ढहाया है। लोगों से मिलना-जुलना बन्द करा दिया है। फोन पर बात करने में भी रस नहीं है।

दादाजी के जाने के बाद से अन्तर्मुख अधिक हो गये हैं। सहज हो गये हैं, सहजता के ही अनुयायी हो गये हैं। अपने ही साहित्य को पढते रहते हैं। अपनी ही कविताएँ सुनते रहते हैं।

ये दादाजी से कितना वात्सल्यभाव रखते थे, अब हमें महसूस होता है। दादाजी भी अन्त समय में अपने में मगन हो गये थे। सारे जगत से उन्हें कोई मतलब नहीं था। जब भी वे व्हील चेयर पर मन्दिरजी आते थे, तब वे इनसे मिलने घर अवश्य ही आते थे। बोलना तो कम हो गया था, बन्द सा ही हो गया था। पर दोनों भाईयों की इशारे-इशारे में ही बातें होती थीं, साथ में नाश्ता करते और चले जाते। जब दादा बाहर से आते तो बड़े दादा को दादा से मिलने का भाव होता और वे आते थे। एक-एक घण्टा बैठकर सारे समाचार सुन-सुनकर खुश होते थे, दोनों भाई एक-दूसरे को देखते रहने में ही मगन रहते, आनन्दित रहते थे। बातें तो बहुत हैं, पर अब मुझसे लिखा भी नहीं जाता। मैं भी भावुक हो जाती हूँ। उनकी कमी जितनी इनको खलती है, शायद ही किसी और को खलती होगी। वे जहाँ भी होंगे आत्मा को नहीं भूले होंगे और अपने भाई को भी नहीं भूले होंगे।

हाँ, अन्त समय में भी हम सब ज्ञानानन्द स्वभावी बोलते थे, तो हम सबको ऐसा महसूस होता था कि वे भी बोलने का प्रयास कर रहे हैं। होठों का हिलना जैसा आभास होता था। एकदम शान्त परिणामों में उनका देह-वियोग हुआ है।

वे अच्छी से अच्छी जगह पर गये होंगे और वहाँ भी धर्मध्यान में मगन होंगे। वे सदा सुखी रहें - इसी भावना से समाप्त करती हूँ।

उन्हें शत्-शत् नमनकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। ●

मेरे तात के प्रति

– अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल, मुम्बई

हे तात!
आप पूर्णमासी के दैदीप्यमान शशि थे
जिसकी छाँव में
शीतल चाँदनी का रसपान करते
हम बड़े हुए।
आपने अपनी उपस्थिति कभी जताई नहीं
किन्तु आपको हर एक महसूस करता रहा
आपकी उपस्थिति से तृप्त होता रहा।
आपने प्रथम पाँच दशक
तत्त्वज्ञान को
कृष्णरज की तरह
धीमे-धीमे
अपने में आत्मसात किया
जब पीयूष पान पूर्ण हुआ
तब
संध्या बेला में
जब सब क्लान्त हो,
थककर अस्ताचल के लिये
विश्राम करते हैं
तब
आप युवा तुरंग की भांति
कर्मयोगी की तरह,
धीर प्रशांत नायक सम,
उठ खड़े हुए,
जन-जन को मुक्ति पथ प्रदर्शन हेतु,
और एक के बाद एक
न जाने कितने सार्थक
पथ प्रदर्शक
मन मोहक
अन्त: स्पर्शी
वृत्तांत सुना डाले।
जग ने
मकरंद पान किया,
वैराग्य रस में डूबकर
न जाने कितने किनारे लगे।
हे कर्म योगी!
हे राम!
हे बलराम!
हे बाहुबली!
तुमको प्रणाम!
शत्-शत् प्रणाम!!

जिनमें त्रस जीवों की और बहुस्थावर जीवों की हिंसा हो – ऐसा भोजन तो अभक्ष्य होने से खाने योग्य ही नहीं हैं; क्योंकि हिंसाजनक अभक्ष्य भोजन अहिंसक समाज कैसे खा सकता हैं।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

दादा जीत गये जीवन की इस रेस को

– शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर

जरा सोचें बड़े दादा बोलते ही हमारे दिल में क्या भाव आता है? दिल में क्या होता है? दिमाग़ में कैसे रासायनिक स्राव निकलते हैं? ये अच्छी तरह से आप सब जानते हैं।

उनके जीवन में ना व्यंग था, ना कटाक्ष और ना कोई किसी से कैसी भी अपेक्षा और ना ऐसी कोई द्वेषपूर्ण बेवक़ूफ़ी भरी प्लानिंग कि अभी ऐसा कर लेते हैं तो इसका ऐसा हो जायेगा तो अपने को ये फ़ायदा मिल जायेगा (जिस जुगाड़पंती में हम अक्सर लगे रहते हैं)।

किसी भी विकल्प में इतनी ताक़त नहीं थी कि वो उनका पीछा कर सके या उन्हें उलझा सके और उनकी शांति भंग कर सके। उन्होंने किसी बात की कोई चिंता ही नहीं की; वस्तु व्यवस्था से कोई विरोध नहीं और ना कोई आकांक्षा। बस जीवनभर वे बहते रहे। मैंने तो 53 साल तक चौबीसों घंटे उन्हें गृहस्थ जीवन में देखा है, आप और हम जानते हैं कि क्या-क्या नहीं होता है सांसारिक जीवन में, परिवार में, पत्नी-बच्चों-नाती-पोतों-बहु-बेटियों के साथ (हम सब अनुभवी हैं)। कहने की बात नहीं है; बल्कि ये सिद्ध है कि साक्षीभाव और सहज जीवन की जीती जागती मिसाल थे बड़े दादा।

दादा ने अपना जीवन सभी प्रकार की राजनीति से परे, नाम - यश की तमन्ना से दूर, स्वार्थ भावना से अलिप्त, निर्दोष मासूमियत लिये हुए पवित्र भावना से आत्मानुभूति में लगा दिया और वक्त मिला तो तत्वप्रचार में जुटे रहे, जिन्हें हमने बरसों तक इतनी गहराई से देखा है और हर अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में परखा है। उन्होंने किसी ऐसी जड़ चीज़ को इकट्ठा नहीं किया और ना इकट्ठा करने की कोई कोशिश की, जिसे इकट्ठा करने में, समेटने में हम अपने आपको बड़ा मानते हैं।

वास्तव में तो ये आत्मचिंतन का समय है कि हम सभी प्रकार की राजनीति में उलझते हुए, नाम और यश की तमन्ना दिल में संजोये हुए पूर्णरूपेण स्वार्थ भावना के साथ व दोषपूर्ण कुटिलता के साथ तथाकथित तत्वप्रचार में जुटे हैं या सामाजिक काम में जुटे हैं या पूरी दुनिया का परिग्रह समेटने में लगे हैं; ऐसा करके क्या हासिल कर लिया हमने या क्या कर लेंगे? जबकि दादा ने ऐसा कुछ भी नहीं किया तो क्या बिगड़ गया था उनका? क्या कमी रह गयी थी उनके जीवन में? उनके जीवन में अपार शांति थी, उनका पूरा जीवन समाधिमय ही बीता जो किसी भी जुगाड़ू व्यक्ति के जीवन में सम्भव नहीं है।

जीता तो वो जिसने पहले ये संसार खत्म कर लिया, बाक़ी तो सब उधेड़बुन में लगे हैं, आपाधापी में लगे हैं और अपना संसार बढ़ाने में लगे हैं।

दादा तो चले गये, और हम भी कोई अमर होकर नहीं आये हैं, देर-सवेर जाने ही वाले हैं, तो ये रेस किस बात की होगी, किसने कितना इकट्ठा किया और चला गया या इस बात की रेस होगी कि कौन पहले मोक्ष गया और कौन कितने भव बाद। चलो हम आज से अपनी जीत और हार की सफलता और असफलता की परिभाषा बदल लें और बहुत नहीं तो चार कदम बढ़ाने का कोई निर्णय कर लें, तभी हम बड़े दादा के उत्तराधिकारी कहला पायेंगे और उनका उत्तराधिकारी बनने का अधिकार तो हरेक को है। ●

स्व नाम धन्य बड़े दादा श्री

– सुरेश-रेणू पाटनी, कोलकाता

अध्यात्म रत्नाकर परम आदरणीय पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, जिन्हें देश-विदेश का संपूर्ण दिगंबर जैन समाज बड़े दादा के नाम से जानता है, आज हमारे बीच नहीं हैं; लेकिन आपश्री बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, साथ ही छात्रों के श्रद्धेय प्राचार्य, कुशल प्रशासक, सफल संचालक, लोकप्रिय एवं ईमानदार लेखक, निर्भीक संपादक, प्रभावी वक्ता, आदर्श अध्यापक एवं सरस शैली के धनी प्रवचनकार थे ।

संपूर्ण जैन समाज आप जैसे विद्वान को पाकर अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है । आपने अपनी सरल एवं सुबोध शैली में जैनदर्शन के गूढ़ सिद्धांतों को एवं तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने में संपूर्ण जीवन समर्पित किया। आप लेखनी के जादूगर थे, जिस भी विषय को आपने छुआ, उसे जीवंत बना दिया।

वैसे तो मेरा पूरा परिवार पिछले 30-35 सालों से आपसे परिचित है। जब मैं अपने परिवार के साथ लगातार अनेक वर्षों तक जयपुर शिविरों में आया करता था और आपके मार्मिक प्रवचनों का बराबर लाभ लेता था; लेकिन पिछले 4 वर्षों से जब से मेरी बिटिया चेरी आपकी पौत्र वधू हुई, तब से आपसे बहुत नजदीक से संपर्क में आने का अवसर मिला।

मैं और मेरा परिवार अपने आपको बहुत गौरवान्वित महसूस करता है तथा प्रसन्नता का अनुभव करता है कि आप जैसे अध्यात्म रुचि एवं धार्मिक संस्कारों वाले परिवार में मेरी बिटिया की शादी हुई और आप सभी ने एक बेटी की तरह उसे अगाध वात्सल्य एवं स्नेह दिया एवं बाकी परिवार वाले भी उसी प्रकार देते हैं।

आपका सादा जीवन, सादा पहनावा, सदैव प्रसन्न मुद्रा, किसी से किसी प्रकार की शिकायत नहीं, किसी से किसी तरह की अपेक्षा नहीं, हृदय की निश्चलता सभी को प्रभावित करती थी। आपसे कोई भी व्यक्ति एक बार मिलता था, वह आपसे प्रभावित ना हो - ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

आपका यह व्यक्तित्व एवं तनावरहित सौम्य-मुद्रा, मुस्कुराहट सदैव मेरी स्मृतियों में रहेगी, जिसे मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा।

अंत समय में भी मुझे आपके पास रहने का अवसर प्राप्त हुआ। आकुलता रहित एवं शांत परिणामों से आपने देह का त्याग किया।

निश्चित ही आप उच्चगति को प्राप्तकर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करेंगे - ऐसी हमारी मंगल भावना।

आपके द्वारा लिखित सभी रचनाएं बहुत ही अद्भुत एवं प्रभावी हैं, जिनके नामों से ही पढ़ने का रोमांच उत्पन्न हो जाता है - जैसे इन भावों का फल क्या होगा, विदाई की बेला, यह तो सोचा ही नहीं, सुखी जीवन, संस्कार, जिनपूजन रहस्य आदि अनेक रचनाएं जिनका पाठकों पर सीधा प्रभाव पड़ता है और जो भी उन्हें पढ़ना शुरू करता है, उसे पूरा पढ़े बिना चैन नहीं पड़ती।

आपकी इन रचनाओं ने लौकिक जीवन जीने की कला तो सिखलाई ही, साथ ही साथ जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों को समझाकर पारलौकिक जीवन को भी सार्थक बनाया।

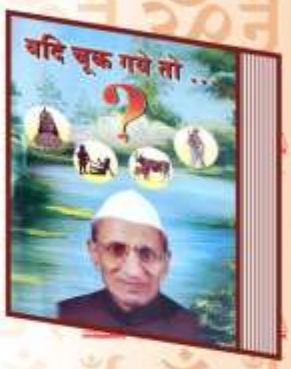

कोई कितना भी धन सम्पन्न क्यों न हो? पर वह तृप्त नहीं होता। भला-ईंधन अग्नि को कभी तृप्त कर सका है? जिसतरह ईंधन पाकर अग्नि और अधिक भभक उठती है, इसीतरह आशा रूपी अग्नि धनादिक भोग सामग्री पाकर तृप्त होने के बजाय और अधिक भभकती है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

मैंने भी आपकी लगभग सभी रचनाओं का अध्ययन किया है और उसका मेरे जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

वैसे तो आपकी रचनाओं में सैकड़ों कोटेशन शिक्षाप्रद एवं उन्नति के मार्ग में प्रशस्त करने के उपलब्ध हैं; लेकिन उनमें से दो तीन कोटेशन मुझे दिल को छू गए, वह मैं यहां उद्धृत करना चाहता हूं।

'खटमलों के कारण खाट और बिस्तर थोड़े ही फेंक दिए जाते हैं और मच्छरों की वजह से मकान थोड़े ही छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार किसी के द्वारा सच्चे धर्म की बुराई सुनकर उसे छोड़ा नहीं जाता।

कोई माता-पिता यदि अपने आंगन में कुआं खुदवाता है तो इसलिए नहीं कि उसकी संतान उसमें डूब मरे; बल्कि इसलिए कि पीढ़ी दर पीढ़ी सबको सदैव शीतल जल उपलब्ध रहे।

साधर्मी वात्सल्य कहते ही उसे हैं, जिसमें नि:स्वार्थ भाव से अपने साधर्मी भाईयों को और कुटुम्ब परिवार को सन्मार्ग में लगाने के लिए अपना संपूर्ण समर्पण कर दें। इससे बढ़कर अन्य कोई पुण्य का कार्य नहीं हो सकता।'

आपकी प्रथम पुण्यतिथि पर मैं और मेरा पूरा परिवार आपको नमन करता है एवं भावभीनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है। ●

उनकी रिक्तता बहुत शोर मचाती है

– संध्या भारिल्ल, जयपुर

जब मैं तीस साल पहले शादी होकर इस परिवार में आयी, तब दादा के सरल भावपूर्ण एवं गम्भीर प्रतिदिन के प्रवचन सुनकर मुझे तत्त्वज्ञान की रुचि हुई और कैसे इस संसार का अभाव करने की कला को सीखा। मैं कई बार ये सोचकर सिहर उठती हूँ, अगर मुझे दादा का ये समागम नहीं मिलता तो क्या होता इस मनुष्य भव का?

मुझ पर उनका अनंत उपकार है।

उनके जीवन जीने के तरीक़े और सरलता से मुझे कभी ये महसूस ही नहीं हुआ कि इतने बड़े विद्वान मेरे ससुर हैं। तीस साल तक एक संयुक्त परिवार में रहकर कभी कोई मौक़ा ऐसा नहीं आया, जब दादा किसी भी परिस्थिति में आकुलित हुए हों या किसी भी मौक़े पर उनकी भावभंगिमा में तीव्र कषाय दिखाई दी हो। एक परिवार में परिस्थितियाँ तो सभी प्रकार की आती ही हैं; पर दादा की विशेषता ये थी कि वे न तो कभी उलझे और ना ही हमें उलझने दिया, हर समय वस्तु स्वरूप का आधार लेकर हमें समझाते रहे।

उनकी प्रिय पंक्तियाँ थी –

जा करी जैसे, जा समय में, जो होतब जा द्वार।
सो बनी है टरी है कछु नाहीं कर लीनो निर्धार।
हमको कछु भय ना रे, जान लियो संसार।।

वे घर में रहकर भी घर से निर्लिप्त रहे, वे घर में रहे, नहीं रहे, बराबर से रहे; लेकिन आज जब वे नहीं हैं, तब उनकी रिक्तता बहुत शोर मचाती है, वे हर पल याद आते हैं। ●

मेरे जीवन-शिल्पी

– सुनील शास्त्री, ग्वालियर

मेरे जीवन-शिल्पी आदरणीय बड़े दादा के चरणों में शत्-शत् नमन करते हुए मैं कुछ संस्मरण लिखने की कोशिश कर रहा हूँ।

दादाश्री अत्यंत मृदुभाषी, सौम्य, सरल, सहजता की प्रतिमूर्ति थे। दादा के बारे में लिखते हुए मेरी आँखों से आँसू झलक आये। दादा के कारण ही मैं आज मोक्षमार्ग में लगा हूँ। जिनवाणी की सेवा कर पा रहा हूँ, यह सब दादा के आशीर्वाद से ही संभव हुआ है।

मेरे स्मृतिपटल पर वह दिन बार-बार छा जाता है कि जब विदिशा के महावीर जयंती समारोह को संपन्न कर दादा और बड़ी मम्मी ग्वालियर पधारे थे; मेरे पिताजी के अपार स्नेह के कारण दादा दो-तीन दिन मुरार प्रवचन के लिये रुके थे। चलते वक्त दादा ने मेरे पिताजी से कहा कि विनोदचंद्रजी साव आपके पांच पुत्र हैं तो एक पुत्र हमें जिनवाणी की सेवा के लिये दे दो। चूंकि मैं घर में सबसे छोटा था, पिताजी ने मेरी ओर इशारा किया कि इसे ले जाइये। ये मेरी भली होनहार थी कि कुछ दिनों पश्चात् मैं स्मारक में दादा की छत्रछाया में अध्ययन हेतु आ गया। इस तरह मेरे जीवन-शिल्पी हैं आदरणीय बड़े दादाश्री।

दादाजी का व्यक्तित्व एक अनूठा व्यक्तित्व रहा है। आप एक आदर्श शिक्षक, सफल संपादक, अनुभवी कथाकार, लोकप्रिय लेखक, सिद्धहस्त अनुवादक, कुशल प्रवचनकार थे; सरल स्वभावी, शांत प्रकृति, सदैव प्रसन्नचित्त, अद्भुत साहित्यकला के धनी - ऐसे आदरणीय व प्यारे दादा का जीवन सादगीपूर्ण रहा। मैंने स्मारक में अध्ययन के काल में कभी भी उन्हें गुस्सा करते हुए नहीं देखा। बहुत ही नरम दिल थे। सिद्धांतों की दृष्टि से वे कठोर, सिद्धांतों पर समझौता नहीं करने वाले व्यक्ति थे।

दादा के अंतरंग व बहिरंग परिणाम अद्भुत थे। दादा ने अपने पूरे जीवन में माँ जिनवाणी की सेवा करते हुए जिनागम के सिद्धांतों के अनुरूप छोटी-बड़ी कई रचनाएँ की, जिनसे आज सारा जैन समाज बखूबी परिचित है। आपकी कई कृतियों ने युवा वर्ग के दिल को झकझोर कर रख दिया है, जिसे पढकर युवावर्ग सद्मार्ग पर लगा है। आपने अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में फैले अंधविश्वास व कुरीतियों का खंडनकर लोगों को सद्मार्ग पर लगाया है। आपने पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समयसार पर हुए गुजराती प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद प्रवचनरत्नाकर के रूप में हिन्दी भाषी साधर्मियों तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया।

दादा की जीवन-शैली अलग ही थी। मैं जब उनके घर पर रुकता था, कई बार देखा दादा साहित्य लेखन व अध्ययन में पूरी तन्मयता के साथ लगे रहते थे। उसका ही फल है कि समाज को इतनी सुन्दर अनुपम कृतियाँ उपलब्ध हैं। दादा के सान्निध्य में रहकर मुझे जो लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके लिये मैं दादा के प्रति अत्यंत उपकृत हूँ।

आज दादा हमारे बीच नहीं हैं; पर उनका बताया हुआ मार्ग हमारे पास है, वही हमारे जीवन के लिये बहुत कुछ है। •

धर्म के क्षेत्र में परीक्षा प्रधानी होना धर्म के प्रति अश्रद्धा नहीं है। परीक्षा करके जो बात स्वीकार की जाती है, वही श्रद्धा अटूट होती है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

नित्य स्वाध्याय की प्रेरणा मिली

– सुरेशचंद जैन, बैंगलोर

बड़े दादा के जीवन की सरलता, सहजता एवं शांत प्रकृति के बारे में जितना लिखा जाए, उतना कम है। बड़े दादा मात्र मेरे समधी ही नहीं थे; अपितु मेरे धर्मपिता भी थे। हमें उनसे धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ और नित्य स्वाध्याय की प्रेरणा मिली। मैं स्वयं को बहुत ही सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मेरे जीवन में बड़े दादा एवं बड़ी मम्मी का संबंधी के रूप में संयोग हुआ। जब से मेरी पुत्री संध्या का संबंध हुआ तब से हम एक परिवार की तरह रहे हैं। वे लगभग सभी धार्मिक आयोजनों जैसे शिविर आदि में हमें साथ रखते थे। बड़े दादा का न केवल मेरे परिवार पर बल्कि उनका प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण देश के जैन समाज पर भी बड़ा उपकार रहा है। उनका साहित्य आने वाली पीढियों का मार्गदर्शन करता रहेगा। उन्होंने एवं छोटे दादा ने विगत लगभग 4 दशकों में सैंकड़ों विद्वान तैयार किए हैं, जो आज देश-विदेश में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। वे हमेशा हमारी स्मृति में रहेंगे। मैं अतिशीघ्र ही उनके मोक्षपद प्राप्ति की कामना करता हूँ। ●

एक अविस्मरणीय छवि

– अविनाश टडैया, मुम्बई

सुख (निराकुलता) बाजार की कोई बिकाऊ वस्तु नहीं है। यह स्वयं के कार्यों-व्यवहारों का ही सुनिश्चित परिणाम है। वास्तव में यह समझना हो तो बड़े दादा (पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल) की कृति ''इन भावों का फल क्या होगा?'' पढकर जान सकते हैं और परखना हो तो बड़े दादा की जीवन शैली एक ज्वलंत उदाहरण है - 'घर में ही वैरागी'।

अत्यंत सरल चित्त, कोमल व्यवहार, निष्कपट वाणी और सादगीभरा जीवन! यही उनकी पहिचान थी। बड़े दादा जिनागम के मर्मज्ञ थे, जिसे वे अपने जीवन में सार्थकता से जिये भी। आज के मुनि भी दीक्षा के बावजूद भी ऐसा जिनागम धारण नहीं कर पाते हैं। निश्चित ही श्रावक का सच्चा स्वरूप उन्होंने पाया था। क्या कहूँ? वे तो गृहस्थ होते हुए भी सन्तों जैसे निर्मल व सरल प्रकृति के धारक थे। हम भी उनके जीवन से प्रेरणा ले सकें - ऐसा हमारा सौभाग्य होना चाहिये।

आज बड़े दादा हमारे मध्य भौतिक शरीर से नहीं हैं; पर उनका साहित्य इस कमी को पूरा करने में समर्थ है। उनकी कृतियाँ उनके जीवन का दर्पण है, जैसा जिया वैसा कलम से चिह्नित कर दिया। ऐसी ही अनूठी एक और कृति पण्डित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल का उल्लेख करना अत्यंत प्रासंगिक है, जिन्होंने बड़े दादा के उत्तमगुणों को अपने में संयोजित किया और बखूबी उससे समाज को लाभान्वित कर रहे हैं। बड़े दादा व छोटे दादा ने जैन तत्त्वज्ञान के जिस महायज्ञ को सफलता के साथ प्रारम्भ किया, उसे जारी रखने की जवाबदारी ये उठाएंगे। ●

तुम कर सकती हो

– डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई

बड़े दादा द्वारा कहे गये ये शब्द उतने ही पुराने हैं, जितना जैनपथप्रदर्शक। बात उन दिनों की है जब जैनपथप्रदर्शक प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया था और प्रथम अंक निकलने में कुछ ही दिन शेष थे। बड़े दादा ने मुझसे कहा – ''तुम्हें एक लेख इस अंक के लिये लिखना है।''

सुनते ही मैंने कहा – ''नहीं दादा! नहीं!! इतनी जल्दी मुझसे नहीं होगा।

तब बड़े दादा ने मुझसे कहा – ''अप्पा! मैं जानता हूँ, तुम कर सकती हो; तुम्हें करना ही है।''

दादा के ये विश्वासभरे प्रेरणादायी शब्द मेरे लिये 'जादू की छड़ी' का काम करते हैं। जब-जब, जिस-जिस कार्य में मुझे लगता है कि यह मुझसे नहीं हो सकता; तब-तब दादा के शब्द कानों में गूंजने लगते हैं और कार्य कब कैसे हो जाता है पता ही नहीं लगता है।

अभी भी कुछ दिन पूर्व जब संजीवजी गोधा का मैसेज आया और उन्होंने कहा कि अल्प समय है पर आपको दादा के बारे में कुछ लिखना है, तब मैं अपनी अस्वस्थता व्यक्त करने ही वाली थी कि दादा के शब्द कानों में गूंजने लगे ''तुम कर सकती हो! तुम कर सकती हो!! तुम कर सकती हो!!!

स्वाध्याय का सही अर्थ समझा

– समता सौगानी, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा के व्यक्तित्व के बारे में कुछ शब्दों में लिखना मेरे लिये बहुत कठिन है। मैं बड़े दादा से 9 वर्ष की उम्र से परिचित हूँ, जब से मेरी दीदी का संबंध उनके परिवार में हुआ था और तभी से हम सब परिवारजनों का सच्चे धर्म से परिचय हुआ।

पहले मेरे माता-पिता से हमें दर्शन और पूजन पाठ के ही संस्कार मिले थे; लेकिन स्वाध्याय का सही अर्थ हमें बड़े दादा और मम्मी से ही पता चला। बड़े दादा इतने सरल एवं सहज थे कि उनके साथ कभी ऐसा लगा ही नहीं कि वे इतने बड़े विद्वान थे। उनकी विद्वत्ता का परिचय उनके साहित्य से मिलता है। अपनी बातों में वे हमेशा तत्त्वचर्चा और शास्त्र स्वाध्याय की प्रेरणा देते थे। हम जब भी उनके पास जाते थे, वे कुछ न कुछ पढते या अपनी टेबल पर बैठे लिखते ही रहते थे। उनका सरल स्वभाव हमेशा हमें प्रेरणा देता था कि जीवन में कोई भी परिस्थिति हो उसका धैर्य एवं सहजता से सामना करना चाहिये। उनकी जीवन शैली से क्रमबद्धपर्याय और निमित्तोपादान जैसे विषय प्रतिबिम्बित होते थे। उनके साथ बिताये हुए समय की स्मृतियाँ तो बहुत हैं, जैसे उनका बैंगलोर आना, हमारा देवलाली, बीना, इन्दौर, राजकोट आदि शिविरों में साथ रहना इत्यादि।

दादा का जीवन ही मेरे लिये एक शिक्षा की तरह था। मैं अतिशीघ्र ही उनके भव-भ्रमण से छूटकर परमपद में स्थित होने की भावना भाती हूँ।

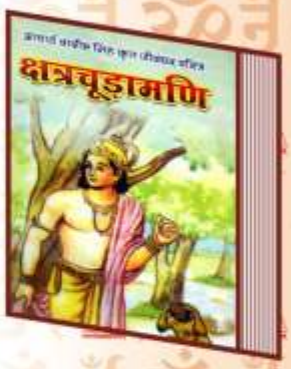

साधर्मी वात्सल्य कहते ही उसे हैं, जिसमें निःस्वार्थ भाव से अपने साधर्मी भाइयों को और कुटुम्ब-परिवार को सन्मार्ग में लगाने के लिए अपना सम्पूर्ण समर्पण कर दे। इससे बढ़कर अन्य कोई पुण्य का कार्य नहीं हो सकता।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

सरलता विनम्रता व शांतिप्रियता सीखें

– सरिता जैन, ग्वालियर

आदरणीय बड़े दादा जैसा व्यक्तित्व मिलना बहुत कठिन है। वे अत्यंत सरल स्वभावी, हँसमुख, सहज, चिंतामुक्त व्यक्ति थे। सबका ध्यान रखना, सबके बारे में हमेशा हितकर सोचना - ऐसा महान पुरुष मिलना बहुत कठिन है। मैं उनसे करीब 30-32 साल से जुड़ी थी, मैंने कभी उन्हें क्रोधित होते हुए नहीं देखा। हमेशा शांत व शीतल ही देखा। मेरा परम सौभाग्य है कि दादा मेरे पितातुल्य थे, उन्होंने मुझे हमेशा बेटी की तरह ही प्यार दिया। मेरे लिये अत्यंत हर्ष का विषय है कि मेरे जीवन में मुझे दो पिता मिले, एक बड़े दादा, दूसरे मेरे पापा। जब वो बैंगलोर मेरी बड़ी बहन संध्या का सम्बन्ध पक्का करने आये थे, उसके बाद उन्होंने मेरे पापा को सुनीलजी के बारे में बताया और कहा कि आपको सरिता का सम्बन्ध ग्वालियर ही करना है। उन्होंने मेरे ससुर साहब से भी कहा कि आपको संध्या की छोटी बहन सरिता को ही अपनी छोटी बहू बनाना है। वे स्वयं मेरा संबंध लेकर मेरे पापा के साथ ग्वालियर आये थे। उन्होंने मेरा भविष्य धर्ममय हो, ऐसी पवित्र भावना मन में रखी और वह पूरी हो रही है। मुझे सुनीलजी से शादी करके अपने स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो व तत्त्वविचार कैसे हो, यह सीखने का सुन्दर अवसर मिला। लौकिक जीवन तो सार्थक हो ही गया; पर पारलौकिक जीवन में भी आगे बढने का सौभाग्य मिला है। दादा के अनगिनत संस्मरण मेरे ध्यान में हैं, सब बताना मुश्किल है। वे बहुत ही सरल तरीके से हर समस्या का समाधान करते थे। बड़ी से बड़ी मुश्किल में भी हर समस्या का समाधान बहुत ही आसानी से खोज लेते थे, उनका समाधान भी हमेशा तत्त्वनिर्णयपूर्वक ही होता था। उनके जीवन से बहुत सारी बातें सीखने को मिलती हैं। उनके जीवन की सरलता, सहजता, हँसमुख छवि हमेशा दिल व दिमाग में बसी हुई है। हमें भी उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। उनका दिल पानी की तरह स्वच्छ व वाणी भी उसी तरह शीतल थी। मेरा बेटा संचित भी पाँच साल स्मारक में रहा तो दादा का प्यार उसे भी भरपूर मिला। दादा-मम्मी का स्नेह तो हमेशा मिलता था, साथ ही गलत काम करने पर प्यार भरी डांट भी मिलती थी। उसकी चिंता भी बहुत करते थे व अत्यधिक ध्यान भी रखते थे। बड़ी मम्मी तो सबका माँ से भी अधिक ध्यान रखती है, ये बताने की बात नहीं है। जितने भी बच्चे बच्चों के पापा पढ चुके हैं, वो मम्मी की शीतल छाँव के तले ही बड़े हुए हैं। क्या-क्या बताऊँ, मेरे जीवन में तो दोनों का बहुत विशेष सहारा रहा है।

हम सब बड़े दादा से उनकी सरलता, विनम्रता, शांतप्रियता सीखें, अपने जीवन में लाने की कोशिश करें - ऐसी पवित्र भावना के साथ....जय-जिनेन्द्र। ●

हमारे कबीरा बड़े दादा

– स्वानुभूति जैन शास्त्री

यादों के पन्नों पर वो चेहरा ऐसे उभरता है,
हँसी की खिलखिलाहट में फ़िक्र को समेट देता है
किसी से कभी उनको शायद कोई शिकायत ही नहीं थी
ना उनने किसीकी की, ना कोई से हमने उनकी सुनी
वो ख़ुश थे अपने परिकर में, और सीमित संयोगों में,
ना बहुत महत्वाकांक्षा थी, ना रमते व्यर्थ झमेलों में
कबीरा थे वो बाज़ार में खड़े, माँगते थे सभी की ख़ैर,
ना दोस्ती की कभी ऐसी की हो जाए किसी से बैर
उनकी खिलखिलाती हँसी और तनाव मुक्त चेहरा
हमें याद आता है, कहता है तनाव मुक्त हो जा

दादा तो वे सिर्फ़ मेरे हैं

– सर्वज्ञ भारिल्ल, जयपुर

पूरी दुनिया उन्हें दादा कहती है; पर देखा जाए तो मैं ही वह सौभाग्यशाली इंसान हूँ, जिसके पास उन्हें दादा बोलने का सम्पूर्ण अधिकार सुरक्षित है। दादा के बारे में मेरे भाव शब्दों में बिल्कुल बयान नहीं कर सकता। इसके लिए आपको मेरे साथ घंटों समय बिताना पड़ेगा; क्योंकि मैं उनका ऐसा पोता हूँ, जो उन्हीं की गोदी में पला-बढा और लगभग 28 साल उनके साथ रहने का समय मिला। मेरी किसी भी बात को आप अतिशयोक्ति ना समझें; क्योंकि पोता होने के नाते मैं उनका महिमा-मंडन ही करूँगा - ऐसा बिलकुल नहीं है; उनकी महिमा तो पूरी दुनिया कर ही रही है, पर वे तो मेरे जीवन में दादा होने के साथ-साथ मेरे एकमात्र आदर्श-पुरुष हैं। पाँचवीं कक्षा में जब मैं 10 साल का था तो टीचर ने अपने जीवन के आदर्श बताने को कहा था, पूरी कक्षा में एक मैं ही था, जिसने यह कहा था कि मैं मेरे दादा जैसा बनना चाहता हूँ। उनको आदर्श मैंने तब से माना है। मुझे आज तक उनके जैसा कोई दूसरा नहीं मिला। वे अनोखे ही थे और मुझे लगता है उन जैसा शायद ही कोई हो पाएगा।

मैं खुद जब अपनी गिरेबां में झाँकता हूँ तो लगता है कि उनका अंश, उनका वंशज होने के बावजूद अभी तो मैं उनके जैसा एक अंश भी नहीं बन पाया हूँ। मुझे तो इसी बात का आश्चर्य होता है की बिना माथे पर सल लाए, बिना क्रोध, बिना तनाव उन्होंने इतने महान कार्य कैसे कर लिए? हमारे परिणाम तो प्रति-समय ऊपर-नीचे हुआ करते हैं। अब वे नहीं रहे तो लगता है कि इतना ऊपर नीचे होकर हम उखाड़ भी क्या रहे हैं? जितना और जो वे कर गए उसके सामने। जब सहज, शांत रहकर सरलता से, चाहे लौकिक हो या पारलौकिक वे इतने उत्कृष्ट कार्य कर गए तो हमें तो अभी बहुत सुधरने की ज़रूरत है।

दादा-दादी मुझे मात्र 2 साल की उम्र से अपने साथ शिविरों में ले गए। धर्म के संस्कार डालने में उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है। दसवीं के बाद भी मैं शायद लौकिक पढ़ाई में भटक जाता; वे ही थे, जिन्होंने मेरा रुख़ शास्त्री की तरफ़ मोड़ा। पता नहीं उन्हें कौनसी सिद्धि प्राप्त थी, उनके मुखारबिंद से निकली सिर्फ़ एक लाइन हर ग़लत दिशा में जा रहे निर्णय को बदलने में सक्षम थी; क्योंकि वे नि:स्वार्थ और निश्छल होती थी और उनकी बातें सिद्धांतों पर आधारित होती थी। हमारे परिवार में हम सब सुबह और शाम का भोजन एक साथ ही करते हैं, आज दादा नहीं हैं; पर उनकी कुर्सी अब भी ख़ाली रहती है, कभी खाने की टेबल पर, कभी सर्द भरी रात में उनके पलंग पर रज़ाई में, कभी सैर सपाटा करते वक्त उनकी सोचने के तरीक़े को क़रीब से जानने का मौक़ा मिलता था। उनके पास जगत को देखने का असाधारण दृष्टिकोण था, मैं कई बार अचंभित हो जाता था कि सोचने का यह तरीक़ा भी हो सकता है। अपनी सोच तो निम्न महसूस होती थी।

शरीर को तो कौन पाल सकता है, वह तो स्वयं अपने से है; पर हमारी सोच को पालने का काम, उसे दिशा देने का काम उन्होंने किया है। सच कहूँ तो उनकी दृष्टि में जगत के जीव निर्लक्ष्य, दौड़-धूप में व्यर्थ ही जीवन निकाल रहे थे; पर वे उसको भी बस जान-देखकर मौन रहते थे। कोई सलाह माँगने आए तो ज़रूर समझा देंगे, अन्यथा दुनिया जाने दुनिया का काम। दुनिया से निर्लिप्त रहकर भी वे ऐसे नहीं थे कि उन्हें किसी की परवाह ही नहीं थी। उन्होंने

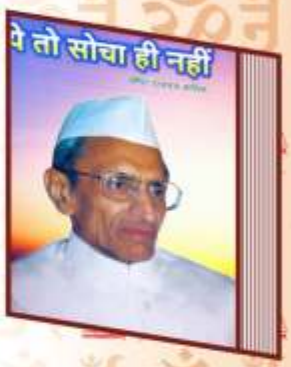

भूल की पुनरावृत्ति न होने देना ही भूल का सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। अतः भूत की भूलों को भूल जाओ, तत्त्वज्ञान के बल से वर्तमान में हो रहे भावों को संभालो, भविष्य स्वयं संभल जायेगा।''

- पं. रतनचंद भारिल्ल

अपने लेखन और प्रवचनों से लोगों में अध्यात्म की रुचि जगाने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह आज भी मिसाल है। परिवार को एक साथ रखने के कार्य में उनकी सबसे बड़ी भूमिका रही। शहर में काम काज के लिए चार लोगों के बैठने हेतु बड़ी गाड़ी के होने पर भी कोई छोटी गाड़ी ख़रीदने पर उन्हें यह ऐतराज होता था कि इसमें जब पूरा परिवार नहीं जा सकता तो यह किसी काम की नहीं है, इसे मत ख़रीदो, भले ही उसकी क़ीमत कुछ भी हो।

जगत में जगत से अप्रभावित रहकर भी सारे काम कैसे किए जा सकते हैं, यह हम उनसे सीख सकते हैं, काम होना, नहीं होना तो नियति पर आधारित है, हम उससे क्यों प्रभावित हों? हमारे निमित्त से व वस्तु की अपनी योग्यता से होना होगा तो होगा, इस बात को उन्होंने मानो पी लिया था और यही उनका जीवन बन गया था। इसके साथ ना कभी किसी की शिकायत, ना किसी की बुराई, ना ही किसी को कोसना, कुछ भी उनके जीवन में नहीं था। उनके चलने में, उनके बोलने में, उनके काम में जो सहजता दिखाई देती है, उसी सहजता के कारण वे हमारे दिलों में अमर हो गए हैं और उनका जन्म सहजता दिवस के रूप में युगों-युगों तक मनाया जाएगा।

उनका अंत समय क़रीब था और मैंने उनका हाथ ज़ोर से पकड़ रखा था कि दादा अभी नहीं जाने दूँगा; पर जब आयु कर्म पूरा हो ही गया था तो कौन रोक सकता था? उनका हाथ मेरे हाथ में था, उनकी आख़िरी साँसों में, आँखों में आंसू लिए मैंने उनके सीने पर सिर रखकर वादा किया था कि जो आपने संस्कार दिए है, ज्ञान दिया है हम उसे मरते दम तक आगे तक ले जाएँगे। ●

मेरे दादा

– चेरी भारिल्ल, जयपुर

वैसे तो मैं बड़े दादा को बचपन से देखती आ रही हूँ, इतना बड़ा और गम्भीर व्यक्तित्व, उच्च कोटि के विद्वान को देखकर मुझे उनसे दूर से ही देखकर डर लगता था। मैं कभी उनके सामने ही नहीं आयी; लेकिन जब मैं शादी करके 3 साल पहले इस परिवार में बहू बनकर आयी, तब मुझे दादा के पास रहने का, उनकी जीवनशैली को नज़दीकी से देखने का मौक़ा मिला। मुझे उनसे इतना प्यार मिला, मानो मैं उनकी पोताबहु नहीं बेटी ही हूँ। उनके चेहरे पर मैंने अपनी पूरे 3 साल में कभी भी दुःख नहीं देखा, परेशानी नहीं देखी। उन्हें हमेशा हँसते हुए ही देखा है। वे हर परिस्थिति में सहज रहते थे, उन्हें किसी भी चीज़ का कोई विकल्प ही नहीं था। उनकी सबसे अच्छी बात यह थी कि घर पर कुछ भी परिस्थिति हो, वे हमेशा मुस्कुरा देते थे। मैं उनकी इस निश्छल मुस्कुराहट की क़ायल थी। मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझती हूँ जो मुझे ऐसे महान व्यक्तित्व के साथ रहने का और उनकी सेवा करने का मौक़ा मिला।

उनका कुछ साहित्य मैंने पढ़ा है जो जन-सामान्य के लिए अत्यंत उपयोगी है, सरलतम भाषा और गहरा तत्वज्ञान उनकी विशेषता है। उन्होंने कहानियों के माध्यम से हमें धर्म के मार्ग पर चलने के साथ-साथ लौकिक जीवन में कैसे सुखी रह सकते हैं, यह भी समझाया है। जिसे भी सुखी होने का उपाय समझना है, वे बड़े दादा के साहित्य को अवश्य पढ़ें। ●

पद, प्रतिष्ठा एवं ज्ञान का मद नहीं था

– रवीन्द्र कुमार सौगानी, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा से मैं लगभग 20 वर्षों से सम्पर्क में रहा हूँ। वे अत्यंत ही शांत स्वभावी एवं मृदुभाषी व्यक्ति थे। वे जब भी हमसे मिलते थे, हमेशा हँसते-मुस्कुराते हुए ही हमारे साथ बातें करते थे। क्रोध तो उनके चहरे पर नजर ही नहीं आता था। क्रोध के साथ-साथ अहंकार भी उनसे कोसों दूर था। अपने पद, प्रतिष्ठा एवं ज्ञान का मद उनके जीवन में कभी देखने को नहीं मिला। उनका व्यक्तित्व उनके द्वारा लिखित साहित्य की तरह ही अत्यन्त सरल एवं सुबोध था। उनके प्रवचन की शैली भी इतनी सरल थी कि वे गूढ विषयों को भी रोचक उदाहरणों से स्पष्ट कर देते थे। वास्तव में वे मेरे लिये अत्यन्त सम्माननीय एवं आदरणीय व्यक्ति थे।

ऐसी उत्कृष्ट परिणति वाले जीव के लिये मैं अत्यन्त निकट भविष्य में संसार-चक्र से मुक्ति की कामना करता हूँ। ●

मेरे दादा की जगह कोई नहीं ले सकता

– सर्वदर्शी भारिल्ल, जयपुर

दादा की सरलता के बारे में सब जानते हैं; पर उनकी समय निष्ठा और किसी भी काम को करने की धुन को जितनी गहराई से मैंने देखा है, उसे बताना भी मुश्किल है। कभी-कभी तो नींद के बीच में उठकर 2-3 बजे लिखना शुरू कर देते और सुबह जब स्कूल जाते समय मैं देखती थी तो भी नाइट लैम्प चलता रहता था और दादा अपनी धुन में मस्ती में बिना किसी से प्रभावित हुए लिखते रहते थे। उनकी किसी भी काम के प्रति धुन, जिसमें उन्हें ना तो किसी सुविधा की अपेक्षा थी और ना किसी साधन की, बस वे अपने काम में लगे रहते थे। वह मेरी जिंदगी के लिए सबसे बड़ी सीख है। मैं वह सौभाग्यशाली बच्ची हूँ, जिसे दादा के साथ बचपन में खेलने का मौका मिला है और मैंने उनसे पढ़ाई के साथ-साथ धार्मिक व सामाजिक बातें भी बहुत सीखी हैं। हर एक कठिनाई के साथ-साथ हर खुशी के मौके पर भी दादा की प्रेरणा व उत्साह हमेशा मिला है। बचपन में दादा का रोज स्कूल जाने के लिए उठाना और अंत तक कभी किसी बात पर ना तो गुस्सा करना और ना ही चिड़चिड़ाना; बल्कि मम्मी-पापा के गुस्सा करने पर उनको ही उल्टा डाँटना। जब मैं थोड़ी बड़ी हो गयी, तब कभी-कभी बीमार होने पर मुझे कॉलेज जाने के लिए मना करना और चिंता व्यक्त करना, अब बहुत याद आता है। अगर मैं दिन में 5-6 बार उनके पास ना जा सकूँ तो मुझे बुलाते और मुझे देखकर बस हँस देते और बोलते घर पर ही है ना; उनकी इस कमी को कौन पूरा करेगा? 2 साल पहले जब मैं फ़ैशन डिज़ाइनिंग के लिए लंदन जा रही थी, उस समय दादा ने मुझे बुलाकर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा - "सिद्धि बेटा! ध्यान रखना, कुछ गलत हो तो उसके बारे में सोचकर अपना मन कभी खराब नहीं करना; बल्कि उसको ठीक कैसे किया जाए, उसके बारे में सोचने में अपना समय लगाना; हम सब यहाँ हैं, कभी किसी भी चीज़ की कमी नहीं होने देंगे; पर तुम वहाँ अपने गुरूजनों से जितना सीख सको उतना सीखना, कभी समझ न आए तो बार-बार पूछना। घूमने फिरने में कमी मत करना; पर अपने काम व पढ़ाई पर भी पूरा ध्यान देना।" और अंत में उन्होंने कहा - जो होना है वो निश्चित है और अनहोना कभी होता नहीं है। दादा की जगह कोई नहीं ले सकता, उनके बिना जीवन और घर दोनों बहुत सूना हो गया है, वे बहुत याद आते हैं। ●

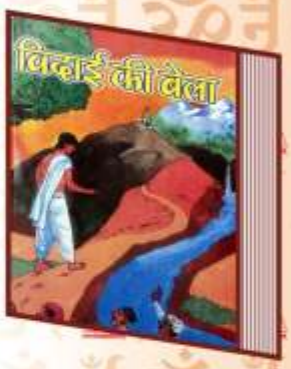

वर्तमान मानसिक और दैहिक दुःखों से घबड़ाकर बे-मौत मरने की, आत्मघात करने की भूल कभी नहीं करना चाहिए। अन्यथा अपघात करने का फल जो पुनः नरक-निगोद में जाना है, उससे कोई नहीं बचा पायेगा।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

चित्त से नहीं उतरती है

– अध्यात्मप्रभा जैन, मुम्बई

आँखें खुली रखूँ,
या आँखें बंद रखूँ
उनको याद करूँ
या उन्हें भुलाना चाहूँ
पर एक मधुर मुस्कान
चित्त से नहीं उतरती है

चाहे कोई उन पर कंकर फेंके
या कोई पत्थर बरसाए
तेज हवा के झोंके आएं
या घनघोर घटा घिर आये
पर एक शांत छवि
भूले नहीं भूलती है

वैभव का अथाह सागर लहराये
या निर्झर सिमटते जाएं
वैभव से मुझे क्या लेना-देना
निर्झर भी तो प्यास बुझाते हैं
मुझको तो मेरा आतम प्रिय है
बस उनकी यही परिणति
मेरे चित्त को भाती है
बस एक मधुर मुस्कान
चित्त से नहीं उतरती है।

आदर्श थे

– पूजा भारिल्ल, जयपुर

जब कभी मैं सोचती हूँ
कि बड़े दादा कैसे थे,
तो प्रश्न वाचक चिन्हों की
क़तारें खड़ी हो जाती है???
क्या वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे
जो सदा मुस्कुराते रहते थे...
जो सदा सहज रहते थे...
जो एक ख्यातिप्राप्त विद्वान थे...
जो एक बहुत बड़े लेखक थे...
जो निरभिमानी व्यक्ति थे...
जो किसी को भी एक पल में
अपना बना लेते थे...

नहीं नहीं...
मात्र इतना ही उनका परिचय नहीं था
ये सब तो उनका बाहरी परिचय था

वे तो जिनवानी के रहस्यों को,
जैनधर्म के सिद्धांतों को,
सही रूप में
जीवन में उतारने वाले थे,
हम जैसे अनेक अनेक
लोगों के आदर्श थे।

विद्वत् एवं श्रेष्ठीवर्ग की दृष्टि में

साहित्य सृजन में अविस्मरणीय योगदान

अशोक गहलोत (मुख्यमंत्री – राजस्थान)

स्व. श्री भारिल्ल द्वारा भारतीय अध्यात्म दर्शन और साहित्य सृजन में दिये गये योगदान को हमेशा याद किया जायेगा। ●

दिशा देने का कार्य किया

– प्रदीप जैन 'आदित्य' (पूर्व केन्द्रीय मंत्री–झांसी, भारत सरकार)

दुनिया का हर व्यक्ति जन्म लेने के बाद दशा और दिशा के लिये काम करता है, दशा के लिये हर व्यक्ति काम करता है; लेकिन दिशा देने का काम सृष्टि में सबसे दुर्लभ है, बड़े दादा ने दिशा देने का काम किया था। आगे परम्परा चलती रहे ऐसी दिशा देने वाले सभी लोग यहाँ बैठे हैं, छोटे दादा, शुद्धात्म भाईसाहब, परमात्म भाईसाहब बैठे हैं, सभी लोग बैठे हैं, मुझे लगता है कि बुन्देलखण्ड की माटी ने पूरी दुनिया में धर्म और अध्यात्म के नये आयाम स्थापित किये हैं। पूर्व के अनेक साहित्यकारों से भी आगे हम छोटे दादा और बड़े दादा को देखते हैं, पूर्व के साहित्यकारों ने लिखा; लेकिन वह लेखन दिशा नहीं देता, हम सबका भी अन्तिम समय आना है, हम किस पर्याय में हैं, कहाँ जाना है, हमें भेदविज्ञान कैसे हो, हम कैसे राग-द्वेष आदि भावों से दूर हों, ये दिशा देने वाले साहित्यकार थे हमारे बड़े दादा।

पत्थर ऐसे ही पड़े रहते हैं; लेकिन जब शिल्पकार तराश देता है, तो उसमें हम प्रतिमा देख लेते हैं, हम उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं, दादा ने वही काम किया; दादा ने हजारों की संख्या में जीवंत प्रतिमाएं सृजित की हैं, वो पूरी दुनिया को दिशा दे रही हैं। आज उनकी देह नहीं है; लेकिन वो गये नहीं है। उनकी पर्याय परिवर्तित हुई है; लेकिन उनकी ज्ञानरूपी सुगन्ध प्रति समय विद्यमान है। मेरी बहन भी बता रही थीं कि हमने ऐसे लेखक, व्याख्याता और गुरु नहीं देखे, छोटे दादा हों या बड़े दादा हों, उन्होंने जो ग्रहण किया, उसको सब लोगों तक पहुंचाया, दुनिया में मुमुक्षु मण्डल के माध्यम से बहुत अच्छे ढंग से लोगों को परिमार्जित करने का सिलसिला चला है। मैं पूज्य दादा के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ, निश्चित रूप से उनकी देह की कमी तो पूरी नहीं हो सकती; लेकिन उनके विचार, उनका लेखन, उनका ज्ञान अनंत काल तक हम सबको प्रेरणा देता रहेगा।

बड़े होने के बाद दो भाईयों में समरसता बहुत कम रहती है, जैसे-जैसे उम्र बढती है, कषाय चढ जाती है, मान चढ जाता है, उसके अन्दर झूठ प्रवेश कर जाता है; लेकिन छोटे दादा और बड़े दादा में ऐसा बिलकुल नहीं था, छोटे दादा की प्रशंसा में बड़े दादा ऐसे समाहित हो जाते थे जैसे दूध में पानी समाहित हो जाता है; वे छोटे दादा की प्रशंसा को आत्मसात करते थे। ये उनकी अद्भुत विशेषता थी, जो उनके मन की सरलता और धवलता बतलाती थी। मैं उनको पुन: नमन करता हूँ। ●

वस्तुतः हर किसी के सामने अपने दिल का दर्द या मन की व्यथा कहने से कोई लाभ नहीं है। इस मशीनी युग में किसी को न तो किसी के कष्ट सुनने की फुरसत है और न उन्हें सहयोग करने व सहानुभूति प्रदर्शित करने का ही समय है। अतः किसी से कुछ कहना, भैंस के आगे बीन बजाना है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

उनके बताये मार्ग पर चलें

– कालीचरण सर्राफ, जयपुर (पूर्व शिक्षा मंत्री, चिकित्सा मंत्री एवं केन्द्रीय विधायक)

अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल को मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। आप विनम्र स्वभाव के धनी और अपनी लेखनी के द्वारा कठिन से कठिन बात को भी सरल शब्दों में संजोकर अपने विद्यार्थियों को देते थे। अपने पूरे कार्यकाल में आपने लगभग 1000 विद्यार्थियों को शिक्षित किया, ऐसे दुर्लभ व्यक्तित्व के धनी आदरणीय भारिल्ल साहब का जाना बहुत ही दुखद है, मैं अपने अंत:स्तल से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, मैं उपस्थित सभी महानुभावों से एक ही अपील करना चाहता हूँ कि हम सभी उनके द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलें, इससे ही निश्चित रूप से समाज का भी उत्थान होगा, अपने स्वयं का भी उत्थान होगा और देश का भी उत्थान होगा; यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ●

'ऐसे क्या पाप किए' कृति का विहंगावलोकन

ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.

उपर्युक्त पुस्तक के लेखकीय में लेखक ने लिखा है – ''प्रस्तुत पुस्तक में इक्कीस निबन्ध हैं। ये ऐसे सरल, सुबोध, सरस और सारगर्भित हैं कि वे सबकी समझ में तो आसानी से आयेंगे ही; जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन भी ला सकते हैं। मिथ्या मान्यता की कंटकाकीर्ण ऊँचीनीची दु:खद पगडंडी पर बढ़ते कदम सच्चे सुख की समतल सड़क की ओर मुड़ सकते हैं।''

ये विचार मुझे पूरी पुस्तक पढ़ने के बाद यथार्थ प्रतीत हुए। अतः पाठकों से मेरा निवेदन है कि यह पुस्तक आप भी मनोयोगपूर्वक पढ़ोगे तो आपको भी जरूर लाभ होगा। इस पुस्तक का नाम प्रथम लेख के आधार पर है।

1. ऐसे क्या पाप किए? – इस प्रथम निबंध में लेखक ने पाँच पाप और सात व्यसनों से भी महान पाप जो मित्यात्व है, उस ओर ध्यान आकर्षित किया है। दुनिया मात्र सात व्यसन और हिंसादि पापों को ही पाप जानती है और इनसे अनन्त गुना बड़े पाप को पाप ही नहीं मानती, यह आश्चर्य और खेद की बात है। मुझे विश्वास है कि जो इस निबंध को आत्महित की मुख्यता से पढ़ेगा, उसके ज्ञान में मिथ्यात्व और अशुभ-आर्त-रौद्रध्यान सबसे बड़े पाप हैं, यह विषय स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा।

इस निबंध के विषय को आगम के आलोक में देखें तो हिंसादि पाँच पाप और सप्त व्यसनों से मात्र 40 कोड़ाकोड़ी सागर का ही कर्मबंध होता है और उससे अधिक से अधिक सातवें नरक की ही प्राप्ति होती है; लेकिन जो पाप अज्ञानी के ज्ञान में मान्य ही नहीं है, ऐसे मिथ्यात्व नामक पाप से उसे 70 कोड़ाकोड़ी सागर की स्थितिवाला कर्मबंध होता है और जीव को निगोद अवस्था की प्राप्ति होती है।

2. नित्य देवदर्शन क्यों? इस लेख में लेखक ने कहा – ''देवदर्शन की प्रतिज्ञा लेनेवालों की भी शास्त्रों में खूब प्रशंसा की है; परन्तु वह प्रशंसा प्रतिज्ञा न लेनेवालों की अपेक्षा से की गई है। इससे अधिक उस प्रशंसा का और कुछ अर्थ नहीं है।'' इस कथन से लेखक ने देवदर्शन

की अनिवार्यता तो बताई है; तथापि उसमें उपादेय बुद्धि का परिहार भी किया है।

पृष्ठ 20 पर इस लेख का दूसरा पैराग्राफ तो अति महत्त्वपूर्ण है। वहाँ लिखा है - 'आज के पढ़े-लिखे वर्ग में देव-दर्शन के प्रति उत्साह-हीनता का एक जबरदस्त कारण यह भी है कि जो पुरातन पन्थी, रूढ़िवादी इने-गिने लोग जीवन भर प्रतिज्ञाओं का निर्वाह करते रहते हैं; फिर भी वही कषायें, वैसे ही बेईमानी, वही अशान्ति उनके जीवन में दिखाई देती है, अतः लोगों को निराशा होती है, उन्हें कहने का अवसर मिलता है कि ''जो देव-दर्शन या पूजन-पाठ करते हैं, उन्होंने क्या पा लिया? हममें उनमें क्या अन्तर है?'' इससे लेखक ने नित्य देव-दर्शन करने वालों की क्या और कितनी जिम्मेदारी है, इसका ज्ञान कराया है।

पृष्ठ 21 पर तथा इसके आगे-पीछे लेखक ने कहा कि - जिनेन्द्र भक्त के मन में लौकिक कामनाओं का सहज ही अभाव रहता है; तथापि लौकिक कामनाओं की पूर्ति भी स्वयमेव हो ही जाती है।

पृष्ठ 23 पर खड़गासन मूर्ति के परिप्रेक्ष्य में कविवर भूधरदासजी के भजन के आधार पर आत्मा के अकर्तापन की सिद्धि की है, जो वास्तविक मननीय है। इस विषय के खुलासा के लिए पद्मनन्दि पंचविंशतिका का उद्धरण भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

पृष्ठ 25 पर दर्शन के अनेक अर्थ दिए हैं, वे भी पठनीय एवं स्मरण रखने योग्य हैं।

3. श्रावक के षट-आवश्यक - लेखक ने इस लेख के प्रारंभ में श्रावक की परिभाषा एवं श्रावक के भेदों का कथन किया है, वह तो अच्छा है ही, तदनन्तर आवश्यक शब्द का अर्थ समझाते हुए अनेक शास्त्रों के आधार दिए हैं, जो वास्तविक स्तुत्य है। आवश्यक का तात्पर्य निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है - ''मात्र अपने उपयोग को विषय-कषाय एवं राग-द्वेष से मुक्त रखना आवश्यक है।''

पृष्ठ 30 पर पूजा के प्रकरण में सचित्त, अचित्त एवं मिश्रपूजा का अर्थ मनुष्य को विशेष चिंतन-मनन करने के लिए बाध्य करता है।

पृष्ठ 31 पर पूजा के प्रयोजन में अध्यात्म भी समझाया है; लेकिन वह भी पूजापाठ के आधार से ही समझाया है।

पृष्ठ 32 पर पुण्य कोई ग्रहण करने योग्य वस्तु नहीं है, इस विषय को पत्नी को लेने के लिए बहुत ससुराल जानेवाले जमाई के दृष्टान्त से अत्यन्त मार्मिकरूप से समझाया है।

पृष्ठ 33 पर दिया वाक्य पुण्य-पाप के त्याग के स्वरूप का ज्ञान कराता है - वहाँ लिखा है कि - ''यहाँ यह ज्ञातव्य है कि पाप तो बुद्धिपूर्वक छोड़ा जाता है और पुण्य अपने भूमिका के अनुसार स्वयं छूट जाता है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता।''

पृष्ठ 33 पर ही पूजा के अष्टद्रव्य का प्रयोजन लिखते समय आलम्बन की आवश्यकता का कथन बहुत अच्छा आया है, जो इसप्रकार - ''अरे भाई! जिसप्रकार पत्नी को साथ लाते हैं और रुपये वहीं बाँट आते हैं, ठीक इसीप्रकार भगवान की भक्ति में वीतरागता तो गरहण करते हैं और बीच-बीच में आया हुआ प्रशस्त रागरूप पुण्य वही भगवान के प्रज्वलित केवलज्ञानरूपी अग्नि में समर्पित कर देते हैं। पुण्य कोई ग्रहण करने की वस्तु नहीं। यद्यपि पूजा करने में पुण्य मिलेगा, इसमें दो राय नहीं है; परन्तु जो पुण्य का लोभी होकर ग्रहण करेगा और बार-बार पुण्य फल की प्राप्ति हेतु पूजा करेगा तो तीव्र राग होने से वह भी नहीं मिलेगा, अतः पूजा के सही उद्देश्य को समझकर पूजा करना चाहिए।''

जलादि से पूजन करने के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए विवेचन तर्क तथा युक्ति से किया

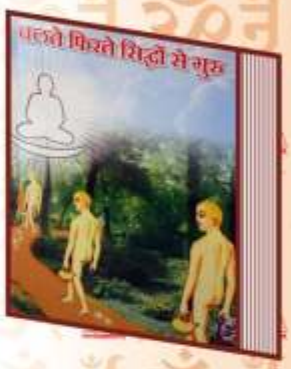

यदि इस संसार में पुण्यात्मा से पुण्यात्मा का जीवन भी कुशल-मंगल होता, पूर्ण सुखी होता तो यहीं मोक्ष होता, फिर मोक्ष के लिए कोई प्रयत्न ही क्यों करता?

- पं. रतनचंद भारिल्ल

है, जिसे समग्र ही पढ़ना चाहिए। मुख्यरूप से दीपक से पूजा का प्रयोजन विस्तार के साथ किया है।

पृष्ठ 39 पर प्रतीक का विषय अति प्रभावी है, उसे देखें - ''यहाँ ज्ञातव्य है कि पूजा के सभी (अष्ट) द्रव्य तीन प्रकार के प्रतीक हैं - 1. गुणों के प्रतीक, 2. भोगों के प्रतीक और 3. आलम्बन के प्रतीक तथा जिसप्रकार जिनमन्दिर समवसरण का प्रतीकरूप है, जिनप्रतिमा अरहंत भगवान की प्रतीकरूप है, पुजारी स्वयं इन्द्र के प्रतीकरूप हैं, जिसप्रकार इन सबमें स्थापना निक्षेप से ऐसा प्रतीकरूप व्यवहार होता है, उसीप्रकार अष्टद्रव्य में भी स्थापना निक्षेप से जल में क्षीरसागर के जल की स्थापना कर ली जाती है, उज्ज्वल धुले चावलों में अक्षत की स्थापना एवं केशर से रंगे चावलों में पुष्पों की तथा चन्दन के ताजे बुरादे में ही धूप की स्थापना की जाती है, क्योंकि किसी भी प्रकार की हिंसोत्पादक सामग्री से पूजा नहीं की जाती।''

पृष्ठ 42 पर स्वाध्याय के संबंध में लेखन ने अच्छा लिखा है उसे देखें - ''पर को मात्र जानना है, जानकर उसे छोड़ना है, स्व को मात्र जानना ही नहीं, बल्कि जानते रहना है, स्वयं में जमना है, रमना है, उसी में समा जाना है, अतः स्वाध्याय में मुख्यतः तो आत्मज्ञान की ही है।'' हिंसा पापों में प्रमाद परिणति मूल है और इन्द्रिय विषयों में अभिलाषा मूल है, अतः इनके पालन करते समय उनसे बचने में सावधानी रखें।

4. पुण्य और धर्म में मौलिक अन्तर - लेखक ने इस निबन्ध में पृष्ठ 46 पर अपने मनन-चिन्तन से नौ प्रकार के अन्तर बताये हैं, जो संक्षेप में इसप्रकार हैं -

1. धर्म आत्मा के आश्रय से और पुण्य पर के आश्रय से होता है।
2. दर्म आत्मा का शुद्धभाव एवं पुण्य आत्मा का अशुद्ध भाव है।
3. धर्म का फल मोक्ष एवं पुण्य का फल संसार है।
4. धर्म आत्मा की निर्दोष पर्याय एवं पुण्य सदोष पर्याय है।
5. धर्म से सच्चा सुख मिलता है एवं पुण्य से अनुकूल संयोग एवं लौकिक सुख।
6. धर्म वीतरागताभाव एवं पुण्य सराग भाव।
7. पुण्य को जीव ने अनादिकाल से किया है, धर्म को अभीतक नहीं किया।
8. पुण्य से बाह्य अनुकूलतारूप वैभव मिलता है और धर्म से मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।
9. धर्म मोक्षमार्ग है और पुण्य संसारमार्ग है।

पृष्ठ 47 पर धर्म एवं पुण्य में अन्तर शास्त्राधार से स्पष्ट किया है।

पृष्ठ 48 पर धर्म तथा पुण्य को श्रावक व मुनि जीवन के आधार से बताया है। इस निबंध को जो निष्पक्ष भाव से पढ़ेगा, उसे पुण्य का पक्ष नहीं रह सकता।

5. आध्यात्मिक पंच सकार : सुखी होने का सूत्र - यह निबंध अत्यन्त उपयोगी है; क्योंकि जिनको सात तत्त्व का किंचित् भी ज्ञान न हो हो वे लोग भी इस निबंध से जीवन में धर्म प्रगट करने की कला समझ सकते हैं तथा सुखी हो सकते हैं।

6. सर्वज्ञता, क्रमबद्धपर्याय और पुरुषार्थ - इसमें लेखक ने पृष्ठ 59 पर द्रव्य की परिभाषा ''प्रत्येक द्रव्य वर्तमान पर्यायमात्र न होकर तीनों कालों की पर्यायों का पिण्ड है'', ऐसा लिखा है - इसलिए एक द्रव्य के ग्रहण होने पर तीनों कालों की पर्यायों का ग्रहण हो जाता है तथा ज्ञान का स्वभाव जानना है; इसलिए वह विवक्षित द्रव्य को जानता हुआ उसकी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को जान सकता है - ऐसा स्पष्टीकरण किया है। इस कथन से यह

विषय स्पष्ट हो जाता है कि जो एक द्रव्य को जानता है, वह सबको जानता है।

पृष्ठ 60 पर केवलज्ञान का स्वरूप स्पष्ट किया एवं पृष्ठ 61 पर लेखक न केवलज्ञान की युक्तिपूर्वक सिद्धि की है। पृष्ठ 62 के अंतिम पैराग्राफ में ''सर्वज्ञता जैनधर्म का प्राण है। आगम और अनुभव से तो उसकी सिद्धि होती ही है।

पृष्ठ 63 पर क्रमबद्धपर्याय नामक अलौकिक सिद्धान्त की ओर आजतक किसी का लक्ष ही नहीं गया था। इसका उद्घाटन आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजी स्वामी ने किया है, यह लेखक ने कहा है।

पृष्ठ 66 पर लिखा है - ''सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय परस्पर अनुबद्ध है। एक का निर्णय और सच्ची समझ, दूसरे के निर्णय के साथ जुड़ी हुई है। दोनों का निर्णय ही सर्वज्ञस्वभावी निज आत्मा के अनुभव के सन्मुख होने का साधन है।''

7. भक्तामर स्तोत्र - एक निष्काम भक्ति स्तोत्र - निबंध का प्रारंभ का वाक्य है यह है - ''सम्पूर्ण स्तोत्र साहित्य में भक्तामर सर्वाधिक प्रचलित स्तोत्र है।'' इनके अनेक कारण बताये हैं - उसका संक्षेप इस प्रकार है - 1. निष्काम भक्ति की भावना। 2. निष्काम भक्ति की भावना से स्वयमेव अनुकूल संयोग मिलते हैं। 3. साहित्यिक रुचिवंत पुरुष साहित्यिक सुषमा से प्रभावित होकर इस स्तोत्र की ओर आकर्षित हो गये। 4. लौकिक विषय-वांछा की रुचिवाले इस स्तोत्र के आधार से मंत्र-तंत्र की विशेष चर्चा होने के कारण रीझ गये। कुछ कपोलकल्पित कहानियाँ भी जुड़ गयीं। 5. ''भूताभूतगुणोद्भावनं स्तुतिः'' - अर्थात् आराध्य में जो गुण हैं और जो गुण नहीं हैं, उनकी उद्भावना का नाम स्तुति है। इस परिभाषा के अनुसार भगवान पर कर्तापना का आरोप भी किया गया है।

लेखक का भक्ति विषयक निम्न कथन विशेष लगा - ''भक्ति एक त्रिमुखी प्रक्रिया है, इसके तीन बिन्दु होते हैं - भक्त, भगवान और भक्ति? इसमें भक्त और भगवान के बीच संबंध जोड़नेवाले प्रशस्त राग की मुख्यकता रहती है।''

लेखक का निम्न विचार भी विशेष है - ''भय, आशा, स्नेह और लोभ से या लौकिक कार्यों की पूर्ति के लिए की गई भगवत्भक्ति तो अप्रशस्त राग होने से पापभाव ही है, उसका नाम भक्ति नहीं है।''

पृष्ठ 72 से 75 पर्यन्त भक्ति विषयक आगम में आगत परिभाषाएँ भी देकर लेखक ने विशेष काम किया है।

48 ताले टूटने की कथा तथा श्वेताम्बर परम्परा मान्य श्लोकों की संख्या के संबंध में पाठक मूल में से पढ़े तो अच्छा रहेगा।

8. जिनागम के आलोक में विश्व की कारण-कार्य व्यवस्था - निबंध के पहले पृष्ठ पर उपादान और निमित्त की परिभाषा स्पष्ट की है। पृष्ठ 80 पर निमित्त को कर्ता मानने के भ्रम का कारण बताया है।

पृष्ठ 81 पर लिखा है - ''राग-द्वेष का अभाव कर सुखी होना हो तो निमित्त-उपादान या वस्तु की कारण-कार्य व्यवस्था को समणना ही होगा। सुखी होने का अन्य कोई उपाय नहीं है।'' पृष्ठ 81 पर निमित्त को अकिंचित्कर मानने से लोक-व्यवहार बिगड़ जायेगा, परस्पर में कृतज्ञता का भाव नहीं रहेगा - इस शंका का समाधान भी दिया है। पृष्ठ 84 पर कृतज्ञता का अर्थ - किए हुए कार्य का जानपना बताकर आत्मा के जाननस्वभाव की पुष्टि की है।

पृष्ठ 82 पर प्रेरक निमित्त का यथार्थ अर्थ दिया है?

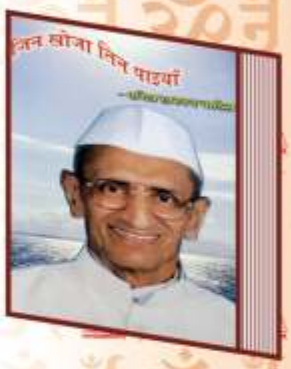

बुढापा स्वयं भी तो अपने आप में एक बीमारी है, जिससे कोई नहीं बच सकता। जन्म-जरा (बुढ़ापा) एवं मृत्यु - ये तीन ऐसे ध्रुव सत्य हैं कि जिनसे कोई इंकार नहीं कर सकता। इनका सामना तो समय-समय पर सबको करना ही पड़ता है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

पृष्ठ 85 पर लेखक ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय को इसप्रकार दिया है – ''अरे! जो परद्रव्य की सत्ता से इन्कार करते हैं, उन अद्वैतवादियों को सही मार्गदर्शन देने के लिए परद्रव्य (निमित्त) की अनिवार्यता पर जोर दिया है। उस कथन से अज्ञानी निमित्तों के कर्तृत्व का पालन करते हैं।''

9. समाधि-साधना और सिद्धि – निबंध का प्रारंभ एक छंद से करके लेखक ने विषय को अत्यन्त आकर्षक बनाया है। आगे ज्ञानी तथा अज्ञानी के मरण संबंधी विचारों की तुलना स्पष्ट की है।

पृष्ठ 89 पर मरण को अनिवार्य कहकर उसे तत्त्वज्ञानपूर्वक स्वीकारना ही सुखी होने का उपाय बताया है तथा मनुष्यभव की महत्ता बताकर पाप से रहित होने के लिए पर-निन्दारूप पाप से बचने की करुणापूर्वक सलाह दी है। पर को सुधारने के विकल्पों से भी दूर रहना ही श्रेयस्कर कहा है।

पृष्ठ 94 पर शास्त्राधार से एवं प्रत्यक्ष अनुभव और अज्ञानी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए पण्डितजी लिखते हैं – ''अज्ञानी न तो समता-शांति व सुखपूर्वक जीवित ही रह सकता है और न समाधिमरण पूर्वक मर ही सकता है।'' आगे अकर्तास्वभाव का स्वीकार करना ही सुखी होने का सच्चा उपाय बताते हैं।

पृष्ठ 96, 97, 98 पर लेखक ने समाधि, समाधिमरण, सन्यास आदि का स्वरूप शास्त्र के आधार से स्पष्ट किया है। पृष्ठ 99 पर गति एवं मति की परिभाषा विचार करने लायक है – ''जबतक आयुबंध नहीं हुआ तबतक मति अनुसार गति बंधती है और अगले भव की आयुबंध होने पर 'गति के अनुसार मति' होती है।''

विषय की स्पष्टता के लिए अनेक पौराणिक कथाओं का स्मरण दिलाया है। समाधि की अनेक परिभाषा देते हुए समाधिमरण के शास्त्रानुसार भेद भी समझाया है।

10. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय और आचार्य अमृतचन्द्र – आचार्य अमृतचन्द्र के परिचय का विषय लिखते समय लेखक के निम्न शब्द मुझे बहुत प्रिय लगे – ''न उनका कोई गाँव होता है, न ठाँव, न कोई कुटुम्ब होता है न परिवार। उनके व्यक्तित्व का निर्माण उनकी तीव्रतम आध्यात्मिक रुचि, निर्मल वीतराग परिणति एवं जगतजनों के उद्धार की वात्सल्यमयी पावन भावना से ही होता है, जो उनके साहित्य में पग-पग पर प्रस्फुटित हुई है।''

इस निबंध में जो विषय आया है, वह सब आचार्य अमृतचन्द्र का होने से समझना तो बहुत महत्त्वपूर्ण है; तथापि लेखक की विशेषता बताने के लिए मुझे जो मिला वह मैंने बताया है; अस्तु।

11. धर्म, परिभाषा नहीं प्रयोग है – इस निबंध में पण्डितजी का हार्द व्यक्त हो गया है। इसमें जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनसे एक बाद एकदम स्पष्ट है कि विद्वता, कथन शैली, प्रवचन का प्रभाव, सुननेवाले श्रोताओं की संख्या, श्रोताओं से मिलनेवाली प्रशंसा, धर्म विषय पर लिखे गये ग्रंथ – इनसे धर्म का अविनाभावी संबंध नहीं है। इसीलिए लेखक का एक अतिशय महत्त्वपूर्ण है, जो 116 पृष्ठ पर आया है – ''परिभाषा याद कर लेना स्वयं धर्म नहीं है; बल्कि उन परिभाषाओं में जो बात कही गई है, उसका जीवन में प्रयोग करना धर्म है।'' अपने इस महत्त्वपूर्ण विषय को पाठकों के गले उतारने के उद्देश्य से पृष्ठ 117 पर मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्र का विशेष अंश भी दिया, जो मनोयोगपूर्वक पठनीय है।

परिभाषाओं का जीवन में प्रयोग ही धर्म है, इस विषय की सिद्धि के लिए लेखक ने

अत्यन्त मजबूत एवं मार्मिक दो तर्क भी दिए हैं, जो इसप्रकार हैं –

''परिभाषाएँ तो हम से भी कहीं अधिक अच्छी टेप-रिकार्ड भी सुना सकता है तो क्या वह भी धर्मात्मा हो जाता है? उसमें आत्मा है ही कहाँ जो धर्मात्मा कहलाये?

दूसरी ओर जो मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग के पाठी तक होते हैं, क्या उन्हें ये सब परिभाषाएँ नहीं आती होंगी? क्यों नहीं, अवश्य आती हैं। तो फिर आत्मानुभूति के बिना व कोरे के कोरे क्यों रह जाते हैं? उन्हें धर्मलाभ क्यों नहीं होता? इससे भी स्पष्ट है कि धर्म परिभाषाओं में नहीं, प्रयोग में है और उसका आरम्भ आत्मानुभव से होता है।''

इसप्रकार हम अनुभव करते हैं कि लेखक को जो कहना है, उस विषय में वे पूर्ण सफल हैं।

12. भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म का योगदान – इस छोटे से निबंध में कुछ बड़े विषय निम्नप्रकार आये हैं –

1. महात्मा गांधी ने भारत को आजादी जैनधर्म में प्रतिपादित अहिंसा के आधार से दिलायी है।

2. जैनधर्म नर से नारायण ही बनाता है; ऐसा नहीं पशु को परमेश्वर बनाने में भी समर्थ है।

3. जैनधर्म के अनुयायी साधु-संतों ने एवं विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं के साहित्य को समृद्ध किया है।

4. जैन समाज ने अनेक नगरों में जैन-जैनेतरों के लिए शिक्षण संस्थान, औषधालय, छात्रावास, धर्मशाला खोल दिए हैं।

13. जैन साधु दिगम्बर क्यों होते हैं – लेखक ने इस निबंध में दिगम्बर रहने के अनेक कारणों का कथन किया है, जो इसप्रकार हैं।

(1) जैन साधु स्वावलम्बी रहते हैं, कपड़े के स्वीकारने में परावलम्बन आता है, इसलिए वे नग्न रहते हैं।

(2) साधु को स्वाभिमानी होना स्वाभाविक है। वस्त्रों के स्वीकार में स्वाभिमान सुरक्षित नहीं रहता, अतः वे दिगम्बर रहते हैं।

(3) साधु को परावलम्बन दुःखद लगता है; अतः सुख के लिए कपड़ों को स्वीकार नहीं करते।

(4) बालकवत् निर्विकार रहते हैं। कपड़ों का स्वीकार विकारों को ढकने के लिए होता है। जब विकार ही नहीं है तो पर्दा क्यों?

(5) साधु व्यवहारातीत हैं।

(6) वे वनवासी सिंह के समान निर्भय रहते हैं।

(7) जैन साधु का दिगम्बरत्व निर्दोषता, निःशंकता, निरपेक्षता, निश्चितता एवं निर्लोभता का द्योतक है।

(8) वे संयमी एवं सहिष्णु तथा निष्परिग्रह रहना चाहते हैं, अतः नग्न रहते हैं।

(9) जिन्हें अखण्ड आत्मा को प्राप्त करना होता है, उन्हें अखण्ड स्पर्श इन्द्रिय को जीत लेना आवश्यक रहता है अतः दिगम्बरत्व जरूरी है।

(10) सपरिग्रही साधु पूर्ण अहिंसक, निर्मोही एवं सर्वथा अपरिग्रही नहीं रह पाते, अतः दिगम्बरत्व आवश्यक है।

(11) लज्जा परीषह जीतने के लिए भी नग्न ही रहते हैं।

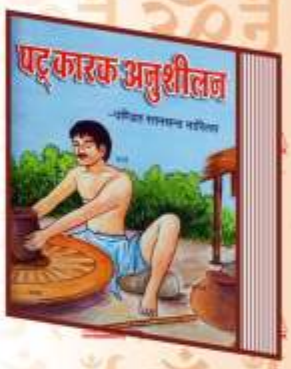

जिस तरह जब सरोवर सूखता है तो सब ओर से ही सूखता है, उसी तरह जब पुण्य क्षीण होता है तो सब ओर से ही क्षीण होता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

(12) भोजन के बिना मनुष्य जीवन असम्भव है, वैसे कपड़े उतने अनिवार्य नहीं हैं। वस्त्र के बिना मनुष्य जीवन सम्भव है।

(13) वस्त्र धारण करने में हीनता, पराधीनता तथा आकुलता अवश्यम्भावी है, उनको टालने के लिए नग्नता आवश्यक है।

14. भगवान महावीर के विश्वव्यापी संदेश – इस निबंध के पृष्ठ 148 पर अंतिम पैरा में जो तर्क दिया है, वह एक ही तर्क भगवान महावीर के संदेश को विश्वव्यापी सिद्ध करने में समर्थ है।

विश्व में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, ऐसा कोई काल नहीं, जहाँ और जब सभी जीवों ने हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह को बुरा तथा अहिंसा, अपरिग्रह आदि को भला न माना हो। इसतरह महावीर के संदेशों का व्यावहारिक पहलू तो विश्वव्यापी है ही; सार्वजनिक भी है।

इसप्रकार हमने पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल लिखित ऐसे क्या पाप किए का रसग्रहण पाठकों के सामने रखा है। मेरा एक निवेदन यह है कि मात्र इस ही कृति को नहीं, पण्डितजी द्वारा लिखित अन्य साहित्यिक कृतियों का भी अध्ययन करें – रसास्वादन करके अपने ज्ञान एवं परिणामों को निर्मल बनावें, इसी विचारों के साथ मैं अपने विचारों को विराम देता हूँ। ●

सबके प्रिय श्री बडे दादा

– बसंतलाल एम. दोशी,
(महामंत्री – श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई)

सद्गत श्री रतनचंदजी भारिल्ल अत्यंत मृदु स्वभावी विद्वान और लेखक थे। अपने लघु भ्राता डॉ. हुकमचंदजी के सहाध्यायी रहे। साथ-साथ विद्या दान का उत्तम कार्य संभाला।

आपश्री ने श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय में प्राचार्य के रूप में नेतृत्व किया। आज करीब आठ सौ जैनदर्शन के विद्वान आपके मार्गदर्शन में तैयार हुए हैं। समाज के सभी वर्ग को उसका लाभ मिल रहा है।

पूज्य गुरूदेवश्री कानजीस्वामी के समयसार आदि अध्यात्म प्रवचनों का हिन्दी भाषांतर करने का सद्भाग्य आपको मिला और आपने कुशलतापूर्वक यह कार्य संपन्न किया।

प्रारंभ से आप सिद्धहस्त लेखक थे। 'इन भावों का फल क्या होगा' जैसी अनेक प्रेरणात्मक रचनाएं आपने समाज को दीं।

मेरी उनसे जब भी मुलाकात होती थी, तब उन्हें निवेदन करता था कि आपकी कलम नम्रता और सद्भावना से सुशोभित है। आप लिखते रहें हम पढकर उसका लाभ लेते रहेंगे।

करीब चार साल पूर्व मैं सपरिवार जयपुर पहुँचा तो आपने आपके निवास स्थान पर बुलाया और करीब एक घंटा महाविद्यालय और अन्य विषयों पर सुंदर चर्चा की। उनके सबके साथ मीठे संबंध अपने आपमें विशेषता थी और पंडितजी जीवनभर प्रेम बांटते रहे। उनकी भाषा में माधुर्य और आशय में सद्भावना – ये सब चीजें सामाजिक कार्यकर्ताओं को उदाहरण रहेगी।

उनकी निराभिमानी एवं सादगीपूर्ण जीवनशैली हम सबके लिए अनुकरणीय है। ●

ज्ञान गरिमामय सरल व्यक्तित्व का अभिनन्दन

– पवन जैन, मंगलायतन

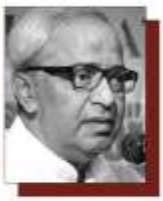

अनादिकाल से प्रवाहमान, सर्वज्ञ परम्परा और पूज्य गुरूदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान की वाणीरूपी गंगा के प्रति आपको गहरा अनुराग था। आपकी लेखनी से सरल-सुबोध हृदयग्राही जैन साहित्य का उद्भव हुआ।

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जैसा सरल विद्वान, तन, मन से समर्पित जीवनदानी मन को आह्लादित करने वाला व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जैन श्रुत-साहित्य की जो सेवा की है, पण्डित टोडरमल स्मारक के माध्यम से ज्ञान के बहुमुखी प्रसार का जो कार्य किया है, वह जैनदर्शन व जैन समाज के लिए गौरवास्पद है और आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणास्पद भी हैं।

आप, तीर्थधाम मंगलायतन से निकलने वाली मासिक पत्रिका मंगलायतन के भी संपादकीय सलाहकार थे। जयपुर प्रवास के समय कई बार आपसे वार्तालाप का प्रसंग आया, उनकी सरलता, ज्ञानगंभीरता से मन आह्लादित हुआ। साथ ही, समन्वयशील, विनम्रता और शास्त्री विद्यार्थियों को परखने की कुशलता देखकर उनके प्रति आदर भाव जगा। हृदय से उनके ज्ञान-गरिमा मंडित सदाचार सुरभित जीवन का अभिनन्दन कर अहोभाव प्रकट करता हूँ।

हमारी, यह भावना ही नहीं विश्वास है कि आप जहाँ भी गये होंगे, वहाँ अपने संस्कार के बल से अपना कार्य शीघ्र करके पूर्णता को प्राप्त करेंगे।

आदरणीय बड़ी मम्मीजी (कमला बहिनजी) ने पूरे जीवन-पर्यन्त आपको आगे बढने के साथ-साथ आपकी निरन्तर सेवा भी की है, उनको भी कोटिश: धन्यवाद ! ●

बच्चों की प्रतिभा निखारकर विद्वान बनाया

– अनंतराय ए.शेठ, मुम्बई

बड़े दादा तो अब नहीं रहे, लेकिन उनकी यादें, उनकी कृतियाँ हमेशा समाज में रहेगी। उनके काम से उनकी शोभा बढती ही गई। बड़े दादा छात्रों में बहुत लोकप्रिय थे। उनका व्यक्तित्व, उनका स्वभाव बहुत अच्छा था, बच्चे तो उनको बड़े दादा के नाम से ही जानते थे। टोडरमल महाविद्यालय के प्राचार्य एवं देश के प्रख्यात विद्वान पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल मुमुक्षु समाज के ही नहीं; बल्कि पूरे जैन समाज के रत्न थे। प्राचार्य पद पर रहते हुए उन्होंने अनेक बच्चों की प्रतिभा निखारकर उन्हें विद्वान के रूप में स्थापित किया। आज टोडरमल महाविद्यालय के विद्वान समाज में तत्त्वप्रचार प्रचार कर रहे हैं। एक परिवार से एक शास्त्री विद्वान बनता है तो पूरा परिवार ही तत्त्वज्ञान से जुड़ जाता है।

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने गुरुदेवश्री के समयसार प्रवचनों का गुजराती से हिन्दी अनुवाद प्रवचनरत्नाकर के ग्यारह भागों में किया, इसमें भाषा की सरलता रखते हुए भावों को बनाये रखा है, जो कि हिन्दी समाज के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है; उनके कारण अनेक लोग सोनगढ से जुड़ भी गये हैं। उन्होंने बहुत ही सात्त्विक और शांत भाव से तत्त्वप्रचार का कार्य किया है, जिसके बारे में समाज को ज्यादा पता भी नहीं चलता है कि उन्होंने क्या काम किया। आपने जैनधर्म की अनेक पुस्तकें लिखीं। आपका मुमुक्षु समाज को महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे शांत स्वभावी, जिनश्रुत की सेवा करने वाले जीव का संसार थोड़ा ही रहता है। उनको मेरा शत्-शत् प्रणाम। ●

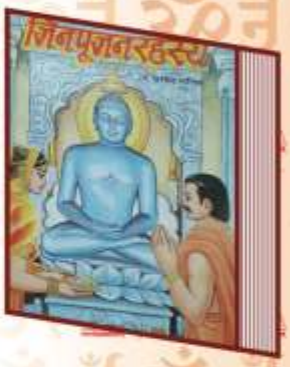

संसार का स्वरूप हमें पलायन करना नहीं सिखाता, बल्कि वह पर्याय का सत्य समझाकर उसके साथ समतापूर्वक समायोजन करना, समझौता करना सिखाता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

आदर्श श्रावक

– एन.के. सेठी, जयपुर

बड़े दादा नहीं रहे, मैं दो दृष्टियों से उनको स्मरण करता रहूँगा, वो सन्त नहीं थे; लेकिन एक आदर्श श्रावक थे, श्रावक के सभी कर्तव्य पूरी तरह सत्यनिष्ठा से निभाते थे। वे एक अच्छे पति, पिता व भाई थे, शुद्धात्मप्रकाश जैसे पुत्ररत्न को जन्म देने वाले कैसे याद नहीं किये जायेंगे। दो भाईयों में प्रेम होता व लड़ाई भी होती है, लेकिन अद्भुत बात थी कि दोनों भाईयों में अकाट्य प्रेम था, जब से हमने होश संभाला और सामाजिक कार्यों में जुड़े, कभी कोई ऐसा किस्सा सामने नहीं आया, जहाँ कभी इन दो भाईयों में मतभेद या मनभेद हुआ हो, अक्सर छोटा भाई बड़े भाई के गुण गाता है, ये विलक्षण बात उनमें देखी कि बड़ा भाई होते हुए भी उन्होंने हमेशा छोटे भाई को आगे रखा। उनके बारे में एक बात और कहना चाहता हूँ कि वे जीवनपर्यन्त युवा रहे, मेरे गुरु श्री तेजकरणजी डंडिया जो टोडरमल स्मारक से भी जुड़े रहे, से बहुत कुछ सीखा, उनसे किसी ने पूछा कि आप बूढे नहीं लगते हैं, तो उन्होंने कहा कि मेरे पास बूढे होने का भी समय नहीं है। यही बात बड़े दादा पर भी लागू होती है, इसके अतिरिक्त उनके युवा रहने का एक राज यह भी है कि वे बच्चों में बैठते थे।

दादा भी युवाओं के बीच में बैठते थे और उन्हें उसी लक्ष्य की ओर जाने के लिये प्रेरित करते थे, जहाँ हम सब जाना चाहते हैं। हम सदैव उनको याद करते रहेंगे, मैं सभी संस्थाओं की ओर से, अपने साथियों की ओर से, समाज की ओर से उनको भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ●

बड़े दादा का व्यक्तित्व नामानुकूल है !!!

– अजित जैन, वडोदरा (गुजरात)

समय अपनी गति से आगे बढ़ता ही जाता है। विश्वास ही नहीं होता कि आदरणीय रतनचन्दजी भारिल्ल (बड़े दादा) को देह रूप से बिछुड़े हुए एक वर्ष बीत गया।

आ. बड़े दादा का व्यक्तित्व नामानुकूल ही था। अतिशय मित भाषी, सौम्य और शान्त प्रकृति के धनी आ. बड़े दादा का व्यक्तित्व किसी को भी मोह ले ऐसा था। अत्यन्त स्नेहपूर्ण व सहज व्यवहार से उन्होंने सबको प्रभावित किया था।

आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्रीकानजीस्वामी द्वारा उद्घाटित जिनागम के त्रिकालाबाधित तत्त्वों का स्वयं आकलन कर अपनी सरल वाणी और सुबोध लेखनी द्वारा जन-जन तक पहुँचाने का महती कार्य आ. बड़े दादा ने अत्यन्त सहजतापूर्वक किया। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में आ. बड़े दादा का ससम्मान उल्लेख कई बार आता है।

प्रथमानुयोग से लेकर द्रव्यानुयोग तक के अनेक विषय व सिद्धांत आपकी सिद्धहस्त लेखनी से निकलकर आज व सतत् हमें जैनदर्शन समझने में कार्यकारी रहेंगे। प्रथमानुयोग का उनका ग्रन्थ शलाका पुरुष केवल कहानियाँ बनकर हमारा रंजन नहीं करता; अपितु हमें अपने स्वर्णमयी धरोहर का, वीतरागता की परम्परा का बोध कराता है और अंतर्मग्न कर देता है।

व्यक्तिगत रूप से मेरे परिवार के प्रति उनका अमिट, अपार स्नेह रहा है। शिखरजी और स्मारक में हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के सभी कार्यक्रमों में यह बात हमने क़रीब से महसूस की है।

आ. बड़े दादा हमारे स्मृति में चिरंतन रहेंगे। ●

अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल

– महेन्द्रकुमार जैन पाटनी, जयपुर

पण्डितजी साहब जब से जयपुर पधारे उस समय से ही हमारे इनके पारिवारिक सम्बन्ध रहे हैं। आप बिना किसी झगड़े में उलझे निरन्तर जिनवाणी की सेवा में रत रहे। आप अजातशत्रु हैं। कोई भी आपको अपना विरोधी नहीं मानता था। समाज के सभी वर्ग आपको पूर्ण सम्मान देते थे। आप टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के आजीवन प्राचार्य रहे हैं। आपके इस काल में सैंकड़ों की संख्या में युवक विद्वान होकर निकले हैं।

दिगम्बर जैन समाज बापूनगर सम्भाग ने आपकी 80 वर्ष की वय होने पर नववर्ष स्नेह मिलन कार्यक्रम के अवसर पर वर्ष 2013 में सम्मान किया था। बापूनगर सम्भाग पर तो आपकी विशेष कृपा रही है। बापूनगर सम्भाग द्वारा अश्विन कृष्णा एकम् को प्रात: कलशाभिषेक के पश्चात् टोडरमल स्मारक भवन में सामूहिक क्षमावाणी कार्यक्रम आयोजित किया जाता रहा है। इस अवसर पर जब भी आप जयपुर में रहे, हमेशा सामूहिक क्षमावाणी कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में पधारकर धर्म लाभ करवाते रहे। जब भी उनसे दूरभाष पर बातचीत होती कि हम आपको क्षमावाणी कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में पधारने हेतु निवेदन करते हैं तो आपका जवाब होता कि आने की जरूरत नहीं है, मैं अवश्य आ जाऊँगा।

कई बार धार्मिक मामलों में कुछ भी स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती तो हम पण्डित साहब से ही सम्पर्क कर समस्या प्रस्तुत कर समाधान चाहते, वे उचित समाधान कर सभी को संतुष्ट कर देते थे। आचार्य 108 विद्यानंदजी मुनिराज ने तो आपको गृहस्थ के रूप में मुनि की संज्ञा प्रदान की है।

मैंने उन्हें कभी भी क्रोध करते नहीं देखा, अपितु क्रोधी को भी अपने हित-मित वचनों से पिघला देते थे। लेकिन व्यवहार में भी आपका कोई सानी नहीं था। हमने जब-जब आपसे कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु अनुरोध किया, बिना देर लगाये आपने स्वीकृति प्रदान की। आपकी कथनी व करनी में कोई भेद नहीं था।

राजस्थान जैन सभा भाद्रपद मास में दशलक्षण पर्व पर 10 दिन तक बड़े दीवानजी के मंदिर में दशधर्मों पर प्रवचन का आयोजन करती थी। जिस वर्ष सभा के अनुरोध पर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल दशलक्षण पर्व पर बड़े दीवानजी के मंदिर में पधारते थे तो इनके प्रवचन सुनने दूर-दूर से महिलाएं व पुरुष आते थे। यह इनके सरल भाषा में दिये गये प्रवचनों का प्रभाव था।

सौम्य चेहरा हमेशा हंसमुख रहने वाले माँ जिनवाणी के अनन्य सेवक, समन्वयवादी, अजातशत्रु पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल हमेशा के लिये हमारे बीच से चले गये। इनके स्थान की पूर्ति सम्भव नहीं है। ●

(उपजाति)

वीरस्य मुक्तौ न हि वीरमृत्यु:,
सतां जनानां मरणं कुत: स्यात्।
मेघेन रुद्धे न हि भानुनाश:,
अस्तंगतोऽसौ किमु रत्नचन्द्र:।।

– मंथन गाला, मुम्बई

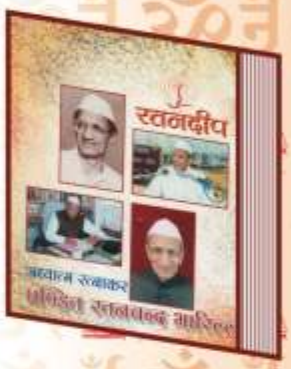

जो घर में रहकर कषायों के कारण उत्पन्न हुई पारिवारिक जीवन की छोटी-छोटी प्रतिकूलताओं का धीरज के साथ सामना नहीं कर सकता, वह वनवासी मुनि जीवन की कठोर साधना कैसे करेगा? तथा प्राकृतिक परीषहों और परकृत उपसर्गों को कैसे सहेगा?

– पं. रतनचंद भारिल्ल

महामना पण्डित श्री रतनचंदजी भारिल्ल

– अशोक बड़जात्या, इन्दौर (राष्ट्रीय अध्यक्ष, दिगम्बर जैन महासमिति)

लघुतत्त्व स्फोट में अमृतचन्द्राचार्य देव फरमाते हैं –

विस्तृत ज्ञानामृत बरसाते निज उल्लासों से हो तृप्त।
विस्तृत चारों ओर दृष्टि से तुम हो परम तृप्ति को प्राप्त।।

इस काल में जब क्रियाकांड के नाद में अध्यात्म के स्वर सुनाई ही नहीं देते थे, धर्म को सिर्फ शरीराश्रित क्रियाओं तक ही सीमित कर दिया गया था, तब जैनदर्शन के प्राण और जैनदर्शन के ही क्यों, समस्त धार्मिक दर्शनों के प्राण ''अध्यात्म'' अर्थात् शरीर से परे हटकर स्वयं के चिन्तन, मनन के स्वर सुनाई देने लगे। सोनगढ से गुंजित ये स्वर, जयपुर से तुमुलनाद के साथ संपूर्ण भारत में फैलाने का एकमात्र श्रेय अगर किसी को दिया जा सकता है तो वह नि:सन्देह भारिल्ल बंधुओं को ही दिया जा सकता है ।

भेदविज्ञान से प्राप्त अभेद दृष्टि अगर आज सम्पूर्ण विश्व में कहीं देखी जा सकती है तो वह जयपुर माइक्रोस्कोप से ही देखी जा सकती है। जयपुर अगर सम्पूर्ण विश्व में रत्नों के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध है तो वह एक महामना – आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के यहाँ विराजमान होने से भी जयपुर सुप्रसिद्ध सुशोभित रहा है। एक नन्ही-सी शुरूआत कैसे एक क्रांति का रूप ले सकती है, इसका अध्ययन करना हो तो टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की क्रांति का इतिहास पढिये – लगन, परिश्रम, निष्ठा, अटूट आत्मविश्वास, आलोचनाओं एवं प्रत्यालोचनाओं की परवाह किए बिना, अपने मिशन में जुटे रहना, अगर आपको सीखना हो तो जीवन परिचय पढिये आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का। शुभ्र एवं धवल वेशभूषा ही नहीं, शुभ्र एवं धवल व्यक्तित्व के धनी, सौम्यता की प्रतिमूर्ति, जो सुनामी लहरों के झंझावात में भी कभी नहीं डिगे अर्थात् सुनामीरूपी लोकेषणा में भी नहीं उलझे। अक्षर पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल द्वारा सृजित-विरचित साहित्य कालजयी है; क्योंकि आपकी लेखनी से प्रस्फुटित साहित्य, श्रुतकेवली भगवन्तों एवं उनकी आज्ञा में आबद्ध निर्ग्रन्थ आचार्य, उनके द्वारा भणिद वाणी से ही गुम्फित है, इस नवसृजित साहित्य में आपने नए चिन्तन के नाम पर, कुछ अलग हटकर कहने के दु:साहस के नाम पर कुछ नहीं लिखा है। मर्यादा पुरुषोत्तम और किसे कहते हैं, जो पूर्वाचार्यों, सर्वज्ञों की मर्यादा से परे हटकर न कुछ सोचे, न कुछ कहे एवं न ही कुछ लिखे। मीडिया एवं खबरों के इस महायुग में निर्मीडिया होकर रचनात्मक बने रहना क्या तपस्या नहीं है? जैनदर्शन के वैभव की श्रीवृद्धि संपूर्ण निष्ठाभाव से करते रहना क्या एक तपस्या नहीं थी।

स्वयं को अमरत्व प्रदान करने वाला एक कार्य श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के माध्यम से आपने किया। महाविद्यालय में सैकड़ों प्रसून खिलाकर जैनदर्शन की सुरभि को जैन जन-जन तक आपने पहुँचाया है और यही आपकी सर्वश्रेष्ठ रचनाधर्मिता भी रही है।

आपके सुयोग्य नेतृत्व में होने वाले निर्ग्रन्थ गुरुओं की वाणी का प्रचार एवं प्रसार योजनाबद्ध तरीके से हमें करते रहना है।

कुछ माह पूर्व मुझसे कहा गया कि आदरणीय पण्डित रतनचंदजी वृद्धावस्था को प्राप्त हो

रहे हैं, स्वास्थ्य भी कुछ नरम-सा रहता है, स्वाभाविक ही इस दौरान बड़े दादा से कई बार मुलाकातें हुईं, उनके साथ निराकुलता से बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने उन्हें कभी कमजोर या उम्रदराज महसूस नहीं किया। इससे कुछ हर्षमिश्रित आश्चर्य भी मुझे हुआ।

किसी व्यक्ति की उम्र उतनी ही होती है, जितनी वह महसूस करता है। पंडितजी साहब अंत तक अपने आपको नवयुवक ही महसूस करते रहे और क्यों न करें? महाविद्यालय में नवयुवकों से ही घिरे रहते थे, उन्हें पढाते रहते थे, उन्हें विद्याध्ययन कराते रहते थे।

शिक्षक का अर्थ पढाने वाला नहीं होता है; अच्छा शिक्षक वही है, जो स्वयं को पढाए .....आजीवन बड़े दादा स्वयं को पढाते रहे, गुनते रहे, जीवन में उतारते रहे, एक श्रेष्ठ शिक्षक की तरह। एक श्रेष्ठ शिक्षक का प्रभाव शिष्य पर मृत्युपर्यन्त रहता है। आपका यह प्रभाव हम सब आपके शिष्य आजीवन मानते रहेंगे। शिक्षक के योगदान की तुलना किसी भौतिक वस्तु से नहीं की जा सकती है। - आदरणीय बड़े दादा एक साधारण शिक्षक सिर्फ बोलता है या कहता है।

एक अच्छा शिक्षक - अपने शिष्यों को समझाता है।

एक श्रेष्ठ शिक्षक - Demonstrates शिष्यों को अपने कर्मों से समझाता है।

परन्तु एक श्रेष्ठतम शिक्षक - मात्र उत्प्रेरक होता है, अपने शिष्यों को मात्र प्रेरणा प्रदान करता है।

आदरणीय पंडितजी साहब ने भी जीवनपर्यंत अपने शिष्यों को प्रेरणा प्रदान की है, उनमें जिज्ञासा उत्पन्न की है। एक शिक्षक शिष्यों के अन्दर ज्ञान भरता नहीं है, उनमें ज्ञान ठूंसता नहीं है, उनके अन्दर ज्ञान पम्प नहीं करता है। उनके जैसा सर्वश्रेष्ठ शिक्षक अपने शिष्य के अन्दर का श्रेष्ठतम बाहर निकाल देता है, उसके आन्तरिक गुणों को निखार देता है, उनमें रंग भर देता है। शिष्य के अन्दर छुपी प्रतिभा को, मेधा को, रचनात्मकता को प्रकाशित कर देता है। यहाँ उपस्थित आपके सभी शिष्य आज नतमस्तक हैं। आपके सामने, आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सामने, आपने खदान से निकले हुए इन रफ पत्थरों को तराशकर रत्न बना दिया है, चांद की चमक से इन्हें भारिल्ल कर दिया है, आपूरित कर दिया है।

अगर पिता हमें जन्म देता है तो एक शिक्षक हमें जीना सिखाता है, और फिर उस शिक्षक के क्या गुण गाएं, जो हमें न सिर्फ जीना सिखाता है, वरन् जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने की कला भी साथ में सिखाता है। इस पर्याय का कैसे अपर्यायी बनाएं, यह कला सिर्फ आपके स्कूल में ही, टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय में ही सिखाई जाती है, किस तरह मानें हम आपका आभार?

आदरणीय बड़े दादा के साथ अगर मैं आज, हम सबकी आदरणीया विदुषी श्री कमला बहनजी को याद न करूँ तो ठीक नहीं होगा। अगर बड़े दादा एक दीपक थे तो कमलाजी बाती हैं, अगर एक बाती है, तो दूसरा तेल है। अगर एक मोमबत्ती है तो दूसरा परवाना नहीं, मोम की तरह पिघलकर अपना सर्वस्व समर्पण करने वाला भाव है। विदाई की इस बेला में, समाधि-साधना और सिद्धि के साथ आइए हम भी चले मान से मुक्ति की ओर एक सुखी जीवन के लिए वरना हमसे स्वामीजी मुलाकात होने पर पूछेंगे आपने ऐसे क्या पाप किये थे और क्या बड़े दादा से नहीं पूछा था, नहीं सीखा था कि इन भावों का फल क्या होगा। •

कौन जाने किस जीव की कब काललब्धि आ जावे, किसकी परिणति में कब/क्या परिवर्तन आ जावे? किसका कब/कैसा भाग्योदय हो जावे? यही बात मौत के संबंध में भी लागू पड़ती हैं। अतः सदैव जागृत रहने की जरूरत हैं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

मेरी नजर में बड़े दादा

– सुशीलकुमार गोदिका (अध्यक्ष-पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर)

मैंने जब भी बड़े पण्डितजी साहब को देखा है, प्रसन्नचित्त और शान्त मुद्रा में ही देखा है। मेरे मन में उनका यही प्रतिबिम्ब अंकित है।

परिस्थिति कैसी भी रही हो, उनको हमेशा संतुष्ट देखा है। इससे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि संतुष्टी किसे कहते हैं, यह बड़े पण्डितजी को देखकर समझी जा सकती है।

मेरी नजर में तो वे दुनियादारी, राजनीति, प्रपंच, वाद-विवाद से कोसों दूर एक संत पुरुष जैसे थे। उनका जीवन जितना सादगीपूर्ण था, विचार उतने ही उच्च थे।

उन्होंने जीवन अपने लिये जीया और उसमें तृप्त/संतुष्ट रहे। अगर मैं कहूँ कि तत्त्व को उन्होंने सच्चे अर्थों में पिया है और जिया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके दिये संस्कार उनके पूरे परिवार में कूट-कूटकर भरे हुए हैं। उनके प्रथम स्मृति दिवस पर मेरे पूरे परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और मंगल कामना करता हूँ कि वे शीघ्र ही जन्म-मरण का अभावकर पूर्णता प्राप्त करें। ●

मेरे लिये सदैव आदर्श पुरुष

– प्रेमचन्द बजाज, कोटा

आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल की स्मृति में सहजता विशेषांक प्रकाशित हो रहा है, उन्हें याद करके वास्तव में एक ही शब्द दिमाग में आता है - 'सहज' और इसी शब्द को ध्यान में रखते हुए उनके ऊपर यह विशेषांक निकाला जा रहा है। वास्तव में बड़े दादा जैसा व्यक्तित्व वर्तमान समय में बहुत मुश्किल से दिखाई देता है। पूरे जीवन तत्त्व अभ्यास के साथ-साथ एक महाविद्यालय की बहुत बड़ी जिम्मेदारी को उन्होंने निभाया और अपने जीवन में सदैव इस कार्य के कारण से होने वाली आकुलता को कोई स्थान नहीं दिया।

किसी भी स्वीकार करने योग्य बात को जल्दी ही स्वीकार कर लेना उनकी एक विशेष आदत थी, जिसका परिचय मुझे एक बार हुआ है। हमारे कोटा का ही एक छात्र जो जयपुर महाविद्यालय में प्रवेश लेना चाहता था, किसी कारण से उनका प्रवेश महाविद्यालय में नहीं हो पाया और वह बहुत निराश हुआ, तब मैंने आदरणीय बड़े दादा से बात की और उन्होंने फोन पर ही मेरे कहने के कारण से कि प्रेमचंदजी आप कह रहे हो तो जरूर वह विद्यार्थी लेने लायक है और उन्होंने उसे जयपुर विद्यालय में प्रवेश दे दिया। आज वह विद्यार्थी पण्डित आशीष शास्त्री कोटा बहुत ही उत्कृष्ट तत्त्वरसिक और जिनवाणी का सेवक है। निश्चितरूप से आदरणीय बड़े दादा का यह उपकार सदैव याद रखने योग्य है।

निश्चितरूप से ऐसे व्यक्तित्व समाज, विद्यार्थियों और व्यक्तियों पर बहुत प्रभाव डालते हैं। आज हम उन्हें याद कर रहे हैं और उनकी सहजता सदैव हमारे लिए अनुकरणीय रहेगी। आदरणीय छोटे दादा और बड़े दादा ही मेरे लिए सदैव आदर्श पुरुष रहे हैं और उनकी रीति-नीति से ही हम मुमुक्षु आश्रम, कोटा में महाविद्यालय संचालित कर रहे हैं और आगे भी संचालित करते रहेंगे - ऐसे बड़े दादा को शत शत नमन। ●

भ्रातृत्व-प्रेम की मिसाल

– अशोक पाटनी
(ट्रस्टी–कल्याणमल राजमल पाटनी सिद्धचेतना ट्रस्ट, कोलकाता/सिंगापुर)

आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल उर्फ़ बड़े दादा अत्यंत सरल स्वभावी थे। वे अध्यात्म-जगत के उन स्तम्भों में से थे, जिन्होंने जैन अध्यात्म-जगत में क्रांति उत्पन्न की थी। ऐसे तो आपसे विविध अनुष्ठानों में मुलाकात होती ही थी; पर जब एक बार आपका सिंगापुर आना हुआ, तब आपसे बहुत नजदीकी से गुफ्तगू करने का अवसर मिला था। आप अपने जीवन में बहुत सी कठिनाईयों के पश्चात् भी कभी धर्म मार्ग से विचलित नहीं हुए। आध्यात्मिकसत्पुरुष गुरुदेवश्रीकानजीस्वामी के संपर्क में आकर आपने जैनधर्म के गूढ़ रहस्यों को समझकर उनको जीवन में अपनाया था और जीवन पर्यन्त अनेक विषमताओं के बीच भी सच्चे मार्ग से कभी डिगे नहीं। आपकी सामान्य श्रावकाचार, णमोकार मंत्र, जिनपूजन रहस्य, विदाई की बेला, संस्कार, इन भावों का क्या फल होगा आदि विभिन्न रचनाएँ छोटे-बड़े सभी वर्ग के श्रावकों के जीवन में धर्म सिद्धांतों की सही समझ और कहानियों के माध्यम से सच्चे संस्कार प्रतिफलित और दृढ करने में बहुत उपयोगी हैं और रहेंगी।

आपके और छोटे दादा के परस्पर भ्रातृत्व-प्रेम से तो सारा जैन समाज परिचित था ही, आप दोनों का प्रेम अपने आपमें इस पंचम काल में भाइयों में परस्पर स्नेह का उत्कृष्ट उदहारण है, जिसकी मिसाल आने वाली कई पीढ़ियों तक दी जायेगी। शायद आप दोनों भाईयों का प्रेम ही था जो आदरणीय छोटे दादा डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल की नवीनतम कृति 'भरत का अंतर्द्वंद' में भरत और बाहुबली के परस्पर प्रेम के उल्लेख में प्रस्फुटित हुआ है।

आप टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के कुशल प्राचार्य रहकर, विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन करके, आजीवन तत्वप्रचार-प्रसार एवं समाज सेवा में लगे रहे और कभी किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखी। आपके सरल और स्नेही व्यक्तित्व से मैं स्वयं भी बहुत प्रभावित हुआ हूँ और आशा और कामना करता हूँ कि आप पवित्र आत्मा शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति को प्राप्त हो और आपने जैसा लोगों को बताया व समझाया है, वैसे ही आप भी सदाकाल के लिए स्वयं में ही लीन हो जाएँ। इसी मंगल भावना के साथ....जय जिनेन्द्र। ●

बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल - सरलता की त्रिवेणी

– महिपाल ज्ञायक, बांसवाड़ा

विश्वप्रसिद्ध त्रिवेणी को कौन नहीं जानता? जिनके संगम स्थल को देखने हेतु जगत के लोगों का जमघट लगा रहता है। यद्यपि वहाँ गंगा यमुना का प्रवाह ही दृष्टिगोचर होता है, तथापि सरस्वती के अदृश्य होने पर भी उसकी कल्पना तलभाग में कर लेते हैं।

इसी तरह मेरे और हम सभी के आदर्श बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर के जीवन को देखने पर उनमें सरलता की त्रिवेणी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती रही।

चूंकि नदियों की त्रिवेणी में दो नदियाँ दृश्यमान तथा एक अदृश्य है, किन्तु बड़े दादा में ऐसा नहीं है, अपितु उनका सरल व्यक्तित्व, सरल साहित्य लेखन तथा सरल प्रवचन शैली - ये तीनों ही एकसाथ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते रहे और उसका आनंद एवं लाभ हम प्राप्त करते रहे।

उनके जीवन के 87 वर्षों में मैं जितनी बार भी उनसे मिला, उन्होंने मुझे प्रोत्सहित किया एवं मुझे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं अपने

जो पत्नियाँ केवल विषय-कषाय एवं राग-रंग में ही सहभागी बनती हैं, धर्म साधन में साथ नहीं रहती, उन्हें तो धर्मपत्नी कहलाने का अधिकार ही नहीं है। अतः धर्मपत्नियों को अपना धर्म निभाकर अपना नाम सार्थक करना चाहिए।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

जीवन में आत्मसात करने की प्रेरणा देते रहे। सच कहूँ तो वे मेरे प्रेरणा स्रोत रहे।

यद्यपि उनके वियोग को 1 वर्ष हो गया, तथापि उनकी सरलता, निश्छल मुस्कान, जीवन में पारदर्शिता व उनकी व्यक्तिगत प्रेरणाएं व आशीर्वाद मुझे अंत:स्फूर्ति का कारण बनती रहेंगी।

सादर विनयांजलिपूर्वक नमन। ●

मार्गदर्शन और संबल प्रदान किया

– डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर

(पूर्व प्राचार्य – श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर)

जब मैं दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज में आया, तब मेरी पहचान का जयपुर में कोई नहीं था, पूछने पर पता चला कि ललितपुर के पण्डित रतनचंदजी और हुकमचंदजी हैं। यहाँ आने के बाद मैंने उनसे कहा यहाँ काम करना बहुत कठिन है, क्योंकि यहाँ की प्रशासनिक परिस्थितियों और लोगों से मैं अनभिज्ञ हूँ, तो उन्होंने कहा कि आप यहाँ दृढता से काम कीजिये। अपने ही बच्चे वहाँ पढते हैं, इसलिये आपको कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। उस समय मेरी उम्र 31 वर्ष थी, 50 लोगों का स्टाफ था, सब लोग हमसे बड़े ही थे। यहाँ का वातावरण देखकर लगा कि स्थायी रूप से कार्य करना कठिन है, तब उन्होंने ही यहाँ दृढता से काम करने हेतु प्रेरित किया, संबल प्रदान किया। टोडरमल महाविद्यालय के सभी बच्चे हमारे यहाँ संस्कृत कॉलेज में पढते थे, सभी विनम्र थे, अनुशासन में रहते थे।

जब भी मैं समाज में जाता तो कोई पूछता कि इस कर्म का फल क्या होगा, उस कर्म का फल क्या होगा तो हम कहते थे आदरणीय पण्डित रतनचंदजी ने एक पुस्तक लिखी है इन भावों का फल क्या होगा, आप वो कृति पढ लीजिये, आपका समाधान हो जायेगा, अन्तिम समय अर्थात् विदाई की बात हो तो विदाई की बेला पढ लीजिये, ये दो कृतियाँ मुझे भी बहुत पसंद है, मैंने भी खूब पढी है, अपने बच्चों को भी कहता हूँ आप इनको पढिये, सैद्धांतिक दृष्टि से यह कृति बहुत अच्छी है, पण्डित रतनचंदजी साहब की कृतियाँ समयोपयोगी थी, हैं और रहेंगी। आदरणीय भारिल्लजी के संबंध में मैं एक बात और कहना चाहता हूँ, वे हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहते थे, वे हमारे कॉलेज में कई कार्यक्रमों में आये, दीक्षांत समारोह, छात्रसंघ के चुनाव या कुछ भी हो, सदैव आते थे, हमेशा प्रसन्नमुद्रा में ही अपना वक्तव्य देते थे, और मार्गदर्शन दिया करते थे। वस्तुत: बोलना तो बहुत कुछ है, यहाँ के अनेक विद्यार्थी अनेक बड़े पदों पर हैं, जैसे वीरसागरजी, सुदीपजी, श्रीयांसजी, अनेकान्तजी और भी अनेक विद्यार्थी हैं, हमें बड़ा गौरव मिलता है, प्राचार्य पण्डित रतनचंदजी साहब ने जो मार्गदर्शन दिया वो संस्कार बच्चों में आये, वो ज्ञान आया, वे गौरवान्वित हुये, मैं तो ये भावना करता हूँ कि वे शीघ्र ही सिद्धगति को प्राप्तकर पूर्णता प्राप्त करें। ●

बड़े दादा ज्ञानशरीर से जीवित हैं

– डॉ. सत्यप्रकाश गुप्ता (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय)

मेरा मानना है कि पण्डित रतनचंदजी जैसे व्यक्तित्व सदैव हमारे साथ रहते हैं; क्योंकि उनके द्वारा स्थापित ज्ञान की ज्योति आज पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के रूप में भारत ही नहीं, अपितु संसार को ज्योतिर्मय करती रहेगी। ●

बड़े दादा के बारे में

– अतुल खारा, डलास-अमेरिका

कुछ साल पहले में और चारु दिसम्बर माह में जयपुर आए थे। छोटे दादा जयपुर से बाहर थे और एक दिन बाद आने वाले थे। हमें सूचित किया गया था की हम बड़े दादा के घर भोजन के लिए जाए। शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल AMWAY में बड़ी पोस्ट पर होने से लेट आए। बड़े दादा और बड़ी मम्मी ने बहुत ही प्रेम से घंटे दो घंटे बातचीत की और भोजन करवाया। तभी हमें उनके सरल स्वभाव और जैनधर्म के गहन अभ्यास का परिचय हुआ। एक छोटी सी मुलाक़ात ने हमें बहुत प्रभावित किया। उनके लिखे हुए साहित्य से हम प्रभावित तो थे ही; लेकिन मिलने के बाद कुछ अलग ही असर हुआ।

बड़े दादा की लिखी हुई रचना जिनपूजन रहस्य तो अनमोल है। जैन समाज में पूजन और आरती के बारे में जो भ्रांतियाँ है, इस किताब से उनका निराकरण हो जाता है। एक और किताब इन भावों का क्या फल होगा? सबको पढ़ने लायक़ है। हमारे लौकिक जीवन में प्रायोगिक आचरण के लिए बहुत ही बढ़िया है। विदाई की बेला भी कहानी के माध्यम से जैन सिद्धान्त समझने के लिए बहुत उपकारी है। प्रवचनरत्नाकर का तो क्या कहना? समयसार पर पूज्य कानजीस्वामी के गुजराती प्रवचन का हिन्दी अनुवाद इतना बढ़िया शायद ही कोई और कर सकता। प्रवचन को लिपिबद्ध करना कोई आसान काम नहीं है। हमारे स्वाध्याय ग्रुप ने यहाँ तीन बार प्रवचनरत्नाकर का स्वाध्याय किया है और यह अनुवाद बहुत ही बढ़िया है, जिसके लिए हम बड़े दादा के ऋणी रहेंगे। वे पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी से बहुत प्रभावित थे। सैंकड़ों बार सोनगढ जाकर गुरुदेव के सान्निध्य में रहे थे। उनके देह-परिवर्तन से मुमुक्षु समाज और टोडरमल स्मारक को अवर्णनीय क्षति पहुँची है। ●

सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति

– प्रो. फूलचंद जैन 'प्रेमी', वाराणसी

श्रद्धेय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल से साक्षात् चर्चा करने का मुझे कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे वास्तव में सरलता, सौम्यता और सौजन्यता की प्रतिमूर्ति थे।

बहुत गहन विषय को भी बहुत सरलरूप में समझाने की और दूसरे के हृदय में उस विषय को बैठा देने की उनकी अद्भुत क्षमता थी।

यही कारण है कि उन्होंने जो भी पुस्तकें या लेख लिखे वे जैन-अजैन, छोटे-बड़े सभी के लिये बोधगम्य थे। उनकी सभी रचनाएँ आज भी बहुत लोकप्रिय हैं, उन्हें बार-बार पढने का मन होता है।

भाई-भाई में प्रेम निरंतर एक जैसा आजीवन बना रहे और एक-दूसरे के विकास में दोनों साधक बने रहें, अपने आपमें यह एक अनुपम उदाहरण है।

किसी भी संस्था के सतत् विकास में समर्पित भाव से लगे रहना और उसे निष्ठापूर्वक बहुत ऊँचाई प्राप्त करवाना - यह स्मारक को देखकर समझा जा सकता है। आज सम्पूर्ण देश में इनके शिष्य इनका उपकार मानते हुए इनका यशोगान कर रहे हैं। एक विद्वान गुरु के लिए इससे ज्यादा क्या सार्थकता हो सकती है? उनके वियोग की क्षतिपूर्ति बहुत दुर्लभ है।

मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ●

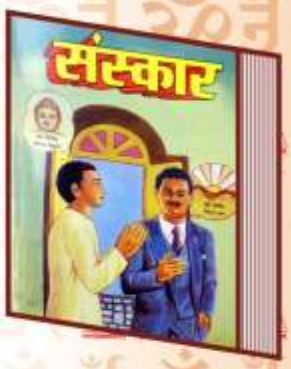

जब तक यह जीव वस्तुस्वातंत्र्य के इस सिद्धान्त को नहीं समझेगा और क्रोधादि विभाव भावों को ही स्वभाव मानता रहेगा, अपने को पर का कर्ता-धर्ता मानता रहेगा, तब तक समता एवं समाधि का प्राप्त होना संभव नहीं है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

द्रव्यदृष्टि : एक अनुपम कृति

– हेमचन्द जैन, देवलाली

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के प्राचार्य, जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) के आद्य संपादक, पत्रकार, लेखक, शिक्षाविद्, प्रवचनकार, स्वनाम धन्य पण्डितश्री रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित अनेक मौलिक कृतियों में 'द्रव्यदृष्टि' भी एक अनुपम कृति है, जो सम्यग्दर्शन के विषय को सरल रीति से स्पष्ट करती है। यद्यपि इस विषय की खोज-शोध का श्रेय 20वीं शताब्दी के आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी को ही है, तथापि इस गूढ़ विषय को सरलतापूर्वक समझने/समझाने का सार्थक प्रयास इस शोध निबन्ध के माध्यम से पण्डितजी ने किया है, जिसका संक्षिप्त सार इसप्रकार है –

यह जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि है। स्व-पर के यथार्थ स्वरूप से विपरीत मान्यता का नाम ही मिथ्यात्व है, विपरीत जानने का नाम मिथ्याज्ञान है और विपरीत आचरण का नाम मिथ्याचारित्र है। यदि यह जीव पक्षपात रहित होकर ज्ञानियों के उपदेशामृत का पान करे, जिनागम का अभ्यास करे तथा प्रमाण-नय-निक्षेपरूप युक्तियों को अवलम्बन लेकर वस्तुस्वरूप का निर्णय करे, स्व-पर का भेदविज्ञान करे, जैन अध्यात्म न्याय विद्या के बल से विषय, साधन और फल (प्रयोजन) का निर्णय करे तो उसे अल्पकाल में ही स्वानुभूति स्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति संभव है।[1]

जीव को औपशमिक, क्षायिक, क्षोयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक – इन पाँच भावों में पारिणामिक भाव सत् निष्क्रिय द्रव्य सामान्य रूप नित्य निरावरणभाव है, अनन्त-गुणों-धर्मों-शक्तियों का घनपिण्ड है, जो त्यागोपादान शून्यत्व शक्तिस्वरूप स्वभाववाला तथा परद्रव्यरूप से परिणमित होने के अभाव स्वभाववाला है। जीवत्व का पारिणामिक भाव शुद्ध अन्तःतत्त्व है, जिसे ज्ञानी के ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धान का श्रद्धेय तथा ध्यान का ध्येय कहा है, वह अनादि से ही नित्य-निरावरणरूप है और अनन्तकाल तक ऐसा का ऐसा ही रहेगा।

जीव का तृतीय असाधारण भाव क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन-वीर्यरूप है, जो अनादि से ही प्रगट पर्यायरूप है, जानन-देखन क्रियारूप है जीव के जीवत्व चैतन्य भावप्राणरूप है। निगोदावस्था से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक अवस्था तक क्रम से वृद्धिंगत होता हुआ दिखाई पड़ता है – अनुभव में आता है। समस्त द्रव्यों के सामान्य-विशेष स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला है।

उपर्युक्त क्षयोपशम भाववाला संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव – मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी कोई भी गति का हो, जिनदेव के उपदिष्ट तत्त्व का श्रवण-ग्रहण-धारण-निर्धारण कर सकता है, मिथ्यात्व का वमन कर सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक कषायों का शमन कर, स्वरूप में रमण कर अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट कर सकता है और संयम धारण कर अभेद निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धोपयोग की पूर्णता प्रगट कर अनन्त सौख्यस्वरूप सिद्ध अवस्था (मोक्षदशा) प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त भावों में क्षायोपशमिक ज्ञानपर्याय ही एक व्यक्तिरूप वह ताकत है, साधन है जो यदि तत्त्व निर्णय करना चाहे तो कर सकती है। इस ज्ञानपर्याय द्वारा ही निश्चय-व्यवहार नय के माध्यम से प्रमाणरूप वस्तुस्वरूप का निर्णय करना होगा। प्रमाण-नय-निक्षेपरूप युक्तियों

का अवलम्बन लेकर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की परीक्षा कर उनके द्वारा कथित प्रयोजनभूत तत्त्वों का निर्णय कर, हेय-ज्ञेय-उपादेय की सच्ची परख कर, स्व-पर का विवेक जागृत कर अपने को हितकारी-अहितकारी भावों को स्वयं ही समझना होगा। आगम का अभ्यास तथा ज्ञानी गुरुओं का उपदेश तो बाह्य निमित्तमात्र है।

आज तक हमने अपनी व्यक्त ज्ञानपर्याय (साधन) का दुरुपयोग ही किया, परद्रव्यों-परभावों के जानने-देखने में बरबाद किया है। स्वयं जो अनादिनिधन चैतन्यद्रव्य है, उसे जाना नहीं पहिचाना नहीं, उसमें 'मैं' पन लाया नहीं और असमानजातीय द्रव्य-पर्याय में अहंपना रखकर पूजा-पाठ, व्रत-उपवासादि को ही धर्म समझकर अपने को धर्मात्मा मान लिया। पर्याय को स्वांग समान नहीं जाना और निज ध्रुव चैतन्यतत्त्व होकर भी अपने को देहरूप-जड़रूप मानता रहा।

समस्त ही मोह-राग-द्वेष परिणाम (औदयिक भाव) हमारे ज्ञानानन्द स्वभाव के घातक हैं, आस्रव-बंधकारक हैं और जो प्रगट ज्ञान-दर्शन-वीर्यरूप क्षायोपशमिक भाव हैं, स्वभाव का प्रतिनिधित्व करनेवाले हैं, यदि वे ही औदयिक भावों को अपना स्वभाव जानेंगे तो फिर किस साधन से दुःख-आकुलता का व्यय होकर सच्चे अतीन्द्रिय सुख (निराकुलता) का उत्पाद हो सकेगा?

अक्षय अनन्त ज्ञान-आनन्द के भंडारस्वरूप कारण द्रव्य, कारण परमात्मा, कारण समयसार, परम पारिणामिक भाव, अनाद्यनन्त-निष्कारण-असाधारण-स्वसंवेद्यमान-चैतन्य-सामान्य है, तथा जो त्रिकाल ज्ञायकमात्र ही है, ऐसे शाश्वत आतमदेव को ही जो निज जाने तथा उसी में लीनता करे तो यह मतिश्रुतरूप क्षायोपशमिक ज्ञानपर्यायधारक क्षायिक केवलज्ञानीवत् अतीन्द्रियसुख का भोग कर सकता है।

यहाँ ज्ञातव्य है कि अवधि व मनःपर्यय ये दो ज्ञान तो विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। अवधि, मनःपर्ययज्ञान से आत्मा नहीं जाना जा सकता; क्योंकि उनके विषय मात्र रूपी/मूर्तिक द्रव्य हैं। अब हमारे पास निजात्मा को जानने, अनुभवने का एकमात्र साधन मति-श्रुत परोक्षप्रमाण ज्ञान ही रह जाता है, जिसके विषय रूपी एवं अरूपी दोनों प्रकार के द्रव्य हैं। उसमें भी इन्द्रियों के माध्यम से प्रवर्तनेवाले मतिज्ञान के विषय मात्र रूपी पदार्थ ही होते हैं तथा द्रव्य मन से प्रर्वतनेवाले मतिज्ञान-श्रुतज्ञान का विषय संबंध रूपी-अरूपी दोनों प्रकार के द्रव्यों से है। अतः अरूपी आत्मा को जानने में इन्द्रियाँ तो सर्वथा ही निमित्त नहीं हो सकती हैं, परन्तु द्रव्यमन अवश्य निमित्त होता है, क्योंकि भावमन का सद्भाव बारहवें गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जाता है, तथापि सम्यग्दृष्टि के निर्विकल्प अनुभव को अतीन्द्रिय कहा है, क्योंकि मन का जो धर्म अनेकप्रकार के विकल्प करना है, वह अनुभव काल में नहीं है। अतः पाँच इन्द्रियों व छठवें मन के द्वारा प्रवर्तनेवाले सर्व ही मति-श्रुतज्ञान को निर्विकल्प अनुभवदशा में केवल स्वरूप सन्मुख होने से तथा मनजनित विकल्पों से रहित हो गया होने से, अतीन्द्रिय निराकुल शान्त रस का वेदन प्रत्यक्ष होने से एकदेश अतीन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है। जैसे इन्द्रिय ज्ञानों में एकदेश निर्मलता पाई जाने से लोक-व्यवहार में उसे सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। वह भी यहाँ आत्मानुभव में नहीं है तथा केवलज्ञानवत् पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी नहीं है, तथापि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष-प्रामाण्य सहित) हुआ होने से पारमार्थिक प्रत्यक्षवत् अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ही है। इसलिए स्वात्माभिमुख हुए भावश्रुत ज्ञान को केवलज्ञानापेक्षा परोक्ष होने पर भी प्रत्यक्ष कहा है।[1]

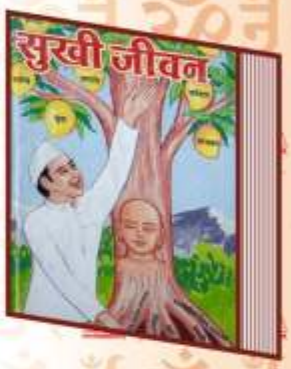

अनादिकाल से अज्ञानी जीव की देह में व रागादि भावों में ही एकत्वबुद्धि है, वह आत्मा के शुद्धस्वरूप को नहीं जान पाया। इस कारण उसे आत्मानुभूति नहीं हुई, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

अब यदि हम प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय-प्रमिति अथवा ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञप्ति अथवा अनुमाता-अनुमान-अनुमेय-अनुमिति अथवा ध्याता-ध्यान-ध्येय-ध्याति (ध्यान का फल) की ओर से विचार करें तो पायेंगे कि जो भी जीव प्रमाता, ज्ञाता, अनुमाता अथवा ध्याता होता है, तब उसमें प्रमाण, ज्ञान, अनुमान और ध्यान यह सब ज्ञानपर्यायें होती हैं और ये ज्ञान पर्यायें विषयों को जानने का साधन हैं तथा प्रमेय, ज्ञेय, अनुमेय, और ध्येय यह सब जानने में आनेवाले विषय हैं तथा प्रमिति, ज्ञप्ति, अनुमिति और ध्याति (ध्यान का फल) यह सब जानने के हर्ष-विषादादि सुख-दुखरूप फल हैं। इसप्रकार प्रत्येक ज्ञान-पर्याय ही पदार्थों (स्व-पर) को जानने का साधकतम साधन होती है तथा उसमें जानने में आनेवाले पदार्थ ही उसके विषय होते हैं तथा उसी क्षण जो सुखानुभूति या दुःखानुभूतिरूप वेदन होता है, वह उस विषय को जानने का फल है।

हम सभी के पास भाव श्रुतज्ञान प्रगट विद्यमान है। मात्र आवश्यकता है उसके निज शुद्धात्माभिमुख (स्वोन्मुख) होने की।

''वस्तुतः पदार्थों का जानना, नहीं जानना या अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार होता है तथा जो सम्यक् प्रतीति होती है सो वह भी जानने पर ही होती है, बिना जाने यथार्थ प्रतीति नहीं हो सकती।[2]''

''जिनोपदिष्ट शास्त्र द्वारा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पदार्थों को जाननेवाले के नियम से मोहसमूह क्षय हो जाता है, इसलिए शास्त्र का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करना चाहिए।[3]'' यदि हम निजात्मा को संशय-विपर्यय-अनध्यवसाय रहित अन्यून-अनतिरिक्त-अविपरीतरूप से यथार्थ जान लें तो अवश्य ही एकाग्रचिन्तानिरोध के समय ध्यानकाल में ध्याता पुरुष को शुद्धात्मा का अनुभव होता है। निर्विकल्प स्वसंवेदनरूप अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति प्रगट हो जाने से निज ध्रुव चिदानन्दात्मा की यथार्थ प्रीति रूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है अर्थात् तीनों की ऐक्यतारूप निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है और अल्पकाल में निर्वाण सौख्य को पाने का अधिकारी बन जाता है।

शुद्धात्मा का ध्यान ही परम धर्म है, जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रदाता है। ''जैसा चिन्तन वैसी पर्याय'', निज ध्रुव चिदानन्दात्मा ही शुद्धात्मा है, उसका चिन्तन अर्थात् ध्यान ही शुद्ध पर्याय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की जन्मदाता है, अतीन्द्रिय सुख की प्रदाता है।

''मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र ही हूँ, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित होने से मैं तो एक सकल विमल केवलज्ञानस्वरूप ही हूँ'' - ऐसा अभिप्राय ग्रहण कर जो ऐसा ध्यान करता है - चिन्तन करता है - भावना भाता है, वह निज शुद्धात्मा में स्थित होकर आत्मा का ध्यान करनेवाला होता है, वह चिदानन्द एक स्वभाव परमात्मा का ध्याता होता है, वही परम आत्मध्यान से परमात्म पर्याय को प्राप्त करता है।

समस्त नय विकल्प मात्र स्याद्वाद श्रुतज्ञान में ही होते हैं और श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है तथा मतिज्ञान प्रमाण (निर्विकल्प) रूप ही होता है। अतः मतिज्ञान प्रमाण से जाने गये अखंड/अभेद पदार्थ को उसकी विशेषताओं (गुण-पर्यायों) को जानने का विकल्प, खण्ड-भेदरूप कल्पना, श्रुतज्ञान का कार्य है। जब यह श्रुतज्ञान खण्ड-भेद कल्पना के द्वारा, विविध नयों के अवलम्बन द्वारा अखण्ड-अभेद वस्तु को ग्रहण कर लेता है, जान लेता है, तब वह श्रुतज्ञान भी उस विषय के बारे में मतिज्ञान की तरह विचार-भेद-कल्पना रहित प्रमाणरूप हो जाता है।

प्रकृत में निज ध्रुव चिदानन्दात्मा विषय है, साध्य है और मति-श्रुतज्ञान विषयी है, साधन हैं। समस्त श्रुतविकल्पात्मक नय परोक्ष ज्ञान है, किन्तु जब वह नयातीत, विकल्पातीत, पक्षातिक्रान्त होकर एकाग्रचिन्तानिरोध के समय निर्विकल्प ज्ञानात्मक स्वार्थप्रमाणरूप हो वर्तता है तब तत्क्षण स्व-संवित्तिरूप आनन्द का भोग (आह्लाद) प्रगट अनुभव में आता है, तब यह एकदेश अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान साधनरूप ही होता है, नय साधनरूप नहीं होता है। उस प्रमाणज्ञानरूप मति-श्रुत (साधन) का विषय शुद्ध द्रव्य के निरूपणवाले निश्चय नय द्वारा निर्णीत, अभेदवृत्ति का वाच्यभूत निज ध्रुव चिदानन्दात्मा होता है। यह विषय एकत्व-विभक्तरूप निज कारण परमात्मा ही है। 'उसका वेदन अनुभव हुआ' यह कहना भी व्यवहार है; क्योंकि वेदन (अनुभव) तो पर्याय में पर्याय का ही होता है। विषयभूत आत्मा त्रिकाली द्रव्य है और जाननेवाली पर्याय क्षणिक है।

मिथ्यात्व व अनन्तानुबंधी कषाय के अभाव में जो आंशिक अतीन्द्रिय निराकुल लक्षणसुख प्रगट होता है, वही पंचम गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषाय के भी नाश हो जाने से द्विगुणित अतीन्द्रिय सुख प्रगट हो वर्तता है, वही प्रत्याख्यानावरण कषाय के नाश हो जाने से छठवें एवं ऊपर के गुणस्थानों में त्रिगुणित अतीन्द्रिय सुख प्रचुर स्वसंवेदनरूप प्रगट हो वर्तता है और क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान में संज्वलनकषाय का भी अभाव हो जाने से वीतरागतारूप निराकुल अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख प्रगट हो वर्तता है। केवलज्ञान होने पर वही अरिहंतावस्था में अनंतसुखरूप तथा सिद्धावस्था में अव्याबाध अनंत सुख कहलाता है, जो अनन्तकाल पर्यन्त प्रगट वर्तता रहता है, इसी निष्कर्म अशरीरी अवस्था की प्राप्ति का नाम मोक्ष है - यही प्रगट करने के लिए उपादेय है और वह निज स्वभाव साधन से स्वाश्रय से प्रगट होती हैं, अतः निज ध्रुव चिदानन्दात्मा आश्रय करने के लिए परम उपादेय है। इसप्रकार प्रमाण ज्ञानसाधन से (ध्यान पर्याय साधन से) परभावशून्य, अनाद्यनन्त निज ज्ञायक कारण-परमात्मारूप विषय को अनुभवने से, उसी में अहंपना स्थापित हो जाने से, उसी एक का लक्ष-पक्ष होने से, मति-श्रुतज्ञानोपयोग के दक्ष हो जाने से निज भगवान आत्मा प्रगट पर्याय में अनुभव में आता है और आकुलतोत्पादक कषायें स्वयमेव नाश को प्राप्त हो जाती हैं। सभी आत्मार्थी इसी स्थिति को प्राप्त करें इस मंगल भावना के साथ विराम। ●

मुमुक्षु गगन सितारे

- रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर

पू.गुरुदेव श्री के शिष्यों में थे रतन,
यशस्वी प्राचार्य बने रतन, सरल,
सहज स्वभाव के थे रतन,
वात्सल्यमूर्ति दादा थे वे रतन,
'इन भावों का फल क्या होगा' -
महान कृति के लेखक थे रतन,
सत्ताइस पुस्तकों के जो लेखक और
मुमुक्षु गगन के सितारे थे वे रतन,
'प्रवचन रत्नाकर' रूप गुरु प्रवचनों के,
सफल अनुवादक थे वे रतन,
ऐसे अनगिनत... रत्नों के,
रत्नाकर वे 'रतन'।
आदरणीय बडे दादा श्री को मैं अपने
भावांजलि द्वारा
श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

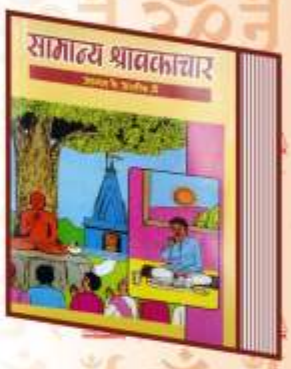

जिसतरह युद्ध के मैदान में सफलता प्राप्त करने के लिए जीवनभर अस्त्र-शस्त्र कला का अभ्यास जरूरी है; उसीतरह मृत्यु को महोत्सव बनाने के लिए जीवन भर तत्त्वाभ्यास जरूरी है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

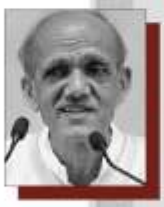

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल को श्रद्धा सुमन

– पं. राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर

जयपुर के ही नहीं रतन तुम, विद्वत रत्न जहान के।
पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, सार्थक नाम महान है।।
पण्डित टोडरमल स्मारक, ट्रस्ट बना जब जयपुर में।
आये थे गुरुदेवश्री उद्घाटन करने।।
कहा गोदिका भाग्य तुम्हारे भारिल्ल सा परिवार है।
डॉ. भारिल्ल, रतनचंद सा कर्मठ योगी।।
आप सरलता की मूरत थे, कैसे नहीं तुमको जाने।
सब बच्चों पर छत्रछाया पुत्र तुल्य सबको पाले।।
ज्ञानदान तो देते ही थे, लाड़-प्यार-आहार दिया।
कौन शास्त्री जो भुला पायेगा, जो वात्सल्य अपार दिया।।
विपुल शास्त्र भंडार आपकी, कलम कला से उमड़ पड़ा।
बहुत सरल शैली में रचकर, जिनशासन उपकार किया।।
'प्रवचन रत्नाकर' गुजराती से हिन्दी में बना दिये।
'इन भावों का क्या फल होगा', शास्त्र जगत को भेंट किये।।
'संस्कार' डालो बच्चों में, तव समाधि हो जायेगी।
अरे 'विदाई की बेला' पढ़ लो, सही दिशा मिल जायेगी।।
गुरु कहान क्रमबद्ध से सारा जीवन बदल गया।
अध्यातम का रंग चढा तो, धंधा सारा भुला दिया।।
अरे हजारों शास्त्री गढकर, तुमने जग को भेंट दिये।
जिनशासन ध्वज लहराने को, मंगलमय अवतार लिये।।
आप 'बड़े दादा' कहलाते, सही बड़प्पन के गुण थे।
आप श्री प्राचार्य वहाँ, सचमुच में प्राचार्य रहे।।
जीवन पूरा किया समर्पण, ज्ञानदान के यज्ञ में।
जीवन सचमुच किया सार्थक भावी सिद्ध समृद्धि में।।
आप जहाँ हो वहीं आपकी, मंगलमय हो साधना।
विनयांजलि सहज स्वीकारो, बन जाओ परमात्मा।।

सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा मिली

– आई.एस. जैन, मुम्बई

आदरणीय बड़े दादा श्री रतनचंदजी भारिल्ल से मैं जब भी मिला, उनसे बातचीत की, उनके तत्त्वप्रेरक प्रवचन सुने, उनकी मौलिक कृतियाँ सत्साहित्य पढ़े, तब मुझे तो वे हर पल आत्मानुरागी आत्मसाधक आत्मार्थी ही प्रतीत हुए। उनके बाह्य व्यक्तित्व को भी देखकर हमें सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा मिली। अपने इस जीवन में बड़े दादा बाह्य में भले ही सिद्धांतसूरी, शिक्षारत्न, प्राचार्य, प्रवचनकार, सत्साहित्य के ख्यातिप्राप्त लेखक, साहित्यकार, संपादक आदि अनेक उपाधियों से सम्मानित हुए हों; पर अंतरंग में तो वे आत्मज्ञानी ही थे एवं शीघ्रातिशीघ्र शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे – इसी मंगल भावना के साथ हम सभी परिवारजन अविस्मरणीय बड़े दादा को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। ●

ये दिन भी न रहेंगे

– नरेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर

हर व्यक्ति के जीवन में उदयानुसार उतार-चढाव आते ही रहते हैं, संसार-चक्र का यही क्रम है। बहुत अनुकूल समय के बाद अचानक एक के बाद एक प्रतिकूल परिस्थितियाँ आ जाने पर मनुष्य बहुत घबरा जाता है और उसके मस्तिष्क में अनेक विचारों की उथल-पुथल चलती रहती है। ऐसे अवसर पर मानवीय दुर्बलतावश हमेशा विपरीत भाव ही उत्पन्न होते रहते हैं और स्वाध्याय के अभाव में तनाव इतना हावी हो जाता है कि उसे बहुमूल्य दुर्लभ भव से मुक्त होने का मार्ग सबसे सरल लगने लगता है।

मेरे जीवन में भी एक बार ऐसी अकल्पनीय प्रतिकूल परिस्थिति निर्मित हुई। उस समय तीव्र असाता के उदय के साथ इस जाति का साता का उदय भी आया, जिसके कारण उन्हीं दिनों तत्काल बाद ग्रीष्मकालीन वीतराग विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में जाना हुआ। संयोग की बात है कि वहाँ श्रद्धेय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (बड़े दादाजी) के प्रवचन में प्रथमानुयोग के सती सीता-अंजना आदि के संदर्भ द्वारा 'ये दिन भी न रहेंगे' इस शब्दावली से मुझे बहुत संबल मिला। प्रवचन के तुरन्त बाद ही आदरणीय दादाजी को व्यथित हृदय से अपनी मन:स्थिति बतलाई, तब उन्होंने कुछ इन्हीं शब्दों में कहा –''अनंत भवों में इनसे अनंतगुणे कष्ट सहे हैं, यह सब अपने ही कर्मों का फल है। जीवन में उत्पन्न समस्याओं का समतापूर्वक सामना करना है। किसी भी निन्दनीय कार्य करने पर भविष्य और भी अधिक अंधकारमय होगा; क्योंकि कर्म तो साथ में जाएंगे ही''। इसप्रकार उनके द्वारा समझाए जाने पर मुझे बहुत समाधान मिला और भविष्य में एक अप्रत्याशित अविवेकपूर्ण निर्णय के अनुसार परिणमन करने से बच गया। इसके लिये अप्रत्यक्षरूप से बड़े दादाजी का मुझ पर महान उपकार है।

अंत में मैंने दादाजी से मेरी मनोव्यथा को अपने तक ही सीमित रखने का विनम्र निवेदन किया था, तब उन्होंने यह कहकर मुझे पूर्ण आश्वस्त कर दिया था कि मैं किसी की व्यक्तिगत बात को कभी उजागर नहीं करता।

ऐसे सरल-पवित्र हृदय, उपगूहन, वात्सल्य गुण के धनी थे, आदरणीय बड़े दादाजी। मैं उनकी अपूर्ण साधना को पूर्ण होने की भावना के साथ उनके चरणों में अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ●

जो समाधि के अनुसार जीवन जीना सीख लेता है, वह वर्तमान में तो पूर्ण निराकुल, अत्यन्त शांत और पूर्ण सुखी रहता ही है, उसका अनंत भविष्य भी पूर्ण सुखमय, अतीन्द्रिय, आनन्दमय हो जाता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

विदिशा में पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के सत्रह वर्ष

– शिखरचंद जैन, विदिशा

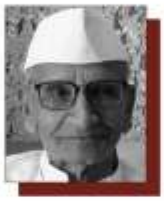

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का उनके तीर्थयात्रा प्रवास में दो बार विदिशा नगरी में शुभ आगमन हुआ, गुरुदेवश्री के पधारने से विदिशा में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। और अनेक साधर्मियों में सोनगढ शिविर में जाने की भावना बलवती हुई।

मैं स्वयं सोनगढ गया तथा वहाँ से प्रेरणा पाकर विदिशा में भी ग्रीष्मकाल में प्रतिवर्ष धार्मिक शिक्षण शिविरों की शृंखला प्रारम्भ हुई। उन शिविरों में तत्कालीन प्रतिष्ठित विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था, उसी शृंखला में आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल यहाँ पधारे थे, शिविर में हुए प्रवचनों से आपका प्रभाव इस क्षेत्र में इतना बढा कि समाज ने आपको विदिशा में स्थायीरूप से रहने का अनुरोध किया और विदिशा आपका स्थायी निवास बन गया। यद्यपि उस समय विद्यालय में जैन विद्वान के लिये स्थान नहीं था, फिर भी समाज के आग्रह से श्रीमंत सेठजी ने आपको शिक्षक का स्थान प्रदान किया। आपके पढाये व्यक्ति आज भी आपको देश विदेश में बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पूज्य पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने सन् 1962 से 1979 तक अपने जीवन के महत्वपूर्ण 17 वर्ष विदिशा नगर में पूरे जैन समाज को दोनों समय धार्मिक शिक्षा देकर तथा अनेक कार्यक्रमों में अपने धार्मिक वात्सल्यपूर्ण व्यवहार और प्रभावी प्रवचनों द्वारा समय-समय पर लाभान्वित किया। आपके विदिशा निवास के काल में दो बार विदिशा में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित विशाल प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें हजारों की संख्या में देश तथा विदेश के कोने-कोने से पधारे शिक्षणार्थियों ने धर्मलाभ लिया। तथा इतना ही नहीं विदिशा में रहते हुए पण्डित रतनचंदजी के निर्देशन में पूरे मध्यप्रदेश में रात्रिकालीन पाठशालाएं संचालित हुईं। आपके द्वारा लगाये गये तत्त्वप्रचार के पौधे आज भी फल-फूल रहे हैं। पण्डितजी का पारिवारिक स्नेह संबंध आज भी हमारे परिवार और विदिशा की जैन समाज से है। विदिशा में पण्डित ज्ञानचंदजी द्वारा नये मंदिर के पंचकल्याणक में मेरे द्वारा निवेदन करने पर दोनों भाईयों ने सपरिवार मेरे घर पर रहने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और मेरे पूरे परिवार को धर्मलाभ भी दिया, मेरा परिवार आपका ऋणी है। मेरा परिवार जब भी जयपुर आते थे तो हमको ऐसा लगता था कि हम अपने ही घर पर आ गये हैं। इतना हृदय से भारिल्ल परिवार हमको चाहता है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। पण्डितजी ने अनेक प्रथमानुयोग का साहित्य अत्यंत सरल व रोचक भाषा में लिपिबद्ध किया। लोग उसको तब तक पढते रहते हैं जब तक वह साहित्य पूरा न हो जाये। जिस समय हमारी विदिशा समाज को और मेरे परिवार को यह पता चला कि आदरणीय पण्डित रतनचंदजी साहब का स्वर्गवास हो गया है, तो मेरे परिवार को तथा समाज को वज्रघात सा लगा कि आज तक पण्डितजी द्वारा जो नया-नया साहित्य प्राप्त होता था, वह अवरुद्ध हो गया। मैं और मेरा परिवार व विदिशा समाज स्तब्ध रह गये, किंकर्तव्यविमूढ हो गये, आज इस देश का सूर्य अस्त हो गया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पण्डितजी की धर्म साधना अवश्य ही फलीभूत हुई होगी और वे लौकांतिक देव बने होंगे तथा सीमंधर स्वामी के समवशरण में नियमित जाते होंगे; परन्तु हम रागी हैं इसलिये हमें राग आता है, पण्डितजी साहब को मेरा बारम्बार नमन। ●

सरलता की प्रतिमूर्ति थे बड़े दादा

– अनूपचंद जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जिन्हें प्राय: बड़े दादा के रूप में जाना-माना जाता था, बेहद सहज, सरल एवं विनम्रता के पर्याय थे। हमारे नगर फिरोजाबाद के प्रमुख चूड़ी व्यवसायी और हमारे सहपाठी श्री सुरेश जैन जो इस समय बैंगलोर में चूड़ी के बड़े व्यापारी हैं, के समधी थे। सुरेशजी की बेटी भाई शुद्धात्मजी को ब्याही है, इसलिये उनसे परिचय था। एक बार महावीर जयन्ती के अवसर पर बड़े दादा का आगमन हुआ। सभा का संचालन मैं कर रहा था। 'भगवान महावीर के सिद्धांत आज क्यों प्रासंगिक हैं' विषय पर दादा के उद्बोधन ने जो तालियाँ बटोरी उनसे सभी प्रसन्न थे।

विद्वत्परिषद् के संयोजन में श्रवणबेलगोला में 3 दिन साथ रहने का सुयोग बना, यात्री निवास में हमारे और उनके कमरे आमने-सामने थे। उस समय दादा और माँ जी का जो स्नेह मुझे और मेरी पत्नी को मिला, उसे हम कभी भूल नहीं पाये।

निकटता दिनोंदिन बढती गई, जब भी जयपुर आना हुआ, मैंने उन्हें फोन किया और स्मारक में आवास/भोजन की सभी व्यवस्थाएँ हो गईं। कम से कम एक बार उनके फ्लैट पर भी जलपान/भोजन लेना ही पड़ता। ●

चिरवियोग, चिरसंयोग में बदल सकता है

– राहुल गंगवाल, जयपुर

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, जिन्हें हम बड़े दादा के नाम से जानते हैं, वे वास्तव में स्वनाम धन्य हैं। परिवार में बड़े होने मात्र से वे बड़े दादा नहीं हैं, अपितु अपनी सरलता सौम्यता सहजता और अगाध विद्वत्ता के कारण भी बड़े दादा हैं। बड़े दादा से मेरा परिचय उनके साहित्य द्वारा हुआ है। उनकी 'संस्कार', 'इन भावों का फल क्या होगा?' इत्यादि जैन साहित्य हम जैसे युवाओं को सन्मार्ग में प्रेरित करने में कारण बनता है। बड़े दादा के साक्षात् प्रवचनों का लाभ तो कम ही मिला है; परन्तु शिविर के उद्घाटन के समय उनका प्रवचन पूरे वर्षभर की कमी को पूरा कर देता था। बड़े दादा आज भले ही हमसे देह से दूर हो गये हों, परन्तु अन्तर्मन से और अपने साहित्य से आज भी हमारे बीच जीवन्त हैं। उनकी गम्भीर और हँसमुख मुद्रा आज भी मानस पटल पर अंकित है। विद्यालय के क्रियाकलापों में वो गम्भीर और अनुशासित प्राचार्य के रूप में तथा पाठन और लेखन के समय हँसमुख और मिलनसार व्यक्तित्व के रूप में परिचित रहे हैं। मेरे लिये बड़े दादा वास्तव में ज्ञान लेखन प्रवचन आदि के रूप में आज भी बड़े दादा हैं, उनका चिर वियोग उनके द्वारा रचित साहित्य से चिर संयोग में बदला जा सकता है। हम सभी उनके साहित्य का स्वाध्याय कर सदैव उनके समीप रहें – ऐसी मंगल भावना है। ●

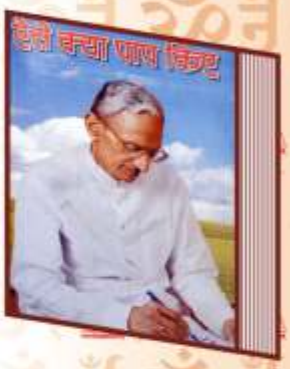

निर्भय व निर्लोभी हुए बिना सत्य कहा नहीं जा सकता और संपूर्ण समर्पण के बिना सत्य सुना व समझा नहीं जा सकता।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

हमारे साथ ही हैं

– श्री त्र्यंबकभाई, श्री विपिनभाई, श्री अशोकभाई एवं समस्त वाधर परिवार, जामनगर

इस पंचम काल में भगवान महावीरस्वामी की शासन परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्ददेव से आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी साहब से वर्तमान अध्यात्मवाणी के सृष्टा युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावना योग से तत्त्वज्ञान की निर्मल गंगा का प्रवाह चल रहा है। उसी प्रवाह के प्रमुख अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंदजी साहब हैं।

उनकी तीक्ष्ण अध्यात्म-दृष्टि, प्रभावक वक्ता, उच्च कोटि के अध्यात्म प्रभावना प्रचारक जैसी अनुपम निधि के स्वामी आज देहस्वरूप नहीं रहे; परन्तु वे हैं - हमारे साथ ही हैं और त्रिकाली साथ ही रहेंगे - यह सब इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री के परिवार की सच्ची मन की आवाज है।

अधिक क्या कहें - पूरा परिवार ही पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्मवाणी के प्रचार-प्रसार व प्रभावना मार्ग से जुड़ा हुआ है और अध्यात्मरस में पूर्णरूप से तल्लीन है। अधिक क्या लिखें...।

जीवन जीने की कला सिखायी

– संजय दीवान, सूरत

मैंने बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी का विशेष सान्निध्य तो नहीं पाया; लेकिन जब-जब टोडरमल स्मारक में जाता था, तब-तब उनको लिखते पढते देखता था। मेरा उनके साथ नमस्कार/जय-जिनेन्द्र जितना ही व्यवहार रहा है, इतने मात्र में भी उनकी सौम्यता और वात्सल्य का अपूर्व अहसास होता था। एक आदर्श जीवन कैसा होना चाहिये, यह उनके नज़दीक से गुज़रने से ही सीखने को मिल जाता था।

छोटे दादा द्वारा लिखित भरत का अन्तर्द्वन्द में भरत बाहुबली के आपसी प्रेम का चित्रण देखकर ऐसा लगा कि मानो उन्होंने स्वयं अपने बड़े दादा के साथ अनुभवों को लिखा हो। सच ही है कि धर्मात्मा भाईयों में कभी प्रतिस्पर्धा नहीं होती। गहरी बातें तो विद्वान लोग जानते हैं, हम तो बस एक धर्मात्मा का सबके साथ कैसा रिश्ता हो, ये सीख सीखने की कोशिश करते हैं। बड़े दादा की पीढ़ी भी कोई कम नहीं है; समाज-उत्थान व जिनवाणी का प्रचार करके लोगों को धर्ममार्ग पर लाने का कार्य कर रही है, जो कि बड़े दादा के मार्गदर्शन से ही हुआ है। बड़े दादा की छवि हमेशा हमें सहजता सिखाती रहेगी। बड़ी मम्मी का वात्सल्य किसी से छुपा नहीं है। वे एक नहीं; हज़ारों सुपुत्रों की माता है।

जब शुद्धात्मप्रकाशजी 'इन भावों का फल क्या होगा' समझाते हैं तो बड़े दादा की वो निर्दोष छवि स्मृति पटल पर छा जाती है। छोटे दादा के मुखारबिंद से बड़े दादा की बातें सुनने पर यह ज़रूर लगता है कि भाईयों की अच्छाईयों को चुन-चुनकर इकट्ठा करना चाहिए। संजीवजी गोधा के प्रवचनों में हमेशा किसी ना किसी विषय के प्रवचन में, 'बड़े दादा ने ऐसा लिखा या ऐसा कहा' - सुनते रहते हैं, इससे दादा की कृतियों का बहुमान आता है। मुझे गर्व है कि मैं सम्पूर्ण भारिल्ल परिवार के सम्पर्क में हूँ। यह परिवार पारस की तरह है अर्थात् जो भी इसके संपर्क में आयेगा, वह बहुमूल्य बन जायेगा।

अन्तर्बाह्य कोमल जीवन

– कुसुम-प्रदीप चौधरी, किशनगढ

जब हम बहुत छोटे थे, तब आपके पिताजी श्री हरदासजी भारिल्ल हमारे घर (लवाण) आया करते थे। वे कई कई महिनों तक हमारे ही घर रुकते थे, हमें धार्मिक संस्कार तो उन्हीं से मिले हैं; उन्होंने हमें बालबोध पढाई थी। उनकी छवि मुझे आपमें दिखाई देती थी। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि सरलता सज्जनता सौम्यता में आप अपने पिताजी से भी दो कदम आगे हैं।

आपका जीवन न केवल हमारे लिये आदर्श है; अपितु दुनियाभर के आत्मार्थियों के लिये एक मिसाल है। आपके जीवन के हर पहलू से हमें कुछ न कुछ सीखने को मिला है। आपके बोलने चलने से, आपके रहन-सहन से, आपके समझाने की शैली से, आपकी प्रत्येक क्रिया में अपार सफलता दिखाई देती थी, जो सबके लिये प्रेरणा स्वरूप है।

जितनी सरलता आपके बाहरी जीवन में दिखाई देती थी, आंतरिक सरलता उससे कहीं अधिक थी। हमने अपने जीवन में आप जैसा सरल व्यक्तित्व कोई दूसरा नहीं देखा। बालकवत् निश्छल छवि आपके मुख मण्डल से स्पष्ट झलकती थी।

आचार्यों ने सज्जनोत्तम पुरुषों का चित्र किशमिश की तरह बताया है। आपका अन्तर्बाह्य जीवन भी उसी तरह कोमल था। आप जैसे ज्ञानी पुरुष इस धरती पर विरले ही होंगे।

जब हमारी बेटी की शादी थी, उसी समय आपकी भतीजी की भी शादी थी, अस्वस्थता के कारण आप दोनों ही जगह उपस्थित नहीं हो सके। किन्तु फिर भी बधाई देने के लिये आपने फोन किया। अपनी पुत्री के विवाह का कदम हमने आपकी और छोटे दादा की प्रेरणा से ही उठाया था। उन दिनों जब भी आपसे मिलते थे, आप कहते थे ''तुमने धर्मात्मा लड़का चुना है, बहुत अच्छा है, तुम्हारी बेटी हमेशा खुश रहेगी।'' इसका फल हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। आपके साथ-साथ आपकी कृतियों ने भी हमारे जीवन में एक बहुत बड़े मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है। आपकी कोई भी पुस्तक प्रकाशित होती थी, तो हम तुरन्त उसे अपनी शास्त्र सभा में चलाया करते थे। जैन सिद्धान्तों का गूढ मर्म समझने हेतु छोटे-छोटे से दृष्टांत देकर आपके द्वारा लिखी गई पुस्तकें अत्यंत सहायक है। मैं तो कहना चाहती हूँ कि आपकी इन पुस्तकों को सभी शास्त्र सभाओं में एक बार तो अवश्य चलाना चाहिये। आपकी जैसी ही सरलता सहजता बड़ी मम्मी में भी देखने को मिलती है। बबलूजी और सर्वज्ञ भी आपके पदचिह्नों पर चल रहे हैं, यह बहुत प्रसन्नता की बात है। ●

धर्मनिष्ठ श्रावक

– कमल बाबू जैन (अध्यक्ष), प्रदीप जैन (महामंत्री)
– राजस्थान जैन सभा, जयपुर

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल मूर्धन्य विद्वान व पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की हर गतिविधियों का आधार स्तम्भ होने के साथ ही सादा जीवन उच्च विचार वाले मिलनसार, हंसमुख व्यक्तित्व के धनी, धर्मनिष्ठ, श्रावक थे। आपके असामयिक निधन से परिवार के साथ ही समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। ●

देखो, तुम्हारा यह पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान फिर नये दुःख के बीज बो रहा है। अतः इस पीड़ा पर से अपना ध्यान हटाकर आत्मा पर केन्द्रित करो, जिससे पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा तो होगी ही, नवीन कर्मों का बंध भी नहीं होगा।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

हर चीज में बड़े - हमारे बड़े दादा

– संस्कृति गोधा, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा के व्यक्तित्व से कौन प्रभावित नहीं हुआ होगा? पलभर के लिये मिलने वाले व्यक्ति को भी अपनी सहज मुस्कान से अपना बना लेने की अद्भुत कला उनमें थी। उनकी सहज मुस्कान निरंतर आँखों के सामने घूमती रहती है। उनके प्रवचन की सरल शैली इतनी सरस होती थी कि छोटे-बड़े सभी आकर्षित हुए बिना नहीं रहते थे। दृष्टांत इतने सटीक होते थे कि सिद्धान्त आसानी से हृदय में उतर जाता था। जैसी सहजता से वे प्रवचन करते थे, वैसा ही सहज उनका जीवन भी दिखायी देता था। दादा अस्वस्थ होने के बावजूद भी हमेशा समय से प्रवचन में उपस्थित रहते थे। आपकी उपस्थिति हमें आज भी प्रवचन हॉल में महसूस होती है।

मैं अपने आपको उन गौरवशाली लोगों में महसूस करती हूँ, जिन्हें दोनों दादा और मम्मी का विशेष सान्निध्य, समागम और स्नेह मिला है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का यथार्थ आंकलन उनके परिवारवालों की दृष्टि में होता है। मैंने बड़ी मम्मी और संध्या भाभी से बातचीत के दौरान कई बार उनकी सरलता व सहजता के किस्से सुने हैं। हम जब भी उनसे मिलने घर जाते थे, तो वे हमेशा लिखते-पढते हुए ही मिलते थे।

बड़े दादा तो सच में बड़े थे - बड़ा दिल, बड़ा हौसला, बड़े कार्य, बड़े संस्कार, बड़ा व्यक्तित्व! बड़े दादा के व्यक्तित्व को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। उनके बड़े व्यक्तित्व के सामने शब्द छोटे लग रहे हैं।

आपके द्वारा लिखी 'इन भावों का फल क्या होगा' पुस्तक मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है। 'संस्कार' नामक पुस्तक को पढते समय ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके मुख्य पात्र ज्ञानचंद कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं बल्कि आप स्वयं ही हैं। 'विदाई की बेला' को तो आपने स्वयं जिया है। 'सुखी जीवन' कैसा होता है, यह आपको एवं आपके परिवार को देखकर अनुभव होता है। आपकी पुस्तक 'जान रहा हूँ देख रहा हूँ' को देखकर आपकी ज्ञाता-दृष्टा सहज शांत सरल छवि निगाहों के सामने घूम रही है।

आपका पूरा जीवन सिर्फ और सिर्फ जिनशासन की प्रभावना और अपने कल्याण में ही व्यतीत हुआ। निश्चित ही आपने वह कार्य किया है, जो इस भव में करने योग्य है।

आप स्वयं रत्न थे और अपनी कृतियों के रूप में समाज के लिये अनमोल रत्न छोड़ गये हैं। आप एक उच्च कोटि के श्रेष्ठ लेखक, अच्छे कवि और उत्कृष्ट उपन्यासकार थे। आपने शब्दों के सागर में डूबकर ऐसे अनमोल रत्न इस देश और भारतीय संस्कृति को दिये हैं, जिसे पाकर किसी भी जाति सम्प्रदाय का व्यक्ति अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकता है। आप मेरे जीवन की अन्तिम सांस तक पथप्रदर्शक बने रहेंगे। वे शीघ्र ही भव भ्रमण का अन्त कर सिद्धालय में विराजमान हों - ऐसी मंगल भावना है। ●

अध्यात्मरत्नाकर : प्रखर विद्वान पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल

– एम.सी. जैन, पत्रकार, चिकलठाणा औरंगाबाद (महा.)

अध्यात्मरत्नाकर में प्रतिदिन जो गोते खूब लगायेगा।
अध्यात्म का अवलम्बन ले वह गहराई में जायेगा।।
यथाशीघ्र तल तक जाकर अनमोल रतन ले आयेगा।
रत्नत्रय की निधि पाकर अनुपम आनन्द उठायेगा।।

भारतवर्ष के आध्यात्मिक आकाश पर भारिल्ल परिवार के दो तारों का प्रखर, प्रदीप्त, तेजोवलय ऐसा निखरकर उदयमान हुआ, मानो धरती भी अपने आपमें गौरवान्वित हो रही थी। बड़े ब्याईजी साहब जिन्हें बड़े दादा कहा जाता है, वे पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल और अन्य ब्याईजी साहब जिन्हें छोटे दादा कहा जाता है, वे डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल हमारे जैन समाज के गौरवशाली महापुरुष हैं। पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने अपने जीवन में सदैव जयपुर में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के प्रमुख रहते हुए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया; अनेक विद्वानों, पण्डितों व शास्त्रियों को तैयार किया। आप शास्त्री, एम.ए. बी.एड. और न्यायतीर्थ से विभूषित थे। अत्यंत व्यस्त जीवन होते हुए भी आपने अद्भुत साहित्य सेवा की, साहित्य निर्माण किया। णमोकार महामंत्र, जिनपूजन रहस्य, संस्कार, सामान्य श्रावकाचार, बनारसीदास – जीवन और साहित्य आपकी मौलिक रचना है; गागर में सागर, पदार्थ विज्ञान, अहिंसा के पथ पर आपकी उत्तम साहित्य संपदा है। आपकी अनेक पुस्तकें गुजराती, कन्नड, तमिल, मराठी में प्रकाशित हुई हैं। आपने समयसार परखा है। आपके देह परिवर्तन के समाचार से मन बड़ा खिन्न हुआ। एक महान आत्मा हमसे विदा हो गई, सृष्टि का यही नियम है। ●

प्रभावक प्रवाचक : पण्डित रतनचंद भारिल्ल

– डॉ. राजीव प्रचण्डिया, अलीगढ (उ.प्र.)

12 नवम्बर, 2019 मंगलवार, मध्याह्न, जैनपथप्रदर्शक के यशस्वी सम्पादक व श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के प्रभावंत प्राचार्य, विश्रुत प्रवाचक, पण्डितप्रवर न्यायतीर्थ श्री रतनचंद भारिल्ल का समतापूर्वक देहविलय संसार चक्र की यथार्थता को दर्शाते हुए मन में वैराग्य की अलख जगा गया। पण्डितजी ने जिनागम को आत्मसात करते हुए वीतरागता का पथ प्रशस्त किया। उत्कृष्ट व रोचक शैली में प्रामाणिक व वैज्ञानिक पद्धति से समझाना पण्डितजी की अतिरिक्त विशेषता थी।

अध्यात्मरत्नाकर से विभूषित व आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार से सम्मानित, सरल व सहज व्यक्तित्व के धनी पण्डितजी ने निरभिमानी होकर स्वाभिमानपूर्वक जीवन को भोगा ही नहीं, जिया भी, वह भी आत्मबोध के साथ। उनकी आगमपरक दृष्टि, अहिंसात्मक सोच व अपरिग्रहीवृत्ति लोगों को ऊर्जस्वल बनाये रखेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। ●

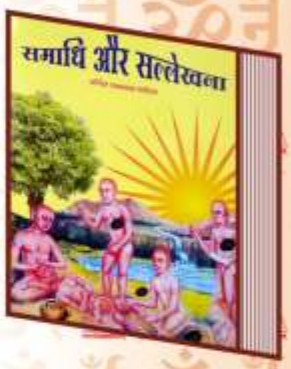

धर्म आचरण से ही मनुष्य जीवन और पशु जीवन में अन्तर देखा जा सकता हैं; अन्यथा आहार, निद्रा, भय व मैथुन तो पशु और मनुष्य में समान ही होते हैं।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

शांत स्वभावी, जिनवाणी के सच्चे सपूत पं. रतनचंद भारिल्ल

– कमलचंद जैन, पिड़ावा

मेरा परिचय पण्डित रतनचंदजी साहब से सर्वप्रथम मई-जून में लगने वाले आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अजमेर (राज.) में जून 1979 में हुआ। उस समय आप वहाँ के प्रमुख अध्यापक थे। आपका शांत स्वभाव, सादगी तथा जिनवाणी के प्रति रुचि व तत्त्वज्ञान के लिये समर्पण देखकर आदरणीय धर्मरत्न पण्डित बाबूभाई मेहता जो कि जयपुर में टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के प्रमुख संस्थापक थे, ने आपश्री को महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर नियुक्ति के लिये आमंत्रित किया और आप अपने जीवन के अंतिम क्षण तक उस पद का निर्वाह करते रहे।

आप इतने शांत स्वभावी हैं कि आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला भारिल्ल भी आपके शांत स्वभाव की प्रशंसा करती है। ऐसे भाग्यशाली बहुत ही कम होते हैं कि जिनकी प्रशंसा उनकी धर्मपत्नियाँ करती हों। सफेद वस्त्रों से आवृत्त सादगी की आप साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। आपसे मिलने पर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता था कि हम इतने बड़े विद्वान से मिल रहे हैं। मुझे तो आप सदैव अपने नजदीक ही बैठाया करते थे। अन्तिम दिनों में भी जब मैं आपसे मिलने जाता था तो आप मुझे अपने नजदीक बिस्तर पर बैठाकर तत्त्वचर्चा करते थे।

बिना प्रतिफल की आशा के सामाजिक प्रतिष्ठा के भाव से परे रहकर आप निरन्तर धर्म एवं समाज की सेवा करते रहे। तटस्थता व मध्यस्थता का भाव आपके अन्तरंग गुण की विशेषता रही। कोई कैसा भी गम्भीर या उत्तेजनात्मक प्रसंग क्यों न हो, वे सदैव उसके प्रति तटस्थ ही रहे, कभी उत्तेजित होते हुए दिखायी नहीं दिये। आपने 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली कहावत चरितार्थ की, जो कि आपकी लेखनी के माध्यम से व्यक्त होती है। आपने एक सफल अनुवादक, सम्पादक एवं सफल लेखक के रूप में जिनवाणी माँ की सेवा की है। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ संस्कार, विदाई की बेला, इन भावों का फल क्या होगा, सुखी जीवन, जिनपूजन रहस्य, णमोकार महामंत्र, पर से कुछ भी संबंध नहीं, सामान्य श्रावकाचार, हरिवंश कथा, शलाका पुरुष आदि अनेक पुस्तकों के माध्यम से जिनवाणी माँ की सेवा कर आप जिनवाणी माँ के सच्चे सपूत बने। शुद्धातम है मेरा नाम मात्र जानना मेरा काम, जैसी अनेक सरस रचनाएँ आप द्वारा रचित हैं।

आदरणीय बड़े दादा जो कि आज हमारे बीच तो नहीं हैं, स्वर्ग में विराजमान हैं, उनकी तरह हमारे जीवन में भी शान्ति, समता, सहजता की प्रेरणा मिलती रहे – इसी भावना के साथ विराम लेता हूँ। ●

आदरणीय मेरे जीजाजी

– प्रकाशचन्द जैन, मैनपुरी

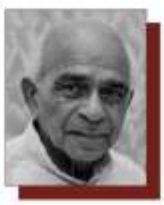

सन् 1964-65 की बात है, दशलक्षण पर्व पर विद्वान आमंत्रित करने का भार मुझे सौंपा गया। स्व. वैद्यराज श्री रामरतनलालजी ने बताया कि अशोकनगर में दो युवा विद्वान बहुत अच्छे वक्ता हैं, उन्हें आमंत्रित किया जाये। हमारे आमंत्रण पर पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल पधारे। उनके प्रवचन से

समाज अत्यन्त प्रभावित हुआ और भविष्य के आमंत्रण पर उनका उत्तर था कि मेरे छोटे भाई मुझसे अच्छे वक्ता हैं, आप उन्हें बुलायें। फलत: आगामी वर्ष में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल पधारे और पश्चात् पण्डित रतनचन्दजी का शुभागमन आगामी पाँच साल तक निरंतर रहा। इस प्रकार मैनपुरी जैन समाज में अध्यात्म की अच्छी रुचि जागृत हुई।

इसी के अनुरूप सन् 1987 में वृहद् पंचकल्याणक महोत्सव आ. पण्डित रतनचन्दजी की कृपा से डॉ. हुकमचन्दजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

महिला समाज में बड़ी बाईजी के नाम से प्रसिद्ध श्रीमती कमला बहनजी के छहढाला प्रवचन से महिला समाज में भी तात्त्विक रुचि जागृत हुई। मेरे पिताश्री तो उनके आत्मीय व्यवहार और उनकी सरलता एवं प्रवचन शैली से मंत्रमुग्ध थे। उन्होंने उन्हें अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार किया और आ. पण्डितजी हमारे जीजाजी हो गये। यह व्यवहार अटूट प्रेमबंधन हो गया। रक्षाबंधन और भाईदूज जैसे त्यौहार निरंतर प्रगाढ़ता में पलते रहे।

जन्म से ही प्रिय बबलू आज के पण्डित शुद्धात्मप्रकाश मुझे मामा के रूप में ही मानते आ रहे हैं। यह पारिवारिक सम्बन्ध अटूट-सा हो गया। इतना ही नहीं आ. डॉ. साहब से भी ऐसा ही सम्बोधन पा रहा हूँ।

आ. पण्डितजी साहब धार्मिक क्षेत्र से परे पारिवारिक क्षेत्र में भी सम्बन्धों को तत्त्व की तराजू पर ही तौलते थे।

अभी अगस्त 2019 के शिविर के अवसर पर उनके दर्शनार्थ गया तो वाणी मूक रहते हुए भी वह मुस्कान बिखेरते रहे। ऐसे धर्म और राग की विचित्रताओं से मैंने उन्हें तटस्थ ही देखा। बोलना बंद था; पर मुस्कान अधरों पर खेलती थी। लौकिक और पारलौकिक व्यवहार को सदा ही मेरे जीजाजी पालते हुए अचानक ही विदा ले गये। 'विदाई की बेला' लिख गये थे न।

'इन भावों का फल क्या होगा?' का प्रिय शुद्धात्मप्रकाश द्वारा मंचन कितनों को जागरुक करता आ रहा है।

शत् शत् वन्दन है, मेरे जीजाजी को। बहन कमला को सम्बल रहेंगी उनकी पावन कृतियाँ और स्मृतियाँ तथा उनका वात्सल्यमयी परिवार। राग और वैराग्य का यह व्यवहार सदैव याद रहेगा। उन्हें शत् शत् नमन। ●

अध्यात्म जगत का एक सितारा टूट गया

– अशोक जैन, जबलपुर

आदरणीय बड़ी बाई और दादाजी से विशेष परिचय 1977 में अभयजी के स्मारक में शास्त्री बनने के समय हो गया था। इनके व बाई के सरल स्वभाव से हर छात्र उनसे घुल-मिलकर ऐसे अपनत्व से बातें करता था जैसे उन्हें यहाँ माता-पिता ही मिल गये हों। कठिन समय में भी धैर्य बनाये रखना, गंभीरता से समस्या का निदान निकालना उनकी व्यक्तिगत विशेषता थी। स्मारक भवन की बगिया के हर पौधे बड़ा करने में उनकी अपनी मेहनत व सूझ-बूझ रही है।

दादाजी अपने शांत स्वभाव के कारण सबके प्रिय थे। उनके स्वाध्याय की गहराईयों को आप उनके द्वारा लिखी पुस्तकों में स्पष्ट दिखाई देती है। सामान्य भाषा में अपनी बात को स्पष्ट कहना, तथ्य, तत्त्व दोनों का समन्वय आपकी कलम की विशेषता है। बालकों की कक्षा, शिविरों के प्रवचन, आज भी मेरे हृदय में समाये हैं। हृदय में उनका स्थान सदा अमिट रहेगा। ●

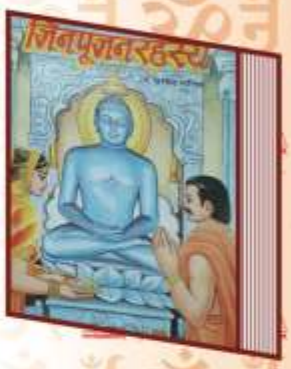

यह मनुष्य जन्म और उसमें भी ऐसे सुन्दर संयोग कोई बार-बार थोड़े ही मिल जाते हैं। न जाने किस जन्म का पुण्य फला होगा जो यह सुअवसर हाथ आ गया हैं। सचमुच यह अंधे के हाथ बटेर आ गई हैं। अतः धर्म का सही स्वरूप समझ कर हमें इसका तो पूरा-पूरा लाभ उठाना ही होगा।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

संस्मरण –

जब पण्डितजी ने मेरे गृहीत मिथ्यात्व की विदाई की घोषणा की

– लालाराम साहू मधुप एडवोकेट, इन्दौर

श्रद्धेय पण्डितजी साहब बड़े दादा के अमृत सान्निध्य का सन् 1972 का एक अविस्मरणीय संस्मरण प्रस्तुत करने का मैं साहस जुटा रहा हूँ।

मध्यप्रदेश के अशोकनगर मुमुक्षु मण्डल की दैनिक तत्त्वगोष्ठी के स्व. पण्डित अमोलकचंदजी बंधु एवं 10-12 भाई-बहनों के साथ मुझे सोनगढ के शिक्षण शिविर में परम श्रद्धेय पण्डित रतनचंदजी साहब बड़े दादा ने देखा तो वे अत्यंत भावविभोर होकर हम सबसे मिले। उनके साथ डॉ. भारिल्ल भी थे। मैंने दोनों के विनयावनत चरण-स्पर्श किये।

बड़े दादा ने मुझे अंक में भरकर हृदय से लगाया। उन्होंने सभी शिविरार्थीजन और अपने स्मारक के विद्यार्थियों को लक्ष्यकर कुछ ऐसे उद्‌गार व्यक्त किये –

''आप लोगों को एक ऐसे विशेष मुमुक्षु भाई से परिचित कराता हूँ, जिन्हें आप शायद ही भूल सकें। ये हैं – लालारामजी साहू मधुप एडवोकेट अशोकनगर (म.प्र.) से। वहाँ ये 1958 के पण्डित हुकमचंद शास्त्री के मिडिल स्कूल के संस्कृत कक्षा के विद्यार्थी थे। उनकी छत्रछाया में ये जैनधर्म से अवगत ही नहीं हुए; बल्कि प्रतिदिन तत्त्वगोष्ठी-प्रवचन में बैठने लगे।

इनका जन्म भले ही वैदिक मतावलम्बी वैष्णव परिवार में एक किराना व्यवसायी के यहाँ हुआ हो; किन्तु विद्यार्थी जीवन की बाल्यावस्था से ही ये तत्त्वजिज्ञासु थे। धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने के लिये ये ''मूर्तिपूजादि न मानने वाले तथा वेद से ऊँचा ज्ञान और स्वामी दयानन्द से ऊँचा कोई गुरु नहीं'' कहने वाली आर्यसमाज संस्था से भी जुड़े, श्रीराम शर्मा आचार्य के गायत्री मिशन की विचारधारा समझने के लिए मथुरा-हरिद्वार आदि केन्द्रों के शिविरों में गए। इतना ही नहीं, स्वघोषित भगवान रजनीश के 'स्वामी सत्यानन्द' रूप में शिष्य बनकर उनके ध्यान-साधना शिविरों में कहाँ-कहाँ नहीं भटके हैं; किन्तु अपने शिक्षागुरु हुकमचंदजी से वैचारिक तार जुड़ने से पूज्य कानजीस्वामी को निकट से देखने, सुनने व समझने के लिए अब ये सोनगढ आये हैं। ये उनसे दोपहर के अवकाश में मिल भी चुके हैं। उनके समक्ष अपनी तात्त्विक प्यास-जिज्ञासा तथा पिछली भटकन का सिलसिला भी वहाँ प्रस्तुत किया है।

फिर बड़े दादा ने आत्मविश्वास के साथ यह घोषणा की कि इनकी भटकन का यह अन्तिम पड़ाव है। इनके आचार-विचार में भारी परिवर्तन आ चुका है। अब साहूजी के भीतर का सच्चा जैनत्व जग गया है। ये पूज्य कानजीस्वामी के बताये गये जैन शासन के सच्चे मोक्षमार्ग पर ही अग्रसर होंगे। पण्डितजी यह आपने कैसे जाना? के उत्तर में उन्होंने गम्भीरता से किन्तु मुस्कुराकर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा कि इनका गृहीत मिथ्यात्व गल चुका है। इसलिए ये स्वामीजी के अमृत सान्निध्य में पधारे हैं, वरना परंपरागत जैन श्रेष्ठी और जैनधर्म के तथागत जानकार भी स्वामीजी के तत्त्वज्ञान की आबोहवा से कतराते हैं।

शायद इन जैसे सत्य खोजियों को परखकर पूज्य आचार्य समन्तभद्रजी ने सर्वाधिक

विख्यात अपने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' शास्त्र में कहा है -

''सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्।
देवादेवं विदुर्भस्म गूढाङ्गारान्तरौजसम्।।28।।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि की महिमा हम अपनी तरफ से नहीं कह रहे हैं, जिनेन्द्र भगवान के द्वादशांगरूप आगम में गणधरदेव ने सम्यग्दृष्टि चाण्डाल को भी देव कहा है, जैसे भस्म से दबे हुए अंगार को अग्नि ही कहते हैं।''

पण्डितजी का मंगल आशीर्वाद फलीभूत :-

आज मैं विचार करता हूँ कि उनका वह मांगलिक आशीर्वचन मेरे जीवन में चरितार्थ हो गया है। मुझे दोनों आदरणीय भारिल्ल बंधुओं ने जैन शासन की प्रभावनार्थ अभी तक देशभर में प्रवचनार्थ भेजा है। जैन पत्र-पत्रिकाओं, स्मारिका ग्रंथों में मेरे कविता-आलेख भी अनवरत प्रकाशित होते रहे हैं। पुस्तकें भी छपी हैं। त्रिकाली की महिमा से भरा हूँ तो सम्यक्त्व की तो गारंटी है। अब मैं पारिवारिक जिम्मेदारियों से अपने आप को कभी का मुक्त मानकर इन्दौर में स्थायीरूप से अवासित हूँ। जिनवाणी के अध्यात्म-ग्रंथों के गंभीर स्वाध्याय, मनन-चिन्तन में स्वस्थ रहकर दत्तचित्त हूँ। मैं उस स्थिति के लिए प्राणापन से संकल्पित हूँ कि -

धनि धन्य हैं जे जीव नर भव पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजिवर सुख लिया।। - छहढाला

उनका भौतिक सान्निध्य न मिलने का अफसोस :- श्रद्धेय बड़े पण्डितजी साहब के प्रेरक और अपीलिंग आशीर्वाद एवं उद्बोधन से हम अवश्य वंचित हुए हैं; किन्तु उनका प्रवचनरत्नाकर सेट एवं उनका सरल-सुबोध संपूर्ण साहित्य हमारा अहर्निश मार्गदर्शन करता रहेगा। उनकी मधुर स्मृतियाँ सदा हमारे साथ रहेंगी।

मैं भावना भाता हूँ कि उनका कालजयी सिद्धस्वभावी आत्मद्रव्य देव-मनुष्य के कुछ ही भव धारणकर पर्याय से भी सिद्धत्व को प्राप्त हो। भव-भव की भटकन से उनका अवश्य नाता टूट चुका है। भेदविज्ञान की कला में वे अवश्य प्रवीण थे। इति... ●

सहज और निश्छल : बड़े दादा

- ब्र. विमला बेन, जयपुर

बड़े दादा ने जयपुर आने के बाद लेखन कार्य प्रारम्भ किया। वे जो भी लिखते थे, उनकी वह रचना गर्भकाल में पण्डित नेमीचंदजी पाटनी, अन्नाजी, सौभाग्यमलजी, मैं और बड़े दादा सभी मिलकर पढते थे और जिसे जो सुझाव देने योग्य लगता था, वो देते भी थे। बड़े दादा बड़े तो थे ही साथ ही उनकी सरलता भी बड़ी महान थी। वे निश्छल भाव से उसे स्वीकार कर लेते थे।

जब बड़े दादा हरिवंश कथा लिख रहे थे, तब हरिवंश पुराण में चौबीसों तीर्थंकरों ने अणुव्रत अंगीकार किये, ये बात उन्हें नहीं जंची। तब उन्होंने मुझे बुलवाया और कहा कि विमलाबेन क्या सभी तीर्थंकर अणुव्रत अंगीकार करते हैं, तब मैंने कहा दादा धवला में तो यह आया है कि महापुरुष तो सीधे महाव्रत ही धारण करते हैं, वे तो वज्रवृषभनाराच संहनन के धारी होते हैं। पहले अणुव्रत धारण करना और उनमें परिपक्व हो जाएँ, फिर महाव्रत धारण

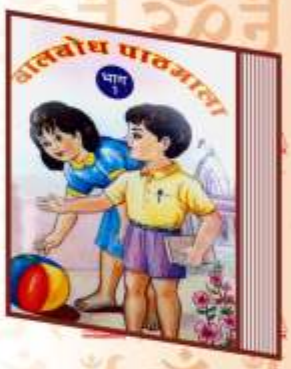

धर्म से भय कैसा? धर्मभीरूता ही तो व्यक्ति को धर्मान्ध बनाती हैं। अतः कोई कुछ भी क्यों न कहे - एक बार तो शान्ति से ऊहापोह करके धर्म एवं पुण्य-पाप की तह तक पहुँचना ही होगा। धर्म के तलस्पर्शी ज्ञान बिना ऊपर-ऊपर से धर्मात्मा बने रहना अपने को अन्धकार में रखना हैं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

करना तो हीन संहननवालों का काम है। तब दादा बोले धवला की बात सटीक है और जँचती भी है। अभी तक तो पूज्य पार्श्वनाथ भगवान की जयमाला में ही पढा है कि ''भये जब अष्टम् वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महासुखकार'' उसी समय दादा ने यह बात भी कही कि उनका जीवन ही अणुव्रतियों जैसा होता है। तब मैंने कहा दादा न्याय-नीति-सदाचार आदि वाला तो उनका जीवन होता ही है और अभक्ष्य भक्षण का तो सवाल ही नहीं है; क्योंकि जब बालक तीर्थंकर मनुष्यलोक का आहार-पानी, वस्त्र-आभूषण कुछ भी ग्रहण नहीं करते और देवोपनीत भोजन व्रतियों के योग्य नहीं होता। यदि होता तो पूज्य श्री चन्द्रगुप्त आदि मुनिराजों को ये पता चला कि ये आहार देवोपनीत था, तब सभी मुनिराजों ने प्रायश्चित किया था। इसप्रकार किसी भी बात को आगम प्रमाण से कहो तो वे उसे तत्काल स्वीकार कर लेते थे।

फिर दादा ने कहा कि भगवान जब गर्भ में आ जाते हैं, तब उनकी माँ को सोलह सपने आते हैं या पहले आते हैं?

तब मैंने कहा कि प्रात:काल में जब माताजी पिताजी को वह स्वप्न सुनाती है, तब पिताजी स्वप्नों के फल सुनाते हैं, तब कहते हैं - आपका पुत्र कर्मठ होगा, तीनलोक का स्वामी होगा इत्यादि बोलते हैं, तो पिताजी की भाषा भविष्यवाणी वाली होती है। इससे यही समझ में आता है कि पहले माता को स्वप्न आते हैं, बाद में बालक गर्भ में आता है।

''सरलता और निष्कपटतामय उनका जीवन था और उन्होंने सदा पठन-पाठन लेखन आदि कार्यों में ही अपना पूरा जीवन लगा दिया। उनकी रचनाएं ही उनका जीवंत जीवन है। ●

विदाई की बेला : घाव पर मरहम का काम करती है

- राजकुमारी जैन, सनावद

''उठो, जागो, सावधान हो जाओ, अपने जीवन का उद्देश्य आत्मकल्याण है उसे पूरा करो'' - जानते हो? यह बात किसने कही? ''विदाई की बेला'' ने।

बात उस समय की थी, जब संयोगों का वियोग हुआ था। उस दु:खद प्रसंग में ''विदाई की बेला'' समाज में वितरित की गई थी। जब मैंने भी यह अनुपम कृति पढी, उस विदाई की जुदाई के मानसिक दु:खों पर इस अनुपम कृति ने घावों पर मल्हम का कार्य किया। उस समय दादाजी से मेरा कोई खास परिचय नहीं था। बस, उनकी कृति ही उनका परिचय थी।

जिसप्रकार जीना एक कला है, उसी प्रकार मरना भी एक कला है। इसमें ही उस चिर विदाई की बेला का चित्रण है। जिस प्रकार वर्षभर पढ़ाई करने पर भी यदि विद्यार्थी परीक्षा में सफल नहीं होता है, तो उसका श्रम सार्थक नहीं माना जाता है। उसी प्रकार जिनका मरण समाधिपूर्वक होता है, उनका ही मानव जीवन सार्थक माना जाता है और अब तक की साधना-आराधना सफल मानी जाती है।

महोत्सव किसी भी प्रकार का क्यों न हो, वह तो हर्ष के माहौल में ही मनाया जाता है। चाहे जन्मोत्सव, विवाहोत्सव हो, धार्मिक-सामाजिक उत्सव हो, सभी महोत्सव प्रसन्नता के प्रतीक हैं; लेकिन मृत्यु को महोत्सव की संज्ञा जभी दी जायेगी, जबकि मृत्यु को महोत्सव बनाने वाला मरणोन्मुख व्यक्ति जीवनभर तत्त्वाभ्यास के बल से मानसिक रूप से अन्तर में

तैयार हो और अपनी तैयारी अन्दर से इतनी हो कि किसी के संबोधन की अपेक्षा नहीं हो, तब कहीं मृत्यु महोत्सव बन पाती है।

बोधी समाधि द्वारा है निज रूप पाने की कला।
सन्यास और समाधि है, जीना सिखाने की कला।।

तत्त्वाभ्यास होने पर समाधि किस प्रकार सहज हो जाती है, इसका वर्णन इस कृति में ''ऋजुता के आलोक पुरुष'' ने बहुत ही सरल व सुबोध बोधगम्य भाषा में दिया है। आत्मा को मुक्ति के मार्ग में लगाने, समाधि-सल्लेखना, मृत्यु का स्वागत करने एवं जीने की कला में उत्साहित करने का सार्मथ्य इस कृति में है।

कहने को बातें बहुत हैं, पर शब्द हुए अब मौन।
सरल सहज है जिंदगी, जिसे समझ सकता है कौन।।

रतन नाम, रतन काम व रत्नत्रय धाम ही जिनका ध्येय था - ऐसे रतनचन्द भारिल्ल (दादाजी) हमारे आध्यात्मिक विचारों के प्रेरणा स्रोत थे। उनकी प्रेरणा लेकर हम हमारा जीवन समाधिमय बनावें, तभी दादाजी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ●

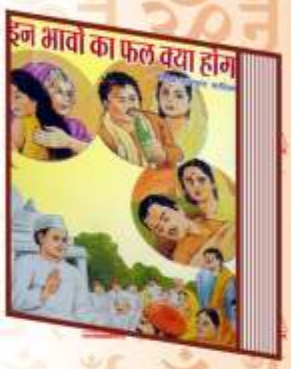

वात्सल्यपुंज बड़े दादा

- डॉ. ममता जैन, शाश्वतधाम, उदयपुर

बात सन् 1990 की है, जब मैं विवाह के बाद पहली बार स्मारक में आई थी, तब मुझे आदरणीय बड़े दादा व बड़ी बाई से मिलाने के लिए ले गये। बड़ी बाई ने दादा को मेरा परिचय दिया - द्रोणगिरि के पास घुवारा एक गाँव है। यह गाँव की लड़की है। तब बड़े दादा ने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक प्रमुदित होकर कहा - अब तो यह स्मारक आ गई है। अब गाँव की लड़की नहीं है, अब तो यह ममता-राज बन गई है और तब से ही बड़े दादा मुझे 'ममता-राज' नाम से संबोधन करते थे।

जब बड़े दादा स्मारक भवन में ही रहते थे, तब मुझे भी सपरिवार दादा के नजदीकी कक्ष में रहने का अवसर मिला। एक बार ग्रीष्मकाल में बड़े दादा का परिवार और मेरा परिवार ही स्मारक में था। चाहे प्रात:काल के 5 बजे हों या रात्रि में शयन करने के पूर्व का समय हो हमने बड़े दादा के साथ समय बिताया है। उनके स्नेह व मार्गदर्शन को पाया है। सर्वज्ञ के साथ मेरे बेटे अगम को भी बड़े दादा की गोदी में अठखेलियाँ करने का मौका मिला है।

बड़े दादा व बड़ी बाई का द्रोणगिरि सिद्धायतन में आगमन हुआ। मुझे भरपूर सेवा करने का अवसर मिला। इसीतरह ध्रुवधाम बांसवाड़ा में शास्त्री महाविद्यालय का शुभारंभ हुआ। तब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में, दूसरे दीक्षांत समारोह में बड़े दादा व बड़ी बाई आए।

उदयपुर में जैनदर्शन कन्या महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर आपका महाविद्यालय के प्रति अनुराग और तत्त्वरुचि को लेकर आप बड़ी बाई के साथ उपस्थित हुए आपका शारीरिक स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर भी आपने अपना स्नेह व आशीर्वाद उपस्थित होकर दिया और कहा - 'धर्म को आगे रखो, दिन दूरी रात चौगुनी वृद्धि करो' यही मेरा आशीर्वाद है।

अज्ञानी होना उतना हानिकारक नहीं है, जितना हानिकारक है अपने अज्ञान का ज्ञान न होना, अपने अज्ञान को स्वीकार न करना।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

आपने जो साहित्य लेखन कर बालकों, किशोरों और युवा वर्ग के लिए उपहार दिया है, जो आपने सरल भाषा शैली और कथानक की पद्धति में तत्त्वज्ञान को परोसा है, उसके लिए जैन साहित्य व जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा।

हमारी कामना है कि हम भी आप जैसी सरलता के साथ अपने कार्य में संलग्न रह सकें। आप शीघ्र ही तत्त्वज्ञान से प्राप्त संस्कारों के साथ पंचम गति को प्राप्त करें। ●

अध्यात्म के पुरोधा पुरुष

– महेन्द्र चौधरी (अध्यक्ष-कोहेफिजा जैन समाज, भोपाल)

परम श्रद्धेय बड़े दादा अध्यात्म के पुरोधा पुरुष थे। आपने विनम्र स्वभाव, सरलता, समरसता एवं सहजता के गुणों की वजह से एक छोटे से गाँव से निकलकर जैन जगत के अमूल्य रत्न बन गये। जैसा कि उनका नाम था उसी को सार्थक करने में नि:स्वार्थ भाव से धर्म और मुमुक्षु समाज के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया।

अनेक शलाकापुरुषों का जीवन चरित्र अपनी लेखनी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। जीवन के यौवनकाल में आर्थिक तंगी के बावजूद कभी धन का मोह उन्हें विचलित नहीं कर सका। ज्ञान और आचरण की दौलत को ही जीवनभर संग्रहीत करते रहे।

बड़े दादा में सर्वज्ञता, वस्तु स्वातंत्र्य, क्रमबद्धपर्याय के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उनके गुणों में एक गुण यह भी था कि उन्होंने न किसी को प्रतिद्वन्दी माना और अपने जीवनकाल में न किसी से द्वेष किया।

परिणामों में शीतलता और सुकून और जीवन में निर्विकल्प रहने की जीवनभर कोशिश की और उसमें कामयाबी हासिल की।

लेखक के रूप में दादा ने सभी विधाओं पर अपनी कलम चलायी। नाटक, निबंध, उपन्यास तथा मूलआगम ग्रंथों का अनुवादकर बुद्धिजीवियों तथा साधारण जैन श्रावक को परोसा।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अध्यात्म का सेवन और युक्ति का अवलम्बन और फिर स्वसंवेदन कर जीवन को सफल बनाया। तत्त्वज्ञान से लबालब विद्वान का जीवन कितना सौम्य एवं सरल होता है, वह दादा को देखकर अनुमान लगाया जा सकता था। यश की तमन्ना से दूर जीवनभर तत्त्वप्रचार को ही अपना लक्ष्य बनाकर जीवन जीया। जैसा दादा का सरल स्वभाव था, जीवनभर वैसे ही बने रहे। जब भी उनसे मिला, स्नेह की बौछार मेरे ऊपर करते रहे। विरले ही व्यक्ति बिना याचना के जीवन जीते हैं। ना कोई आगे बढने की तमन्ना और ना ही किसी से प्रतिस्पर्धा सादा जीवन उच्च विचार ही दादा के जीवन का लक्ष्य था।

मुरैना विद्यालय से शुरु हुई जीवन यात्रा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय को शिखर पर पहुँचाने पर समाप्त हुई।

दादा को अपने जीवनकाल में अनेक सम्मान मिले, सर्वोच्च सम्मान के रूप में आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार मिला; किन्तु उनके सहज परिणामों में कोई परिवर्तन इन पुरस्कारों या सम्मान समारोहों से नहीं हुआ। ●

पण्डित रतनचंदजी चारों अनुयोगों का सार छोड़ गये हैं

– भानु कुमार जैन, कोटा

शिक्षण प्रशिक्षण शिविर हो, अन्य शिविर हो, दशलक्षण पर्व व अन्य आदि कई अवसरों पर आपके द्वारा बार-बार चेताया गया है कि आप और हमने पूर्व में कैसे उत्कृष्ट भाव किये होंगे, तब कहीं जाकर इस हुण्डावसर्पिणी के पंचमकाल में भी एक शुद्ध निर्ग्रन्थ दिगम्बर धर्म और उसमें भी ''आत्मतत्त्व'' की बात सुनने को मिली।

जगत में और भी योनियों के जीव हैं, विभिन्न धर्मावलम्बी हैं, जैन में भी बहुत से कुदेवों को पूजते हैं। आप और हम सबके पुण्य से पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी हुए और हमें एक ऐसी अमूल्य निधि चैतन्य तत्त्व, भगवान आत्मा को चारों अनुयोगों के माध्यम से समझाया और निश्चय-व्यवहार, गुणस्थान, मार्गणास्थान, अलिंगग्रहण के बोल, आत्मा की 47 शक्तियाँ, 47 नय, प्रमाण, नय, निक्षेप, जिनकी चर्चा सर्वार्थसिद्धि के देव करते होंगे, हमें महान भाग्य से सुनने को/समझने को मिली है। इस जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है अगर धर्मसाधना नहीं की तो पता नहीं कौनसी पर्याय में जन्म लेना पड़ेगा। माता-पिता भी पुत्र को इतना धर्म के बारे में नहीं कहते हैं। ऐसे पण्डित साहब हमारे लिए उपकारी थे। पण्डितजी साहब की कृति 'यदि चूक गए तो' में बताया कि इस दुर्लभ पुण्य से मानव जन्म पाया और विषयान्ध होकर खो दिया तो समुद्र में चिन्तामणि रत्न फेंकने जैसी मूर्खता होगी।

पण्डितजी साहब की कृति 'पर से कुछ भी संबंध नहीं', 'इन भावों का फल क्या होगा?', 'ऐसे क्या पाप किए', 'नींव का पत्थर' आदि 28-30 कृतियों का स्वाध्याय करके मनन करने योग्य है। शिविरों में निमित्त-उपादान, षट्कारक की कक्षा में ठीक वैसा ही निरूपण करते थे, जैसा आचार्य भगवन्तों व केवलज्ञानियों ने किया है। जिसप्रकार हम सभी टोडरमलजी, जयचन्दजी छाबड़ा, बनारसीदासजी आदि विद्वानों के गीत गाते हैं, उसी प्रकार आज से 250 वर्ष बाद इनके गीत गाए जाएंगे और कहा जायेगा कि अनन्त सुखी होने के लिए धर्म पिपासु जीवों के लिए पण्डित रतनचंदजी चारों अनुयोगों का सार छोड़ गए हैं। ●

अपने बारे में, आत्मा-परमात्मा के बारे में, संसार व भोगों की क्षणभंगुरता एवं संसार की असारता के बारे में विचार करने से माथा खराब नहीं होता; बल्कि ऐसे विचार से अनादिकाल से खराब हुआ माथा ठीक होता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

उनका जीवन एक उदाहरण था

– अभयकरण सेठिया, सरदारशहर

जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान परम श्रद्धेय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का सम्पूर्ण जीवन स्व की खोज में निमग्न रहा। उनका जीवन एक उदाहरण था। अपनी रचनाधर्मिता से उन्होंने अनेक जीवों के आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। शांत, मृदुभाषी, आत्मार्थी, सौम्य, दृढ श्रद्धानी ऐसे जीव विरल होते हैं। उनका पुण्य विलक्षण था। उनसे मिलकर बात करके हमेशा असीम संतुष्टि, सुख शांति मिलती थी। हमने एक रत्न को खो दिया है। उनका अवसान न केवल जैन जगत की अपूरणीय क्षति है, अपितु मेरी व्यक्तिगत क्षति भी है। ●

बड़े दादा का वियोग, अपूरणीय क्षति

– जम्बूकुमार पाटोदी, रतलाम

मुमुक्षु समाज के गौरव, आगम/अध्यात्म के अध्येता सरल परिणामी, गुरुदेव के प्रवचनों को जिन्होंने न केवल आत्मसात किया, बल्कि अपने जीवन में जीवंत किया।

उन्होंने ग्रंथाधिराज समयसारजी, समाधितंत्र, भक्तामर स्तोत्र आदि पर हुए गुरुदेवश्री के प्रवचनों का भाषांतर कर हिन्दी भाषी स्वाध्यायियों पर उपकार किया। कई स्वतंत्र रचनाओं/कथानकों, उपान्यास तथा लेखों के द्वारा अपनी मौलिक रचनाओं के माध्यम से अध्यात्म के जटिल विषयों को सरल, सुगम एवं बोधगम्य बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया। पाठशाला के बालकों के लिये बालबोध पाठमाला जैसी सरल पुस्तक लेखन से उनकी विद्वत्ता झलकती है। अनेक कृतियों का कई भाषाओं में प्रकाशन उनके प्रतिभाशाली होने का प्रमाण है।

जीवन का अधिकतर भाग पठन-पाठन, शिक्षण-प्रशिक्षण में ही व्यतीत किया – ऐसे शिक्षा-शास्त्री, सदाचार प्रेरक सशक्त कथानकों के रचनाकार, साहित्यकार, तत्त्ववेत्ता, वयोवृद्ध प्रवचनकार, तात्त्विक सिद्धांतों के ज्ञाता जैसे अनेक गुणों से युक्त आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जिन्हें बड़े दादा के नाम से देश-विदेश में जाना पहचाना जाता था और समादर प्राप्त था, उनके चिर-वियोग के समाचार से स्थानीय समाज में शोक की लहर व्याप्त हो गयी। ●

शांत-शीतल स्वभाव के धनी

– श्रीमती सुशीलाबाई धर्मपत्नि स्व. जवाहरलाल बड़कुल, विदिशा

आदरणीय बड़े दादा श्री रतनचन्दजी भारिल्ल सहजता और सरलता की प्रतिमूर्ति, हमारे विदिशा मुमुक्षु मण्डल के नींव के पत्थर, जयपुर में रहते हुए भी विदिशा वासियों के दिल में रहने वाले, शांत-शीतल स्वभाव के धनी श्री बड़े दादाजी के सान्निध्य में विदिशा जैन समाज को तीन प्रशिक्षण शिविरों का लाभ प्राप्त हुआ। दादाजी की प्रेरणा से श्री सीमंधर आगम जिनालय का शिलान्यास पूज्य गुरुदेवश्री के हाथों से संपन्न हुआ। दादाजी की प्रेरणा से ही पण्डित बाबूभाई फतेपुर के सान्निध्य में ट्रेन यात्रा सम्पन्न हुई। सारे विदिशा जैन समाज में अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले दादा श्री रतनचंदजी भारिल्ल हमारे घर के पारिवारिक सदस्य की भांति हमारे घर में ही रहे हैं। संस्मरण तो बहुत अधिक हैं; परन्तु हर उस बात को कहा और लिखना संगत नहीं होता है, अत: हमारे परिवार की ओर से तथा समस्त विदिशा समाज की ओर से आदरणीय दादा श्री रतनचन्दजी भारिल्ल को भावभीनी श्रद्धांजलि तथा उनके पूरे परिवार को इस अथाह दु:ख को उनके स्वभाव के अनुरूप सहजता, सरलता, आत्मकल्याण की भावना से जीवन के सत्य को आत्मसात करें, इस भावना के साथ विराम और नमन। ●

आत्मा की उपलब्धि के लिए तो केवल आगम, युक्ति और स्वानुभव ही असली प्रयोगशाला है, जिसके स्वानुभव में और प्रतीति में आ जावे तो ठीक, अन्यथा उसके प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। **– पण्डित रतनचंद भारिल्ल**

सहज पुरुष की सहजता!!!

– प्रीति-संजय जैन, बापूनगर, जयपुर

सहजता! आखिर इतनी सहजता कैसे संभव है! संभव है, इसलिए तो यह सहजता दिवस है। सहजता दिवस के सहज पुरुष की सहजता का जीवंत उदाहरण आप सभी के साथ साझा करूँगी। स्मारक में अक्टूबर माह में लगने वाले शिविर 2012 की बात है, सर्वोदय अहिंसा अभियान की गतिविधियों तहत राजस्थान यूनिवर्सिटी के मुख्य द्वार पर हस्ताक्षर अभियान का आयोजन किया गया था, जिसका शुभारंभ आदरणीय बड़े दादा के करकमलों से होना था। शिविर का प्रातःकालीन कार्यक्रम सम्पन्न होने के पश्चात् दादा को वहाँ पहुँचना था। गाड़ी समय पर उपलब्ध नहीं हो पाई थी। चूँकि मैं व्यवस्था में लगी हुई थी और वहाँ से आना-जाना चल रहा था। दादा स्मारक के बाहर गेट पर तैयार खड़े थे। मैं वहाँ पहुँची।

बड़ी उम्मीद से मैंने दादा से पूछा - दादा! आप मेरे साथ चलिए न! सहज पुरुष के शब्द... हाँ, क्या दिक्कत है! मैं मन में खुश होते हुए, डरते हुए रोमांच के साथ स्कूटी चला रही थी। दादा बड़े आराम से बैठे और कुछ मिनटों का रास्ता जीवनभर की सहजता की छाप छोड़ गया।

जितना ऊँचा कद, उससे भी ऊँची उनकी सहजता। वे हमेशा ही हमारे जीवन में अपने तत्त्वज्ञान एवं सहजता से जीवंत रहेंगे। ऐसे आदरणीय दादा को शत-शत वंदन। ●

पुस्तकों से ही नहीं, जीवन से भी सिखाया है

– ऋचा जैन, सियटल (अमेरिका)

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपक और मार्गदर्शक भी है। नाना साहब की 'संस्कार' कृति यथा नाम तथा गुण के समान है। वर्तमान पीढी के छूटते संस्कारों को संजोये रखने हेतु आपने सरल शब्दों में यह पुस्तक लिखी है, जो कि मील का पत्थर साबित होती है। सदाचार और आनंदमय जीवन बनाने की प्रेरणा देती यह मौलिक कथानक है।

आपने सादा जीवन और उच्च विचार की शिक्षा पुस्तकों से ही नहीं, अपितु अपने जीवन से भी सिखायी है। ''सरल-सहज थी जिन्दगी जिसे समझ सके सब कोई।'' ●

जिन्होंने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये हैं, वे सब आत्माएँ जिनेन्द्र हैं। ऐसे जिनेन्द्र के उपासक वस्तुतः व्यक्ति के नहीं, बल्कि गुणों के उपासक हैं। – पण्डित रतनचंद भारिल्ल

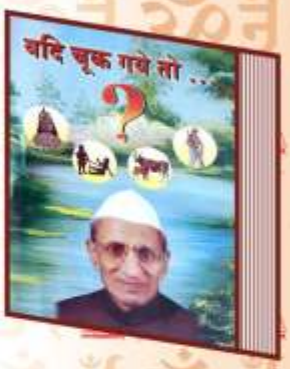

यदि तुम भी अपने में होने वाले भावों के बारे में विचार करोगे और उनसे होने वाले भावों के बारे में चिन्तन करोगे तो तुम्हारे जीवन में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकता है और अनोखे आनन्द की झलक आ सकती है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सरल रेखा से सरल थे

– बाबूलाल बांझल, गुना

सरल रेखा से सरल थे....
सहज ही सबको सुलभ थे, खोजना उनको नहीं था,
सरलतम सबसे सरल, मान कुछ उनको नहीं था,
स्वयं करते काम अपना, विश्वास अपने पर उन्हें था,
तीन रत्नों में बड़े थे, बड़प्पन फिर भी नहीं था,
सहज संतोषी स्वयं थे, वांछित कुछ भी नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था,

लेखनी अनुपम सरलतम, सत्य के पथ पर चली थी,
तत्त्व की सीधी पकड़ थी, तीन रत्नों से जड़ी थी,
'सुखी जीवन' को बनाने, 'संस्कारों' की कड़ी थी,
मान लो 'बेला विदाई', सामने आकर खड़ी थी,
दान देते ज्ञान का वह, मान कुछ होता नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था,

भाव प्रतिपल हो रहे जो, सोच लो क्या फल मिलेगा,
'जिनपूजन रहस्य' से, भाव भक्ति का जगेगा,
'महामंत्र णमोकार' को, जाप में लेना पड़ेगा,
'सामान्य श्रावकाचार' से, साधना का पथ मिलेगा,
स्वाभिमानी थे बड़े वह, अभिमान तो कुछ भी नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था,

एकत्व का अनुपम कथन, 'पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं',
समयसार का मर्म विज्ञजन, कहते हैं शिवरूप सही,
सभी पाठमालाएं बालबोधिनी सरल सही,
कवि बनारसीदास, जन-जन को अवबोधमयी,
कर लिया सब काम अपना, शेष कुछ करना नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था,

कहकर 'कथा हरिवंश' की, कृति अनुपम ही रची थी,
रचना 'शलाका पुरुष' की, देखने हमको मिली थी,
कारकों का ज्ञान करके, द्रव्य की दृष्टि बनी थी,
क्षत्रचूड़ामणि सभी को, ज्ञान की गंगा बनी थी,
शरद जल से आप निर्मल, कलुष कुछ दिखता नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था,

पंचास्तिकाय का विवेचन, बोधि द्रव्यों की कराये,
विश्व की पूरी व्यवस्था, दृष्टिगत हमको कराये,
संपादित अनेकों ग्रंथ, शोधकर हमको दिये थे,
अनुवाद रत्नाकर सभी, भाव से पूरे भरे थे,
आप जैसे आप ही थे, उपमान कुछ दिखता नहीं था,
सरल रेखा से सरल थे, बांकपन बिलकुल नहीं था।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के साथ दोनों दादा

2005 में आचार्यअमृतचन्द्र पुरस्कार समारोह

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर जयपुर

80 वें जन्मदिवस के अवसर पर
बापूनगर जैन समाज द्वारा दादा का अभिनन्दन

जीवन के विविध रंग

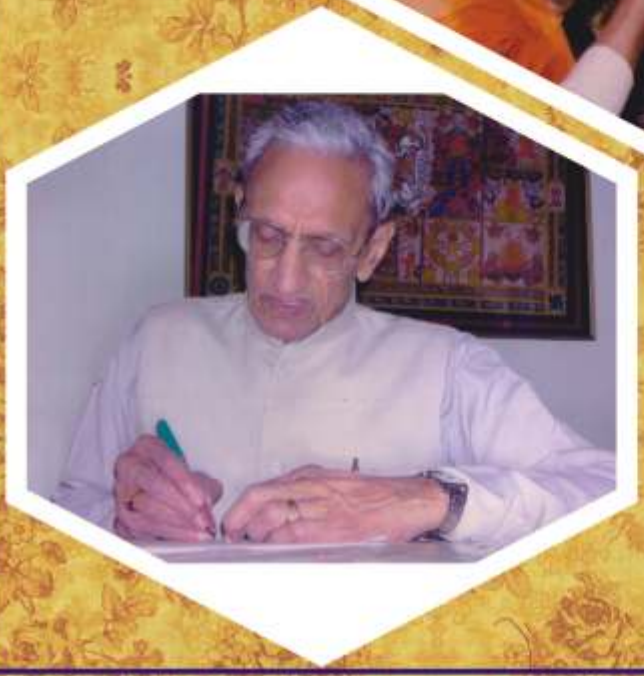

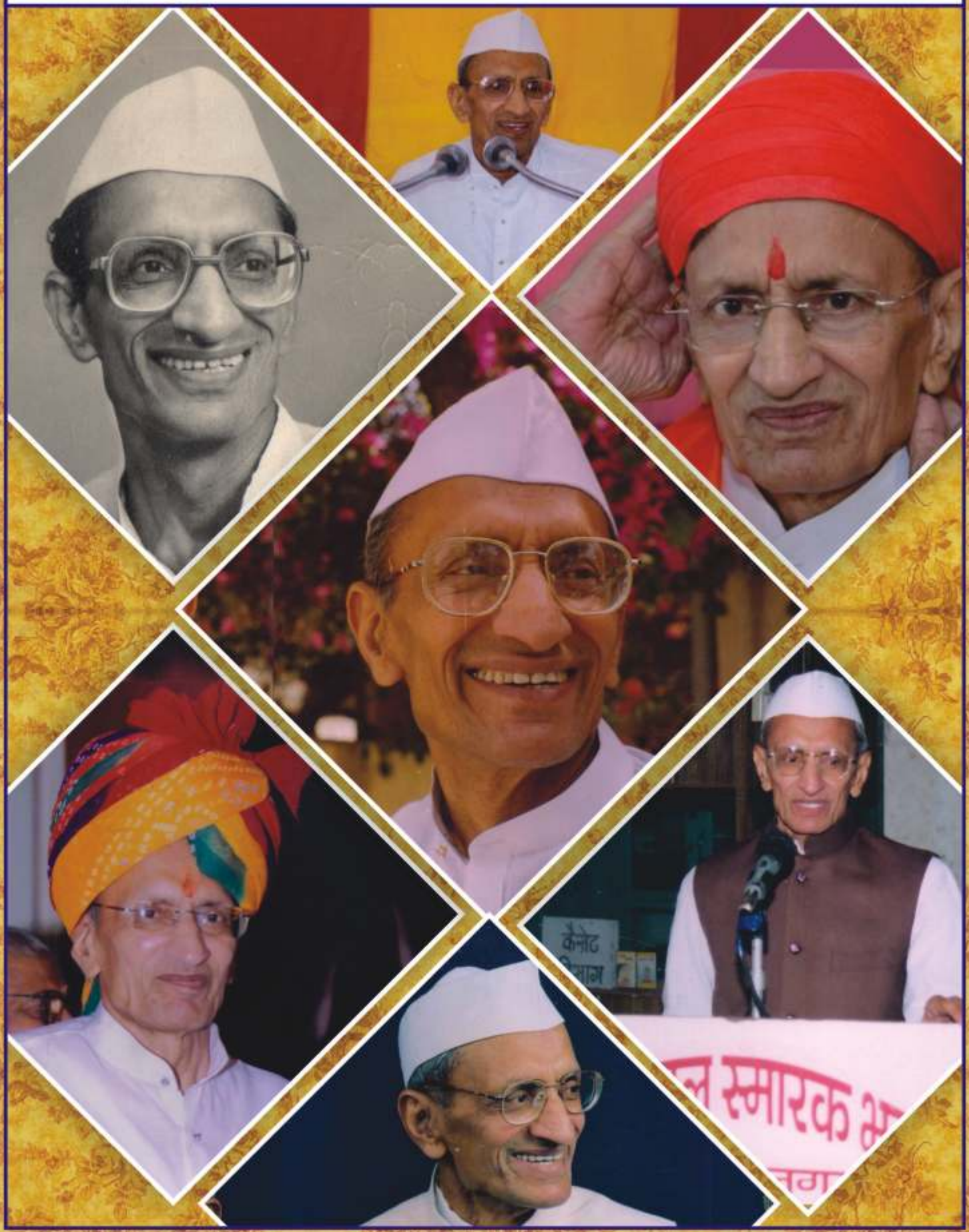
स्मारक

परिवारजनों के साथ

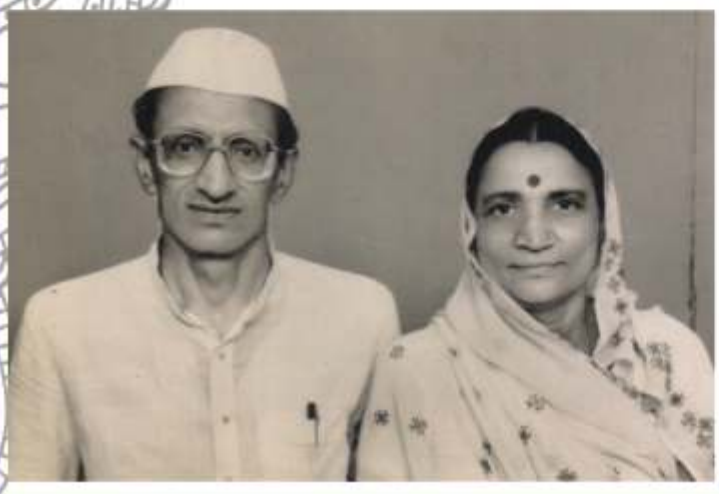

अध्यात्मरत्नाकर का अभिनंदन समारोह 16 फरवरी 2005

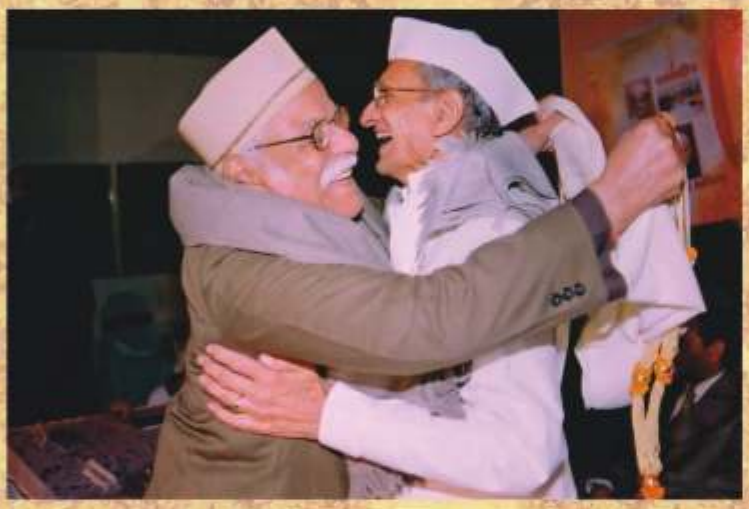

बड़े दादा एवं अन्य गुरुजनों के सानिध्य में महाविद्यालय का प्रथम बैच

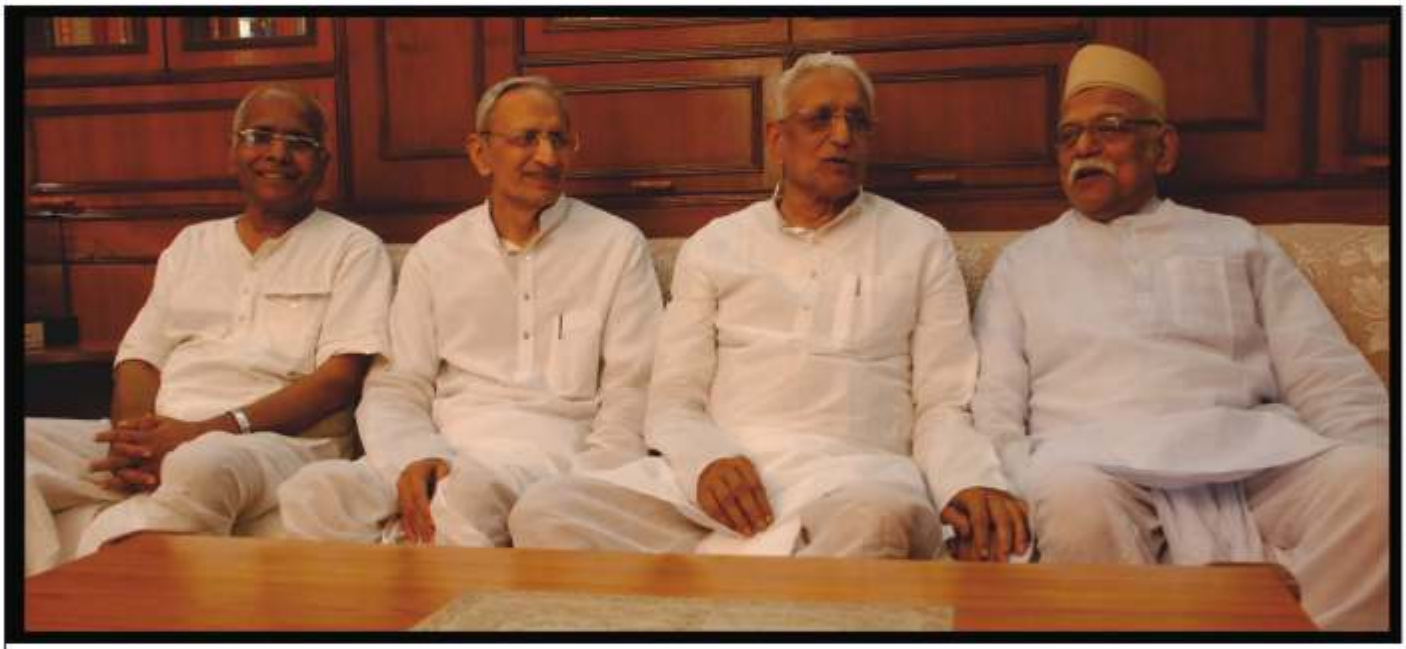

~ कुछ पल अपनों के साथ ~

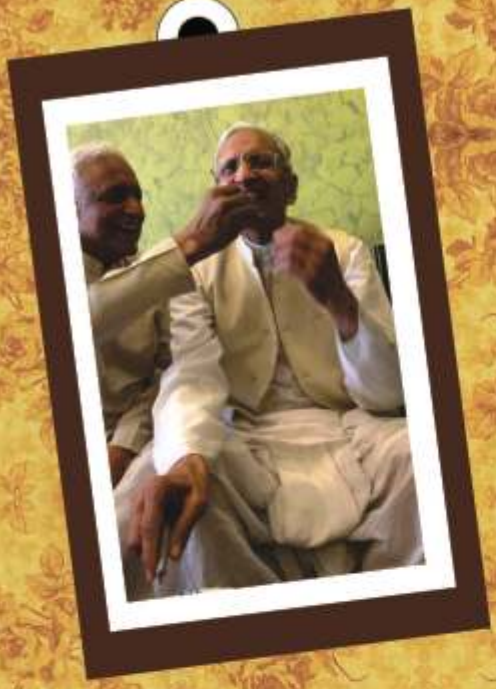

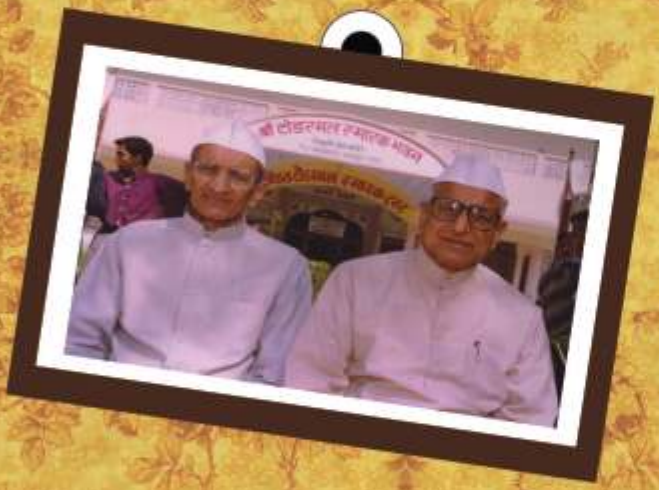

भरत- बाहुबली की जोड़ी

शिष्य समुदाय की दृष्टि में

सहजता की मूर्ति अध्यात्मरत्नाकर पं. रतनचंदजी भारिल्ल

– जतीशचंद शास्त्री, सनावद

अध्यात्मयुग सृष्टा स्वानुभूति से विभूषित आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की सभा के नवरत्नों में अन्तर्राष्ट्रीय तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर भी हैं। आपके ही बड़े भ्राता जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल थे एवं लघु भ्राता डॉ. उत्तमचंदजी भारिल्ल थे। पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल की देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अगाध भक्ति थी, उसके फलस्वरूप उन्हें अपने जीवनकाल में सोनगढ के संत आध्यात्मिक क्रांति के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री का सत्समागम प्राप्त हुआ था, जिससे संसारी अवस्था में यहाँ तक आमूलचूल परिवर्तन हुआ कि विदिशा की सरकारी नौकरी का परित्यागकर जीवन को अध्यात्ममय बना लिया। इसके प्रताप से ही आपके प्रवचनों, ओजस्वी वाणी और लेखनी से चारों अनुयोग सहित लगभग 50 जैन साहित्य के प्रकाशन में अध्यात्म का अमृत सरल एवं सुबोध शैली में बरस रहा है। इसलिये आप परमार्थ रूप से अध्यात्मरत्नाकर हैं।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की वीतराग मंगल प्रभावना में सम्माननीय श्री पूरनचंदजी गोदिका ने जयपुर में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की स्थापना की। इसी शृंखला में सोनगढ के परमागम मंदिर के पंचकल्याणक के पावन प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य में देश-विदेश की संपूर्ण मुमुक्षु समाज ने अन्तर्राष्ट्रीय उत्कृष्ट संस्था श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की भी स्थापना हुई, जिसने प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा एवं जीवंततीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा करने को अपना मुख्य उद्देश्य बनाया। इस उद्देश्य को लेकर स्मारक ट्रस्ट की छत्रछाया, आदरणीय डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के नेतृत्व तथा पण्डित रतनचंदजी के यशस्वी प्राचार्यत्व में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की स्थापना हुई, जिसके माध्यम से वर्तमान में चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान एवं विदुषियाँ लगभग 800 की संख्या में तैयार होकर देश-विदेश की गणधर की गद्दी पर विराजित होकर वीतराग धर्म की प्रभावना करके भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगा रहे हैं। वर्तमान में सभी कलम के डॉक्टर तथा शास्त्री विद्वान आदरणीय डॉ. साहब तथा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के ही शिष्यगण हैं। उन शिष्यों में भी मैं अपने आपको उनका शिष्य समझकर गौरव का अनुभव करता रहता हूँ। यद्यपि मेरा जीवन अध्यात्ममय बनाने में पूज्य गुरुदेवश्री का ही महान उपकार है। मुझ पर ही क्यों, देश-विदेश के 20 लाख मुमुक्षु भाई-बहिनों का जीवन भी अध्यात्ममय बना है तो वह सब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रताप से ही बना है। इसलिये हम सबको प्रथम पूज्य गुरुदेवश्री का ही शिष्यगण बनने का विशेष-विशेष गौरव होना चाहिये।

मैं सोनगढ में पूज्य गुरुदेवश्री की अमृतमयी वाणी का लाभ लेने के लिये निरंतर 20 वर्ष आदरणीय रामजीभाई की सेवा करता हुआ रहा। तत्पश्चात् सम्माननीय बाबूभाईजी मेहता फतेहपुर ने कहा कि जयपुर में सिद्धांत विद्यालय खोला गया है; आप वहाँ पर अध्ययन करने जाइये। तब मैंने सोनगढ के अनेक भाई-बहिनों से पूछा कि मैं शास्त्री का अध्ययन करने

अपने विचित्र पाप परिणामों के फल से अनजान व्यक्ति ही उन पाप परिणामों में निरन्तर रमा रहता हैं और जिसे यह भान हो जाता हैं कि वे परिणाम काले नाग जैसे जहरीले हैं तो फिर वह उनसे बचने का उपाय सोचता हैं।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

जयपुर जाऊँ कि नहीं जाऊँ? कुछ भाई-बहिनों ने मुझे अनेक प्रकार की उलाहना देते हुए कहा कि पूज्य गुरुदेवश्री की भवनाशिनी वाणी का श्रवण छोड़कर ज्ञान का क्षयोपशम बढाने जा रहे हो तो भव हार जाओगे। मैं पूज्य गुरुदेवश्री के पास गया और विनम्र भाव से पूछा कि मैं जयपुर शास्त्री का पाठ पढने जाऊँ कि नहीं जाऊँ? तब पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा कि अवश्य जाओ। वहाँ पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल हैं, उनके सान्निध्य में प्राकृत एवं संस्कृत का अध्ययन करेंगे तो आप आचार्यों की गाथाएं एवं टीकाएं संस्कृत भाषा में रची होने से उनसे सीधी बातें करने लगेंगे अर्थात् आप गाथा एवं टीका का सीधा मर्म समझकर श्रोताओं को अमृतपान करा सकेंगे।

मैं पूज्य गुरुदेवश्री ज्ञानी गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके गुलाबी नगरी जयपुर विद्यालय में शास्त्री का अध्ययन करने आ गया। इस विद्यालय के प्रथम सत्र का प्रथम शिष्य बनकर शिक्षा ग्रहण करने में मुझे इन दोनों मनीषी दादाओं का विशाल प्रेम, वात्सल्य एवं भरपूर आशीर्वाद मिला, जिससे मैं अपनी शिक्षा संबंधी उद्देश्य को सरलता एवं सहजतापूर्वक संपन्न कर सका। इसके पश्चात् 7 वर्ष तक आदरणीय डॉ. साहब द्वारा देश-विदेश में की जा रही वीतराग धर्म प्रभावना में भी सहयोग करने का अवसर मिला। इसप्रकार इन 12 वर्षों में मैंने किसी भी दिन और किसी भी समय बड़े दादा को क्रोधित, अपशब्द एवं ऊँची आवाज में बोलते नहीं देखा। इसलिये वे मेरी दृष्टि में निस्पृह जीवन, उज्ज्वल चरित्र, सात्त्विक जीवन तथा सरल व्यक्तित्व के धनी होने से सहजता की मूर्ति थे।

वे संपूर्ण मुमुक्षु समाज और विद्वानों के आदर्श भी थे। जिसप्रकार चार पीढियों से पण्डित फूलचंदजी झांझरी उज्जैन परिवार का प्रत्येक सदस्य पुत्र-पुत्रियाँ, पौत्र-पौत्रियाँ एवं पुत्र वधुएं - सब तत्त्वरसिक होने से प्रवचनकार, गीतकार, नाटककार इत्यादि गुणों से अलंकृत हैं, उसी प्रकार आदरणीय बड़े दादा ने अपनी धर्मपत्नी कमलाजी, पुत्र शुद्धात्मप्रकाश, पुत्रवधु, पौत्र सर्वज्ञ, पौत्री सर्वदर्शी - इन सबको अपने अध्यात्ममय जीवन से तत्त्वरसिक बनाकर पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल प्रभावना में महान योगदान दिया है; जो कि संपूर्ण मुमुक्षु समाज के लिये अनुकरणीय है। सोनगढ में आदरणीय रामजीभाई (बापूजी), पण्डित खीमचंदजी मेरी मूककेवली के रूप में पहचान कराते थे; परन्तु जब मैंने जयपुर में शास्त्री एवं धार्मिक शिक्षा ग्रहण की, तब मेरी तीक्ष्ण बुद्धि, अनुशासन प्रियता व नेतृत्व शैली को देखकर आदरणीय छोटे दादा ने मुझे जैन शासन का उत्कृष्ट अनुष्ठान पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रतिष्ठाचार्यत्व करने हेतु प्रेरित किया। मैंने अपना प्रतिष्ठाचार्यत्व ग्वालियर के पंचकल्याणक से शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल के निर्देशन में विषम परिस्थितियों में प्रारम्भ किया। तभी से धर्म प्रभावना का कारवां बढता ही गया, जिसके अन्तर्गत वेदी प्रतिष्ठा, वृहद् सिद्धचक्र विधान, शिक्षण शिविर इत्यादि मेरे ही निर्देशन में सफलतापूर्वक संपन्न होते रहे और आज भी पूज्य गुरुदेवश्री, बाबूभाई, डॉ.साहब एवं बड़े दादा ने जिनशासन की जो पताका मेरे हाथ में थमाई है, वह आज भी विद्वानों, विदुषियों व संस्थाओं के माध्यम से अपनी शक्ति अनुसार अनवरतरूप से फहराने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के जीवन को हम सब आदर्श बनाकर, उनके द्वारा रचित जैन साहित्य 'विदाई की बेला', 'इन भावों का फल क्या होगा?' इत्यादि का स्वाध्याय करके अपने जीवन को सात्त्विक, सरल, सहज, सौम्य एवं तत्त्वरसिक बनाएंगे तभी उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ॐ शान्ति...शान्ति...शान्ति। ●

आदरणीय बड़े दादा...

– पण्डित अभयकुमार शास्त्री, देवलाली

सहज सरल वात्सल्यमय था उनका व्यक्तित्व।
जग प्रसिद्ध लघु भ्रात थे, थे वे भ्राता ज्येष्ठ।।
थे वे भ्राता ज्येष्ठ सदा संग में ही रहते।
उनकी वाणी रीति-नीति को ही आचरते।।
दुनिया के दादा कहलाने में क्या अचरज।
लघु समक्ष भी लघुवत् रहना सचमुच अद्भुत।।

'बड़े दादा' सम्बोधन मुमुक्षु समाज के लिए सहज सरल है। हँसमुख व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करनेवाले पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का पर्यायवाची बन गया है।

मेरे जीवन में 49 वर्ष उनके परिचय में और 21 वर्ष उनके निकटतम पार्श्ववर्ती होकर बीते। विपुल मात्रा में संचित संस्मरणों का सार मात्र यही है कि सुखी जीवन जीने की कला यही है कि 'धुन रे धुनिया अपनी धुन, जाकी धुन में पाप न पुन्न'।

पूज्य गुरुदेव के द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान से प्राणवन्त होकर उन्होंने स्वयं उसका रसपान किया और उसे सरल सुबोध भाषा में कथा-उपन्यास की शैली में समाज को भी परोसा।

अन्य सज्जनोत्तम विशेषताओं के साथ छोटे दादा के प्रति न केवल भ्रात-सुलभ-वात्सल्य अपितु दादा की तीक्ष्ण बुद्धि, तलस्पर्शी विवेचना और सूझ-बूझ के कायल होकर उनके प्रति समर्पित रहे। छोटे दादा भी जीवनभर उनके सुरक्षा कवच बनकर रहे। सामाजिक संघर्षमय झंझावातों को स्वयं झेलकर 'छोटे' ने 'बड़े' को चिन्तामुक्त होकर जिनवाणी सेवा करने का सुरक्षित वातावरण प्रदान किया और बड़े दादा ने उसका भरपूर लाभ उठाया।

पारिवारिक समस्याओं को तत्त्वज्ञान के बल से धैर्यपूर्वक सामना करते हुए मैंने उन्हें प्रत्यक्ष देखा है। उनका जीवन हम सबके लिए प्रकाश-स्तम्भ के रूप में चिरकाल तक आगामी पीढी को आलोकित करता रहेगा। उनके वियोग दिवस पर सहज ही उत्पन्न हुए उद्गार निम्न पंक्तियों में लिपिबद्ध हो गए।

पूज्य बड़े दादा चले, तजकर शिष्य हजार।
हम सबको समझा गए, भेदज्ञान ही सार।।
नर भव सफल किया अहो, जिनवाणी रस पान।
सहज सरल जीवन जिया, किया ज्ञान का दान।।
देव-धर्म-गुरु शरण पा, करें साधना पूर्ण।
जन्म-मरण का अंत कर, पाएं सुख भरपूर।। ●

जिसे वस्तु के स्वतंत्र परिणमन में श्रद्धा-विश्वास हो जाता है, उसे आकुलता नहीं होती। भूमिकानुसार जैसा राग होता है, वैसी व्यवस्थाओं का विकल्प तो आता है; पर कार्य होने पर अभिमान न हों तथा कार्य न होने पर आकुलता न हो; तभी कारण-कार्य व्यवस्था का सही ज्ञान है –ऐसा माना जायेगा। – पण्डित रतनचंद भारिल्ल

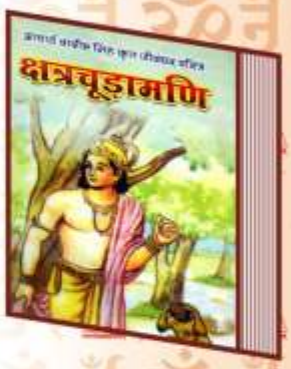

धर्म करने की कोई निश्चित उम्र नहीं होती। धर्म तो जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिए। क्या पता कब/क्या हो जाए? अंत में धर्म ही तो हमारा सच्चा साथी है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

अत्यन्त सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी थे - आदरणीय बड़े दादा

– डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

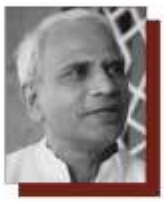

आदरणीय बड़े दादा डॉ. रतनचन्दजी भारिल्ल का व्यक्तित्व, एक अत्यन्त सीधा-सरल-सहज व्यक्तित्व था। मैं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर में तक़रीबन 8 साल तक रहा हूँ। तत्कालीन चतुर्वर्षीय उपाध्याय-शास्त्री का कोर्स करने के बाद, 2 वर्ष तक आत्मधर्म पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादन का कार्य, तत्पश्चात् साहित्य प्रकाशन का कार्य लगभग दो वर्ष तक संभाला। इस बीच आदरणीय बड़े दादा से सम्पर्क लगातार वर्षों पर्यन्त बना रहा। जयपुर प्रवास के दौरान अनेक ऐसे प्रसंग बने, जब हम सब तो उद्वेलित हो गए; परन्तु उनकी सहजता कभी भंग नहीं हुई और उनकी दिनचर्या में भी शायद ही कभी कोई परिवर्तन हुआ हो। उनकी यह सहजता की छाप हम सभी छात्रों के मन-मस्तिष्क पर अलग प्रभाव छोड़ती थी।

उनका जयपुर में स्थायीरूप से आगमन तो सन् 1978 में हुआ; जबकि श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर का प्रारम्भ सन् 1977 में हो गया था। हम लोग प्रथम सत्र के 13 विद्यार्थी थे - ब्र. जतीशभाईजी सनावद, ब्र. अभिनन्दनकुमारजी खानियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी देवलाली, प्रो. सुदीपकुमारजी दिल्ली, प्रो. श्रीयांसकुमारजी जयपुर, पण्डित महावीरजी पाटील सांगली, पण्डित राजकुमारजी गुना, पण्डित पद्माकरजी मुंजोले कोल्हापुर, पण्डित सन्तोषकुमारजी कटनी, पण्डित शिखरचन्दजी सागर, पण्डित कमलेशजी ग्वालियर आदि हम सब प्रथम बैच के विद्यार्थी थे, सहपाठी थे।

भले ही उम्र में जतीशभाईजी आदि कुछ सहपाठियों से हमारी उम्र का अन्तर उससमय दोगुने का रहा हो, फिर भी हम सभी कहलाते तो प्रथम बैच के विद्यार्थी ही थे और आज भी हमें यह बताने में कम गौरव का अनुभव नहीं होता कि ब्र. अभिनन्दनजी और पण्डित अभयजी हमारे क्लासमेट हैं, सहपाठी हैं, हम सब एक साथ, एक ही बेंच पर बैठकर पढ़े भी हैं और एक ही जाजम (चटाई) पर बैठकर खाया भी है।

आ. छोटे दादा, हमारी प्रत्येक धार्मिक कक्षा लेते, न्याय-अध्यात्म-आगम पढ़ाते, प्रवचन करते, ऑफिस का कार्य संभालते; जबकि उनकी अपनी घर-गृहस्थी भी थी। उससमय डॉ. साहब के बच्चे भी ज़्यादा बड़े नहीं हुए थे, सबकी पढ़ाई चल ही रही थी; अत: डॉ. साहब को एक विशेष सहयोगी की आवश्यकता थी, जो उनका शैक्षणिक कार्यभार, कुछ हद तक अपने कन्धों पर ले सके।

उससमय हम विद्यार्थियों ने संस्था के नीति-निर्धारकों में आ. डॉ. साहब, आ. बाबूभाईजी, आ. पाटनीजी, आ. गोदिकाजी आदि से निवेदन किया कि हमें मुख्यत: अध्यापन कार्य हेतु एक विद्वान् की अत्यन्त आवश्यकता है। उससमय बड़े दादा भी वहाँ आये हुए थे; अत: बड़े दादा से सबने निवेदन किया। तब हमारे लिए उन्होंने विदिशा की अपनी सरकारी सेवा बीच में ही छोड़ दी और हमें पढाने हेतु जयपुर आ गए। यह निर्णय उनके जीवन का एक बहुत बड़ा निर्णय और मील का पत्थर साबित हुआ।

फिर दादा-द्वय ने जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे हमारे साथ-साथ समाज को

भी दार्शनिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों में साक्षर बनाया। आ. बड़े दादा की लेखनकला से तो समस्त समाज परिचित हो ही चुका था, फिर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के देहावसान के बाद अपनी आध्यात्मिक रुचि के पोषण के लिए और गुरुदेवश्री के द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के रहस्यों की गहन पकड़ के कारण उन्होंने प्रवचन रत्नाकर के बारह भागों का गुजराती से हिन्दी अनुवाद-कार्य अपने हाथों में ले लिया, जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन के अनेक वर्षों व्यतीत किए। प्रवचन रत्नाकर भाग 1 से 3 के प्रूफ-संशोधन एवं सम्पादन-कार्य उनके साथ करते हुए बहुत कुछ सीखने को मिला। उससमय उनका, उनकी रुचि का और उनकी जीवन-शैली का अतिनिकटता से परिचय हुआ।

यद्यपि वे अपने जीवन की अन्तिम यात्रा तक श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के यशस्वी प्राचार्य रहे, तथापि उनकी सादगी ने हमें कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि वे हमारे प्राचार्य हैं; बेधड़क उनके घर में घुस जाना, जो चाहें, बड़ी बाई से लेकर खा-पी लेना, हर सुख-दुःख को साझा करना, हमारे लिए आम बात थी। इसी कारण मैं कहता हूँ कि वे प्राचार्य तो थे; परन्तु कभी उन्होंने ऐसा महसूस नहीं होने दिया।

मैंने मेरे 8 वर्ष के इस काल-खण्ड में, वहाँ दोनों दादाओं के निकट सम्पर्क में रहकर निष्प्रमाद होकर समर्पित भाव से निरन्तर तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और लेखन-सम्पादन की कला के साथ-साथ अत्यन्त जीवनोपयोगी गुर भी सीखे। मुझे यह कहते हुए किसी प्रकार का संकोच नहीं है कि यही आज तक मेरा जीवन-मंत्र बना हुआ है - ऐसे मेरे/हमारे जीवन-शिल्पी, आ. बड़े दादा के प्रति हार्दिक विनयांजलि समर्पित करता हूँ।

आदरणीय बड़े दादा की सहजता-सरलता के पीछे उनकी जीवन-संगिनी और हम सबकी बड़ी मम्मी श्रीमती कमलाबाई भारिल्ल की भी उतनी ही सहभागिता रही है। इस प्रसंग में उन्हें भी याद किए बिना नहीं रह सकता; क्योंकि सभी छात्रों को उनमें ममतामयी माता के और बड़े दादा में आदर्श पिता के दर्शन होते थे। इसीप्रकार भाई शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, भले ही सम्पूर्ण भारत में एक जाना-माना नाम हो गया हो; परन्तु हम तो आज भी उन्हें अपने छोटे भाई बबलू के नाम से ही जानते हैं। सचमुच बच्चे कब बड़े हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता।

छात्र-जीवन में जो स्थान आदर्श गुरु का होता है, वह स्थान श्री टोडरमल महाविद्यालय, जयपुर में आ. छोटे दादा को प्राप्त था; परन्तु आ. बड़े दादा को वह स्थान प्राप्त था, जो परिवार में एक पिता को प्राप्त होता है - ऐसे थे हमारे बड़े दादा - अध्यात्म-रत्नाकर पण्डितप्रवर श्री रतनचन्दजी भारिल्ल। ●

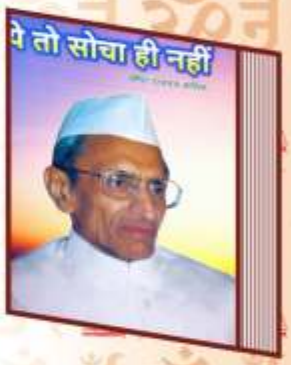

बड़े से बड़े धर्मात्मा भी धर्मात्मा बनने के पहले तो पापी ही थे। पापी ही तो पाप का त्याग कर एक न एक दिन पुण्यात्मा और धर्मात्मा बनते हैं।
- पं. रतनचंद भारिल्ल

ज्ञानियों की मृत्यु शोक का विषय नहीं होती

- प्रो. वीरसागर जैन, नई दिल्ली

पूज्य गुरुवर अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का मुझे सन् 1979 से 1981 तक विशेष समागम प्राप्त हुआ। इस अवधि में मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। उन्होंने मुझे जैनदर्शन के अनेक ग्रन्थों का अभ्यास तो कराया ही, अनेक व्यावहारिक बातें भी सिखाईं। मैं उनके साथ कार्यालय में भी कार्य करता था, 'जैनपथ-प्रदर्शक' आदि का कार्य करता था; अत:

उन्होंने वहाँ मुझे लेखन, सम्पादन, प्रूफरीडिंग आदि की कला भी सिखाई। उनमें अनेक गुण अद्भुत थे। वे बच्चों की तरह अत्यंत सरल रहते थे। यदि कोई बच्चा भी कोई अच्छी बात बताए तो तुरंत मान लेते थे। उनको किसी तरह का कोई मान-अभिमान नहीं था। वे तो स्वयं ही आगे से अपने छात्रों तक से सुधार पूछते रहते थे। वे 24 घंटे लिखने, पढने और पढाने के अलावा कोई काम नहीं करते थे। उनमें जरा भी छल-कपट, लोभ-लालच, ईर्ष्या-क्रोध आदि नहीं थे। वे बड़े ही ज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने पचासों कृतियाँ लिखकर जिनवाणी की जो अनुपम सेवा की है, उसे युगों तक भी नहीं भुलाया जा सकेगा।

उनके पूरे परिवार में भी जो स्नेहपूर्ण वातावरण पाया जाता है, वह आज के समय में अत्यंत दुर्लभ एवं अनुकरणीय है। वह वास्तव में उनकी सज्जनता का ही अनूठा उदाहरण है। उनकी पत्नी एक हजार बालकों को मातृत्व सुख देती हैं, जिसका सौभाग्य मुझे भी मिला है।

उनका पुत्र लाखों-करोड़ों में एक है, वास्तव में 'रत्न' है, 'एकश्चन्द्रः तमो हन्ति' का श्रेष्ठ उदाहरण है। उसने लाखों लोगों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लगाया है। उसकी वक्तृत्व-शैली अद्भुत है। यह भी वास्तव में गुरुजी (बड़े दादा) का ही मंगल आशीर्वाद है। आज मेरा चित्त उनके देहावसान से व्यथित हो गया है; परन्तु उन्होंने ही सिखाया है कि ज्ञानियों की मृत्यु शोक का विषय नहीं होती, अतः धैर्य धारण करता हूँ और उनको हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। ●

जल से कमल भिन्न है बड़े दादा रतनचन्दजी का दिल

– अशोक लुहाड़िया, मंगलायतन, अलीगढ

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल बड़े दादा के नाम से सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में जाने जाते हैं। लोग बड़े दादा इसलिए कहते थे कि ये परिवार में बड़े थे, टोडरमल स्मारक के वरिष्ठ आचार्य पद पर थे तथा संस्कार कथा साहित्य के अग्रणीय विद्वान रहे; लेकिन बड़े दादा को मैंने आज तक बड़ा नहीं देखा, सहज, सरल, विनम्र, हँसमुख, लघु देखा। ऐसे दादा का मेरा गुरु-शिष्य का संबंध रहा; लेकिन गुरु (बड़ा) सम्बन्ध नहीं देखा। साधर्मी वात्सल्य का सम्बन्ध रहा, टोडरमल स्मारक में साथ में रहने से पता लगा कि कैसे जीवन जिया जाता है। मैंने कभी उन्हें परिवार के कार्यों से जुड़ता हुआ नहीं देखा, जबकि बड़ी बाई कमलाबाई उसका पुत्र शुद्धात्म आदि का दादा के प्रति विशेष स्नेह रहा; लेकिन दादा उनके कार्यों से निश्छल रहे, उसका कारण मैंने जाना तो वे हमेशा कहते थे कि प्रसन्न व निवृत्त रहने का एक ही उपाय है हमेशा पॉजिटिव रहो, वे हर कार्य करनेवालों को प्रोत्साहन देना, हर काम की सहज स्वीकृति देना, वे परिवार के व्यक्तियों के प्रति ही नहीं; बल्कि टोडरमल स्मारक के हर विद्यार्थी या कर्मचारी के प्रति सहज सरल रहे। उसका परिणाम है कि आज उनका परिवार एवं टोडरमल स्मारक की हर गतिविधियाँ अविरल चल रही हैं। वे हर कार्य देखने के बाद भी जल से भिन्न कमल की तरह रहे। जीवन कैसे जीना यह बड़े दादा से सीखने को मिला है।

सहित्य समाज का दर्पण है; लेकिन दादा का साहित्य दादा का जीवन है। हम उनके साहित्य को पढकर अपना जीवन बना सकते हैं। ●

हमारे आदर्श बड़े दादा

– रमेशचंद शास्त्री, जयपुर

हमारे आदर्श आदरणीय पूज्य पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (बड़े दादा) हमारे शिक्षा गुरु, हमारे अध्यात्म गुरु, अपने जीवन में अध्यात्म उतारने वाले, अध्यात्म के साथ अपना जीवन जीने वाले, हर परिस्थिति में समता और शान्ति रखने वाले थे। उनकी छवि देखकर ही हमें प्रेरणा मिलती रहती थी। आज वे हमारे बीच दैहिक छवि के रूप में भले ही ना हों, पर उनकी जीवन शैली से और उनकी रचनाएँ पढ-पढकर हमने जीवन में बहुत कुछ सीखा है। हम उन्हें यादकर आज भी उनसे शिक्षा ले सकते हैं और भावना भाते हैं कि उनसे सीखी हुई शिक्षाएँ अपने जीवन में उतारकर मोक्षमार्ग पर अग्रसर हों और वे भी अपनी मोक्षमार्ग की यात्रा पूरीकर शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो – यही मंगल भावना है।

आदरणीय दादाजी के आरंभिक समय में प्रवचन सुनकर हम इस स्मारक में 4 साल तक निरंतर अध्ययन कर सके और उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्तकर उस तत्त्वज्ञान को जीवन में उतारने के लिए तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अधिक से अधिक समय बिता सके। आज की परिस्थितियों में जब हम अपने सहपाठी या आगामी बैचों के छात्रों को देखते हैं तो विचार आता है कि एक हमारे बड़े दादा थे, जिन्होंने अपनी तथा बाई की सरकारी नौकरी छोड़कर इस तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में जीवन समर्पित किया और हम सरकारी नौकरी के पीछे पड़कर अपना तत्त्वज्ञान भुला रहे हैं।

इस पर हमें विचार भी करना चाहिए और दादा से प्रेरणा लेते हुए अपना पूरा जीवन तत्त्वज्ञान के लिए समर्पित कर देना चाहिए।

आजीविका पुण्याधीन है और पुण्य यथायोग्य भावों के आधीन है। इस सत्य तथ्य को समझकर हम अपने स्वभाव की ओर अग्रसर हों तभी दादा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि और सच्चा उपकृतभाव हो पाएगा; जय-जिनेन्द्र। ●

बड़े दादा का जाना...

– राजकुमार शास्त्री, उदयपुर

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के पुण्य प्रभावना योग में हजारों जैन-अजैन युवा भाई-बहन प्रभावित होकर वीतराग दिगम्बर जैनधर्म के मूल तत्त्वज्ञान की ओर रुचिवन्त हुए।

आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल भी अपने छोटे भाई डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल साहब के साथ उस उम्र में आध्यात्मिक क्रांति की ओर आकर्षित हुए जिस उम्र में परिवार व व्यापार संभालकर धनार्जन करके समाज में कुछ स्थान बनाना ही युवा वर्ग का मुख्य उद्देश्य होता है। आप दोनों ही देश के ख्यातिप्राप्त महाविद्यालय से शास्त्री, न्यायतीर्थ की उपाधि लेकर एक विद्वान के रूप में समाज के मध्य प्रतिष्ठित हो रहे थे, तभी आपकी भली होनहार अथवा हमारे जैसे हजारों युवकों व लाखों साधर्मियों की भली होनहार ने आपको गुरुदेवश्री से प्राप्त अमोघ अस्त्र 'क्रमबद्धपर्याय' ने इस आध्यात्मिक धारा की ओर

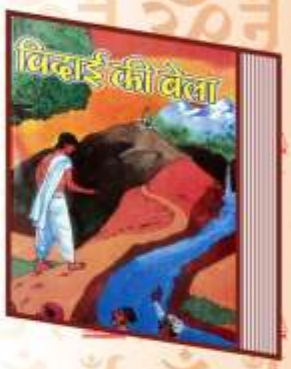

सभी महान आत्माएँ भी तो कभी न कभी इसी तरह भूले-भटके ही थे। तभी तो वे भी संसार में जन्म-मरण करते रहे। जब संभले-सुधरे तभी तो उन्हें भी मोक्ष मिला। अतः पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। पापी तो कभी भी परमात्मा बन सकता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

परिवर्तित कर दिया और आप सोनगढ़ जाकर गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान को आत्मसात् करते हुए प्रवचन, कक्षा, शिविरों के माध्यम से तत्त्वप्रचार भी करने लगे।

उज्ज्वल-धवल धोती-कुर्ता व टोपी में भारिल्ल युगल जब भी किसी नगरी की सभा में पहुँचते तो सभा देखने मात्र से प्रमुदित हो जाती। आप दोनों भाईयों का अपार व दीर्घजीवी स्नेह एक आदर्श है।

जब बड़े दादा को तत्त्वप्रचार-प्रसार की क्रान्तिकारी गतिविधि के अन्तर्गत श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ तो आपने शासकीय सेवा का परित्याग करके भी इस अवसर को स्वर्णिम अवसर समझकर स्वीकार किया और जयपुर में आप महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर आसीन हुए।

सन् 1979 से लेकर आप निरंतर महाविद्यालय के यशस्वी प्राचार्य, जैनपथप्रदर्शक के आद्य संपादक, सरल-सुबोध भाषा शैली के प्रवचनकार, एक अच्छे जैन साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित होकर सम्मानित होते रहे।

प्रशिक्षण शिविरों की शृंखला में आपने पिछले 2 शिविरों को छोड़कर सभी शिविरों में निरंतर उपस्थिति दी व कुशल प्रशिक्षक की सक्रिय भूमिका निभाई।

आपने गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समयसार पर हुए प्रवचनों के 11 भागों का प्रवचन रत्नाकर के रूप में अनुवाद करके मुमुक्षु समाज के लिए बहुत बड़ी धरोहर भेंट की।

आपके द्वारा लिखा गया साहित्य आबाल-वृद्ध को तत्त्वज्ञान से आपूरित कर मोक्षमार्ग की ओर प्रेरित करता है। आपकी रचनाएँ पाठकों के मस्तिष्क तक ही नहीं; अपितु हृदय में प्रवेश कर जाती हैं, जिसके कारण ही आपका साहित्य सर्वत्र आदरणीय व प्रशंसनीय रहा है।

आदरणीय दादा के द्वारा जो साहित्य लिखा गया, जैनपथप्रदर्शक के संग्रहणीय विशेषांकों का प्रकाशन हुआ, वह जैन साहित्य की एक अमूल्य निधि है। जिस तरह प्रथमानुयोग के ग्रन्थों का संस्कृत से हिंदी में अनुवाद करने के लिए आदरणीय पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य को जैन साहित्य जगत में जाना जाता है, उसी तरह प्रथमानुयोग के हिंदी साहित्य को भी तत्त्वज्ञान से आपूरितकर सरल-सरस भाषा में प्रस्तुत करने एवं वर्तमान पीढी के योग्य व्यवस्थितरूप प्रदान करने में आदरणीय बड़े दादा का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

आपके जीवन का एक अनुकरणीय पहलू आपका सरल व वात्सल्यमयी होना है। आपकी सहधर्मिणी आदरणीया बड़ीबाई श्रीमती कमलाबाईजी भारिल्ल व आपका व्यवहार सभी विद्वानों, साधर्मियों, छात्रों के प्रति असीम स्नेह से भरा पूरा रहा है। आप समाज, संस्थाओं के विवाद से सदैव दूर रहे, अत: समाज में सैद्धान्तिक मतभेद रखने वाले विद्वान व श्रेष्ठी वर्ग भी आपके उक्त व्यवहार के कारण सदैव आपके नजदीक रहे। आप सरलता व वात्सल्यमयी निश्छल मुस्कान के लिए सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे।

आपकी इस वात्सल्य व सरलता की परंपरा भाई शुद्धात्मप्रकाश व सर्वज्ञ के माध्यम से सहज ही प्रवाहित हो रही है।

आदरणीय दादा हमारे लिए पितृतुल्य गुरुजी रहे हैं। आपके अनुमोदन पर ही इंदौर शिविर

में मेरा प्रवेश हुआ था। आपने मेरे जैसे हजारों अल्पमति बालकों के लिए 'णमोकार महामंत्र' और 'जिनपूजन रहस्य' को समझाया, आपने ही हमें भक्ष्य-अभक्ष्यरूप 'सामान्य श्रावकाचार' का ज्ञान कराकर, पूज्य-अपूज्य, कर्तव्य-अकर्तव्य, स्व-पर भेदज्ञान के 'संस्कार' दिए। आपने ही हमें जिनशासन के 'शलाका पुरुषों' का परिचय कराकर 'सुखी जीवन' जीने की कला बताकर कहा - हे वत्स ! रात-दिन चलने वाले अपने भावों का अवश्य विचार करना कि 'इन भावों का फल क्या होगा' अन्यथा 'यदि चूक गए तो' अपने दुष्परिणामों के फलस्वरूप नरक-तिर्यंच गति के दु:ख भोगने पड़ेंगे। वहाँ पहुँचकर फिर न कहना कि 'ऐसे क्या पाप किए'।

आपने ही हमें सिखाया कि संसार के सभी रिश्ते-नाते मात्र शरीर रहने तथा स्वार्थसिद्धि होने तक ही हैं। वास्तव में कोई किसी का माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी नहीं है, जो 'द्रव्य दृष्टि' से अपने आपको व पर को जानता है, जो जगत के होने वाले कार्यों का कर्त्ता न बनकर, मात्र 'जान रहा हूँ-देख रहा हूँ' की श्रद्धा के साथ जीवन जीता है, वह 'विदाई की बेला' में भी 'समाधि व सल्लेखना' के साथ देह परिवर्तन करके संसार समुद्र से पार उतरने के लिए इस भव से गमन करके शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मी का वरण करता है। आपकी इन शिक्षाओं के लिए मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

आपके देहवियोग के प्रसंग पर यह जानते हुए भी कि आप यशदेह व अक्षरदेह से हमारे नजदीक ही हैं, हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ●

साहित्य साधक तपस्वी

- डॉ. महावीरप्रसाद शास्त्री, उदयपुर

आदरणीय बड़े दादा रतनचंदजी भारिल्ल सरल व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। उनका शरीर, मन, जीवन सब सरल था। आपके वक्रता के परिणाम नहीं रहे, इसी कारण आप सभी लोगों के प्रिय थे। आपने कटुता का बीज कहीं नहीं और कभी नहीं बोया।

आपके व्यक्तित्व से हम सब प्रभावित हैं। आपको सर्वप्रथम मैंने उदयपुर के प्रशिक्षण शिविर 1975 में देखा था, वहीं आपके प्रवचन सुने थे। तत्पश्चात् अजमेर के प्रशिक्षण शिविर में 1980 में, तत्पश्चात् 1985 सागर के प्रशिक्षण शिविर में मिलना हुआ। वहाँ आपसे प्रशिक्षण शिविर की कक्षाओं का लाभ मिला। यानि सीधा सम्पर्क इस शिविर से हुआ। उसी समय श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश लेने के कारण आपका विशेष आशीर्वाद मुझे मिलता रहा है। दादा से हमें समयसार की कक्षा का लाभ प्राप्त हुआ है व प्रवचन का तो निरन्तर लाभ मिला ही है। तब से अन्त समय तक दादा से सम्पर्क निरन्तर रहा है।

विशेषांक प्रकाशन के अवसर पर मैं दो घटनाओं का उल्लेख अवश्य करना चाहता हूँ, जिनसे मेरा और दादा का सीधा संबंध है।

सत्र 1985-86 में जब मैं उपाध्याय कक्षा में अध्ययनरत था। उस समय बड़े दादा के रिश्तेदार का लड़का भी मेरा रूम पार्टनर था। उस लड़के का भी इसी सत्र में मेरे साथ ही

व्यक्ति जिसे अपना सौभाग्य समझे बैठा है, भाग्योदय माने बैठा है; वही उसके लिए दुर्भाग्य बनकर क्रूर काल बनकर उसे कब धर दबोचेगा - इसकी उसे कल्पना भी नहीं है। उसे नहीं मालूम कि यह परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान उसे किस नर्क के गर्त में धकेल देगा।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

उपाध्याय में प्रवेश हुआ था। उसकी पढने में रुचि नहीं थी, वह कमजोर था, इसलिये उसे मेरे साथ रखा था, ताकि वह मुझसे पढ ले, मेरे साथ पढ ले। एकबार वह कपड़ों पर प्रेस कर रहा था, उसे मैंने पढने के लिये कहा कि तुम कुछ पढो, उपाध्याय का यह कोर्स कठिन है, तुम अच्छी तरह से पढाई नहीं करोगे तो फेल हो जाओगे। तुम कुछ समझो। मेरे यह कहने पर उसे बहुत गुस्सा आ गया। उसने गर्म प्रेस मेरे गाल पर चिपका दी। मेरा गाल जल गया। मैं रोता हुआ बड़े दादा के पास गया; क्योंकि मेरा रूम व बड़े दादा का घर पास ही था। दादा-मम्मी ने देखा कि मेरा गाल ज्यादा जल गया है। दादा ने उसको बुलाया और डाँटा-फटकारा ही नहीं उसे गुस्से में एक जोर से चांटा मारा। मुझे तत्काल एस.एम.एस. अस्पताल भेजा। दादा का इतना गुस्सा पहली बार देखा था। उससे पहले कभी नहीं देखा था और बाद में भी कभी नहीं देखा। दादा ने उस लड़के को तत्काल निष्कासित कर दिया; परन्तु निवेदन करने पर माफी मांगने पर यह सत्र खराब न हो, इस कारण उसे वापस रख लिया। उपाध्याय के पश्चात् उसे निकाल दिया; क्योंकि वह फेल हो गया था।

दादा की इतनी उदारता थी कि बच्चों के द्वारा गलती हो जाने पर भी शीघ्रता से माफ भी कर देते थे, वे उन्हें समझाते थे कि तुम यहाँ विद्वान बनने आये हो, मस्ती करने नहीं, अपराध करने नहीं। हमेशा यह बात तुम दिमाग में रखोगे तो तुम गलती करोगे ही नहीं।

एक प्रसंग दादा के 85वें जन्मदिन का है। दादा के 85वें जन्मदिन पर मैं और डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री दोनों उदयपुर से जयपुर पहुंचे थे। उस दिन बड़ी मम्मी ने उनके घर पर ही भोजन करने को कह दिया। मैंने, जिनेन्द्र ने, दादा व मम्मी चारों ने एक साथ खाना खाया। पहली बार हमने साथ खाना खाया था। दादा ने अपने हाथ से मुझे लड्डू खिलाया। इतना ही नहीं मेरा जब खाना पूरा हो चुका था, तब एक लड्डू दादा ने मेरी थाली में और रख दिया। तब मेरी समझ में आ रहा था कि दादा मुझसे कितना स्नेह रखते हैं।

मैं जब भी जयपुर जाता तब दादा व मम्मी से अवश्य मिलने जाता था, वे जब बराबर बोल नहीं पा रहे थे, तब भी अपनी बात को कुछ कहने का प्रयास करते थे कि हम समझ जावे। मुझे देखकर वे बहुत प्रसन्न होते थे, कहते थे महावीर टोकर तू आ गया, सब ठीक है, कहते-कहते आंखों में अश्रु भी आ जाते थे। उनकी इतनी सहृदयता हमें अन्तर की गहराई से छू जाती है। ऐसे मेरे गुरु को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊँगा। मैं ही क्या हम सभी आपके विद्यार्थी विस्मृत नहीं कर सकते।

मैंने दादा को निरन्तर कलम चलाते देखा है। शीतकाल में दादा जब स्मारक में रहते थे तो सीमंधर चैत्यालय की छत पर बैठकर घंटों लेखन कार्य करते व स्वाध्याय करते देखा है। उन्हें साहित्य साधना करते मात्र शीतकाल में ही नहीं; अपितु बारह माह घर पर कार्यालय में करते हुए प्रत्यक्ष देखा है। तब मैं कभी-कभी सोचता साहित्य की साधना भी एक साधना है। जो प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। यह एक तपस्या है, जिसे दादा ने की है। दादा शांतरूप से, स्वान्तः सुखाय लिखते चले जा रहे थे और समाज उनकी अनेक कृतियों से लाभान्वित होती जा रही थी। ऐसे साहित्य साधक तपस्वी को अपनी अन्तर की गहराई से श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ अपनी कलम को विराम देता हूँ। ●

बड़े दादा बड़े क्यों?

– अजित शास्त्री, अलवर

किसी सफल व्यक्ति से यह प्रश्न अवश्य किया जाता है कि आपकी सफलता में आप सबसे बडा कारण किसे मानते हो? और वह व्यक्ति अनेक पहलुओं पर विचार कर किसी एक का नाम घोषित करता है। मैं सफल कितना रहा हूँ, इस मूल्यांकन से परे 'मैं जहाँ हूँ' इस मुकाम तक पहुँचने में किसी एक व्यक्ति को मूलक बताकर उन अन्य ऐसे कारकों की उपेक्षा नहीं करना चाहता जो प्रवृत्त लेख में प्रसंग प्राप्त नहीं है, परन्तु उन तक पहुँचने का यदि कोई नि:संदेह माध्यम है तो 'भारिल्ल परिवार', जिसमें बड़े दादा बड़े हैं, जिनके व्यक्तित्व का अंतर्बाह्य बेमेल नहीं था, अकूट विद्वत्तता, सौम्य सरलता एवं सहजता, अभिमान से गहरा बैर, प्रतिकूलताओं में भी धीर-वीर, सन्मार्ग का खेल और केवल अनुकरण न कि प्रतियोगिता, किसी को आगे होता देखकर डाह न होना, ये सब ऐसे लक्षण हैं जो उन्हें बड़ा और विरला बनाते हैं, उक्त वैशिष्ट्य उनके सहस्राधिक शास्त्रियों और लाखों मुमुक्षुओं से छिपा हुआ नहीं है, मेरे व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन में ऐसे प्रसंग हैं, जिनकी प्रशस्तिपट्ट पर मैं उनका नाम लिख सकता हूँ। कभी न भुलाने योग्य एक प्रसंग को मैं इस अवसर पर अवश्य याद करना चाहता हूँ, जिससे जब भी हम बडे.दादा बाई एवं बबलू भाई (शुद्धात्मप्रकाश) से मिलते तो याद किये बिना नहीं रहते। अनेक बार प्रतिकूलतायें, अयोग्यतायें और असफलताएँ भी वरदान बन जाती हैं, ये मैंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष देखा है।

सन् 1983 (जब मैं टोडरमल महाविद्यालय में शास्त्री प्रथम वर्ष में था) के दशलक्षण महापर्व पर प्रवचन हेतु एकल भेजे जाने वाले विद्यार्थियों में मेरा नाम नहीं था और यह कोई अप्रत्याशित भी नहीं था। फलस्वरूप मुझे बड़े दादा के साथ भेजा गया। बड़ी बाई के अलावा बबलू भाई भी साथ था। अपने सगे पुत्र के साथ-साथ धर्मपुत्र के प्रति भी दोनों का असीम वात्सल्य वहाँ की मुमुक्षु समाज में आकर्षण का केन्द्र था। उस पर रतन जड़ने का कार्य एक प्रसंग ने किया। दोपहर में बड़ी बाई की कक्षा एवं दादा की तत्त्वचर्चा चलती थी। 'ज्वरग्रस्त' होने के कारण मैं उस दिन के कार्यक्रम में नहीं गया। तत्त्वचर्चा के अन्तर्गत दादा किसी प्रश्न के उत्तर में 'क्रमबद्धपर्याय' समझा रहे थे। एक सज्जन के प्रति प्रश्न का उत्तर दादा के बार-बार कहने पर भी कि मेरी बात से आप नाराज तो नहीं होंगे और उनके वचनबद्ध होने पर भी वे उग्र हो गये। बड़े दादा तो अपन सहज स्वभाव से ओतप्रोत रहे। फिर हमारे क्रमबद्ध में जो था वह हुआ, संयोग से वे सज्जन गृहस्वामी थे जहाँ हम सबका अस्थायी आवास था। उग्रता की आग घर तक पहुँची और वातावरण अत्यन्त सोचनीय हो गया। मुझ अस्वस्थ, भयग्रस्त, मुझे आग की लपटे तो दिख रही थीं, चिंगारी कैसे भड़की? पता नहीं था। मगर उनके लिए मैं बेचारा बन गया। व्यवस्थापकों ने बड़े दादा से कहा कि अब आप वहाँ उस घर में मत जाइये उचित नहीं रहेगा। ऐसा सुनकर बड़ी बाई और दादा उग्र स्वर में एक साथ बोले क्या बात करते हो, वहाँ हमारा बेटा अकेला और बीमार है। हम ऐसी स्थिति में उसे अकेला नहीं छोड़ेंगे, हम वहीं जायेंगे। लोग निरुत्तरित हो गये, ऐसा असीम वात्सल्य और कहाँ मिलेगा? जो तात्कालिक केवल दिखावा मात्र नहीं अपितु दीर्घजीवी रहा। मैं मानों उनके परिवार का अंग बन गया। तब से आज भी मैं विलग नहीं हूँ। कहते हैं माँ-बाप की नाल बच्चे पकड़ते हैं, तभी तो भाई बबलू आज भी सहोदरवत् व्यवहार रखता है, उस समय ये बच्चों की कक्षा सम्हालने में कुशल था, मुझे न केवल बोलना सिखाया गया अपितु कलापक्ष का भी उपयोग कर आगे बढाया गया। प्रतिफल ये हुआ कि कार्यक्रम के अंतिम दिन पीछे पड़े बालकों के उत्साहित हुजूम से बचने

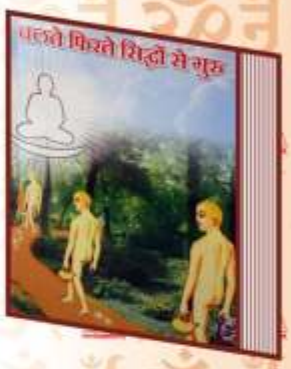

हम लोग तो सचमुच पुराने पुण्य का फल भोग रहे हैं। नई कमाई तो अभी तक कुछ भी नहीं की। वह काहे का व्यापार, जिसमें पाप ही पाप हो? सचमुच आत्मकल्याण का व्यापार ही असली व्यापार है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

के लिए हमें किसी के घर में घुसकर बचाव करना पड़ा। आज हम जहाँ हैं जैसे हैं जो कुछ हैं उनकी देन हैं।

आदरणीय बड़े दादा की सहनशीलता भी उसी दिन देखने को मिली। पाठक विचार कर सकते हैं कि किसी बड़े विद्वान का एक ही दिन में तीन चार जगह आवास बदल दिया जाये और वह इतना सहज बना रहे कि चौथी जगह जाकर भी ऐसा निद्रामग्न हो जाये जैसे कुछ हुआ ही नहीं, प्रात: वही मुस्कान और सहजता - वाह।

सचमुच बड़े दादा का व्यक्तित्व मात्र दो पृष्ठों का नहीं अपितु लेखनी से पार है और भी ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो अमिट हैं। व्यक्ति की सकारात्मक सोचपूर्वक अपने कर्त्तव्य का निर्वहन जनमानस में ऐसी गहरी छाप छोड़ता है जो स्वयं उसे भी पता नहीं होता, उनके आकस्मिक वियोग पर टोडरमल स्मारक में अनवरत 4 घण्टे तक चली उनकी गुणानुवाद सभा में उच्चस्तरीय विद्वानों, विशिष्ट महानुभावों द्वारा उनके विषय में प्रस्तुत गद्य-पद्यात्मक विचार यही द्योतित करते हैं।

उनका वियोग हमें नये रूप में संकल्पबद्ध होने का प्रसंग है। मैं सपरिवार उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ। इन शब्दों के साथ -

उपलब्धियाँ मुखर नहीं मजबूत होनी चाहिए।
चरित्र चित्रों में नहीं चित्तों में धंसना चाहिए।।
लेखनी लेख लिखे सुन्दर भी सलोना भी।
मगर पाठक को सुन्दर जीवन का स्वाद चखना चाहिए।। ●

प्रेरणादायी व्यक्तित्व

- पण्डित रतन चौधरी, भोपाल

पण्डित टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल सा. जिन्हें आध्यात्मिक मुमुक्षु समाज बड़े दादा के नाम से जानता एवं पुकारता था, आदरणीय दादा का जैसा गौरवर्ण शरीर, श्वेत धवल वस्त्र वैसा ही उनका पवित्र हृदय मनोयोग पूर्वक जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में कर्तृत्व था।

वे एक सरल, सहज वक्ता, उनके मन, वाणी, क्रिया से कभी भी विद्यार्थियों के प्रति तीव्र आवेश नहीं देखा जाता था। मुझे महाविद्यालय में 1984-1988 तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय बड़े दादा समयसार पूर्वरंग एव कर्ताकर्म की कक्षायें दोपहर में पढाया करते थे। दादा तो लेट आते ही नहीं थे, किन्तु एक-एक मिनिट के हिसाब के साथ कक्षा में बैठने का सौभाग्य प्रदान करते थे। उनका शिक्षण शिविरों में प्रथम प्रवचन अपने आप वैभवशाली हुआ करता था। उनसे मिलना, मिलकर कुशलक्षेम पूछना पूरे परिवार सहित वात्सल्य सहित याद करना उनके व्यक्तित्व में समाहित था। आपका साहित्य अपने आपमें बेजोड़, अध्यात्म से परिपूर्ण रुचिकर पठनीय सहजता से समग्र विषय को ग्रहण कराता है। आप प्राचार्यत्व पद निर्वाह करते हुए भी विद्यार्थियों को आपने किसी भी प्रकार का संकोच महसूस नहीं होता था, वे अपनी बात खुलकर कहते थे और पक्ष में निर्णय देते थे। आप क्रमबद्धपर्याय के कुशलचितेरे के रूप में देखे जाते रहे हैं। आपको कोटि-कोटि नमन। ●

बड़े दादा का जीवन : खुली किताब

- डॉ. सतीश कुमार जैन, अलीगढ़

नर से नारायण, पशु से परमेश्वर, पामर से परमात्मा बनने की कला सिखाने वाला वीतरागी जिनधर्म, तीर्थ प्रवर्तक तीर्थंकर भगवंतों की दिव्य देशना व परम्परा द्वारा हमारे वीतरागी मुनियों को प्राप्त हुआ है। इन वीतरागी संतों ने स्वानुभूतिरूप निजवैभव से मुक्तिमार्ग को स्थापित किया है। इस परम्परा को वर्तमान युग में अनेक ज्ञानी-गृहस्थों ने परिपुष्ट किया है। अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का उद्भव विश्व के मनीषियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उनमें से हमारे श्रद्धेय गुरुवर, आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल अग्रगण्य हैं। पूज्य गुरुदेव से उन्होंने जो भी सीखा, उसे अत्यन्त निरपेक्ष भाव से जन-जन तक पहुंचाया। दादाजी ने पूज्य गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्वज्ञान को स्वयं आत्मसात तो किया ही, उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया। भारत में ही नहीं, विदेशों में भी, नि:स्वार्थ भाव से वीतराग-वाणी का डंका बजाया। आपके सत्प्रयासों से सम्पूर्ण देश के धर्मपिपासु जन तत्वज्ञान से परिचित हुए हैं।

अध्यात्म जगत के दिवाकर परम दैदीप्यमान, कुन्दकुन्द के कुन्दन, अध्यात्मचंद्र, सर्वगुणसम्पन्न, असाधारण व्यक्तित्व के धनी, निर्भीक लोकप्रिय वक्ता, जिनधर्म के प्रचारक, समाज के मार्गदर्शक, सफल संस्था निर्माता, धुन के पक्के, सत्य के शिखर, जीवन में संयमी, विचारों में दृढ़, जिनवाणी के सच्चे सपूत, टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के यशस्वी प्राचार्य, सहस्राधिक शिष्यों के गुरु, आदरणीय दादाजी का नाम समकालीन विद्वानों में अग्रगण्य है। लोकैषणा से अत्यन्त दूर, सरलता की मूर्ति, सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति, सहजता की प्रतिकृति, निश्छलता की आकृति, प्रेम और सौहार्द की प्रतिमा, दया-करुणा का आदर्श, अनुशासन का जीवंत उदाहरण, स्पष्टवादी स्वभाव, मुमुक्षु जीवों के आदर्श, प्रखर तत्व अभ्यासी, तत्वज्ञान का ध्वज फहराने वाले दादा के सपनों का साकार रूप टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जैन सिद्धांतों का दृढ़तापूर्वक प्रचार और जैन समाज के बालकों में उसका बीजारोपण कर रहा है।

आदरणीय दादा ने अपनी साधना ज्ञान और चिंतन से जो अर्जित किया, वह समाज को दिया। दादा का लक्ष्य, सरल ढंग से स्पष्ट भाषा में जन सामान्य तक तत्वज्ञान पहुंचाना था। उनका आंतरिक हृदय जिनवाणी के प्रति अगाध श्रद्धा से भरा था, जो दार्शनिकताओं की सीमाओं से निकलकर मौलिक कृतियों संस्कार, विदाई की बेला, इस भावों का फल क्या होगा? सुखी जीवन आदि के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँचने में सफल हुआ। आपकी कृतियों में चारों अनुयोगों का पुट मिलता है। परमेष्ठी भगवंतों को हृदय में धारणकर न्याय-नीति के मार्ग पर चलते हुए, वस्तु स्वरूप का विचार करके स्वानुभूति प्रगट करना, जिनागम का सार है। इसकी प्रेरणा आपकी कृतियों में मिलती है। जैन अध्यात्म का शंखनाद पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा होता रहेगा। स्मारक ट्रस्ट विद्वानों की फैक्ट्री है, भगवान बनने की कला सिखाने वाली अद्भुत पाठशाला है, जिसमें विद्वत् रत्न गढ़े जाते हैं।

उच्च कोटि के जैन दर्शन के मूर्धन्य विद्वान बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी भारिल्लजी का जीवन एक खुली किताब है। उनके जीवन के हर पृष्ठ पर नैतिक मूल्यों का अंकन है, जिसमें सेवा, समर्पण, श्रद्धा, साधना, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन आदि मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना है। आपकी वाणी में ओज, आंखों में चमक, सर्वत्र नम्रता, ज्ञान पिपासा शांत करने की

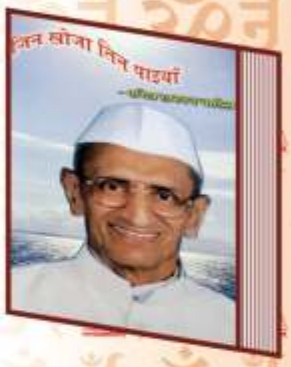

जैनदर्शन में पाप-पुण्य एवं धर्म-अधर्म जीवों के भावों एवं श्रद्धा पर निर्भर करता है। जिन कार्यों में जैसी श्रद्धा एवं भावनायें जुड़ी होंगी, कर्मफल उनके अनुसार ही प्राप्त होगा।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

क्षमता, जनसेवा, साहित्यसेवा, शालीनता और उदारता के कारण आप सभी के स्नेहभाजन और विश्वासपात्र हैं। आपकी लगभग 41 पुस्तकों का लेखन अनुवाद एवं सम्पादन खूब सराहा गया है। लाखों की संख्या में घर-घर की निधि बन गई हैं।

सादा जीवन उच्च विचार, आपके जीवन का अभिन्न अंग हैं। अंतरंग में अध्यात्म रुचि होने से, आत्महित की मुख्यता से अपने कार्य में निरत हैं। मैं आपकी सादगी और सज्जनता से अत्यधिक प्रभावित हूँ, मेरा प्रथम परिचय शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर भिण्ड में 1984 हुआ था। जब मैं मात्र 13 वर्ष का था और आठवीं कक्षा में पढ़ता था। शिक्षण-प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए दादाजी ने पहले तो मना कर दिया कि तुम्हारी आयु शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए कम है। बालबोध परीक्षा और साक्षात्कार के परिणाम के बाद मुझे अवसर प्रदान किया। तब से ही दादाजी के प्रति मेरी अटूट श्रद्धा हो गई। उसी के परिणामस्वरूप दो वर्ष बाद बाल ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी अमायन की प्रेरणा, मेरे पूज्य पिताश्री के आशीर्वाद से श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश हुआ। तभी से दादा को पढ़ने का अवसर मिला। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, विद्वता गम्भीरता, सरलता और असीम ज्ञान, उनमें कूट-कूटकर भरा था। इन सबका आधार उनका आध्यात्मिक जीवन है। मृदुल अनुशासन और रोचक शैली, प्रशिक्षणार्थियों को अध्यापक बना देती है।

लम्बा कद, गौर वर्ण, इकहरे बदन, धवल शुभ्र कुर्ते-धोती में करूणा, सरलता और सौम्यता की साक्षात् मूर्ति आदरणीय बड़े दादाजी स्मारक के सभी बच्चों में समान व्यवहार करते थे। सीधी-सादी धोती कुर्ता और टोपी में दमकता व्यक्तित्व, शब्दों से टपकता पाण्डित्य, वचनों से माधुर्य और चिंतन से छलकती आध्यात्मिकता आपकी निशानी है। आपके प्रवचन एवं कक्षा में श्रोता स्फूर्ति और एकाग्रता से पढ़ता है। आप जैन दर्शन के मूल सिद्धांतों को, श्रोता के मानसपटल या हृदय पर अंकित कर देते हैं। दिगम्बर धर्म के सिद्धान्तों को स्वसाहित्य में इतनी सरलतापूर्वक तर्क एवं युक्ति से प्रस्तुत किया है कि वर्षों से अभ्यासी समाज भी उसे रुचिपूर्वक पढ़ता ही नहीं है; अपितु उनके सिद्धांतों के यथार्थ बोध से कृतकृत्य हुआ है। वे अपने विचार किसी पर थोपते नहीं थे; बल्कि सलाह देते थे और सभी छात्र सलाह को आदेश मानकर अपने को धन्य मानते थे। सारी दुनिया मानती है कि दादाजी अधिक नहीं बोलते, मधुर हास्य के द्वारा सभी को आशीर्वाद देते हैं। दादाजी के साहित्य व लेखनी में ऐसा रस है - उनका उद्बोधन और लिखा हुआ हर ग्रन्थ अपार ज्ञान का प्रतिबिंब बन जाता है।

आपकी वाणी में ज्ञान और भक्ति का मणिकांचन संयोग है। जटिल वैचारिक गुत्थियों को सरल शैली में समझाने की अद्भुत क्षमता के कारण अध्यात्म साहित्य की पहिचान बन गए। अध्यापन शैली की अभिव्यक्ति और साधारणीकरण के कारण सहृदयी पाठक के अंदर धीरे-धीरे उतर गए और उन्हें अपना बना लिया। आपने तर्क प्रधान शैली, शांत रस में निमग्न, शीतलता प्रदान करने वाला, जैनदर्शन के अंतरंग को स्पर्श करने वाला, जिनपूजन रहस्य, णमोकार महामंत्र आदि सत्साहित्य लिखा है। उसके अध्ययन से समाज के लोगों की भ्रान्तियाँ दूर होकर, जिनधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होती है। आकाश के अनगिनत तारों के मध्य, ध्रुव तारे के समान, आपकी वाणी, जिनवाणी के मार्मिक रहस्यों को क्षीर समुद्र के जल के समान स्पष्ट झलकाती है। साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसको समझने के लिए पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं; बल्कि मन की पवित्रता होना आवश्यक है। आप उच्चकोटि के वक्ता होने के साथ कलम के धनी थे। जैनत्व के विविध क्षेत्रों में गहरी पैठ

थी, विचारों की पकड़ थी। अध्यात्म शास्त्र को नई रीति से प्रस्तुत करने में सफलता मिली, जिसमें आप जैनसाहित्य के कलम के सिपाही सिद्ध हुए हैं। धर्मप्रचार के क्षेत्र में वीर योद्धा की तरह काम किया है। दुरूह प्रतिपाद्य विषय को भी उदाहरण शैली व सरल प्रस्तुतिकरण से बच्चों के हृदय में उतार देते थे। आदर्श जीवन के हर पहलू में हमें कुछ न कुछ सीखने को मिलता है। समझाने की शैली, सौम्यशांत मुद्रा, निश्छल छवि सबका मार्गदर्शन करती है।

सकारात्मक सोच के साथ युवावर्ग व बच्चों को धर्म के साथ जोड़ना वर्तमान युग की अनिवार्यता है। आपकी रचनाएँ, नई प्रेरणा देकर ऊर्जा और स्फूर्ति में अभिवृद्धि करती है। संस्कार, जिनपूजन रहस्य, शलाका पुरुष, हरिवंश कथा आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों के माध्यम से गम्भीर शैली, चिंतन की गहराइयों व विद्वता का परिचय मिलता है। महापुराण व हरिवंशपुराण को नए रूप में प्रस्तुत करके पुराण प्रेमी श्रोताओं का महान उपकार किया है। जिनके पास मूल ग्रन्थ पढ़ने का समय नहीं है। ऐसे स्वाध्याय प्रेमियों पर भी बड़ा उपकार किया है। संस्कार मुख्य रूप से वयस्कों के लिए, विदाई की बेला वृद्धों के लिए, इन भावों का फल क्या होगा? व्यापारियों के लिए विशेष सहयोगी है। इन महान उपकारों के लिए जितना अभिनंदन किया जाए उतना कम ही है। आदरणीय बड़े दादा ने कभी दादागिरी नहीं दिखाई। उन्होंने सहज भाव से सभी मुमुक्षुओं को तत्त्वज्ञान परोसा है। यथा नाम, तथा गुण वाले बड़े दादा वास्तव में अमूल्य रत्न ही नहीं; अपितु बहुमूल्य रत्नों की खान थे। बड़ी बाई अर्थात् बड़ी मम्मी आदरणीया श्रीमती कमला भारिल्ल बहुत ही गुणवती, स्वाध्यायी, आतिथ्यसत्कारिणी, सहस्राधिक बच्चों की माता हैं। आपके सुपुत्र हम सबके आदरणीय चहेते, मार्गदर्शक ओजस्वी वक्ता, लाखों करोड़ों युवाओं के हृदय सम्राट, भारतीय जैन युवा फैडरेशन के राष्ट्रीय मंत्री, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल सभी स्नातकों के भ्राता हैं। सुपौत्री सर्वदर्शी भारिल्ल के साथ सुपौत्र सर्वज्ञ भारिल्ल अच्छे प्रवचनकार एवं अपने दादाजी व पिताजी के सत्पथानुगामी हैं। सौ. पुत्रवधु श्रीमती संध्या भारिल्ल शांतस्वभावी, हित-मित-प्रिय बोलने वाली हैं, जो हमारे मौ गाँव जिला भिण्ड की ही भानजी हैं। पूरा परिवार धर्मनिष्ठ सदाचारी, आध्यात्मिक एवं कुशल वक्ता है। मुझे दादाजी से वीतरागी तत्त्वज्ञान के अध्ययन करने का सुअवसर स्मारक जयपुर में प्राप्त हुआ है। दादाजी सचमुच मेरे जीवनशिल्पी हैं। उन्होंने मेरे जीवन को सही दिशा प्रदान की है। इस उपकार के लिए उनके चरणों अनन्त श्रद्धा सुमन समर्पित हैं। ●

सहजता के पर्याय और स्वतंत्रता के उद्घोषक साहित्यकार

– डॉ. महेंद्र जैन मुकुर

बीते दिनों की याद ताजा करते हुए जब नजर दौड़ाते हैं और आदरणीय बड़े दादाजी के प्रवचनों में खुद को बैठा हुआ पाते हैं, तब उनकी सौम्यता से प्रतीत होता था कि वे कितनी सहजता से कठिन से कठिन विषयों को सरल कर हृदय में उतार देते थे। उनके द्वारा कही गई कुछ सूत्रात्मक बातें जैसे कि एक ही आत्मा में साध्य-साधन भाव है। अनंत के दो भेद - संख्या अपेक्षा और सीमा अपेक्षा। बंध के प्रत्यय आत्मा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। आत्मा में भेद-दृष्टि और समाज में अभेद-दृष्टि का होना बहुत जरूरी है। धर्म की परिभाषा याद कर ली और धर्म हो गया, ऐसा नहीं है; क्योंकि धर्म एक परिभाषा नहीं प्रयोग है। भेदज्ञानी जीव ही आत्मा को सर्वस्व जानते हैं; क्योंकि आत्मा ने अपना सर्वस्व भेदज्ञानियों को सौंप दिया है। पिता हाथ

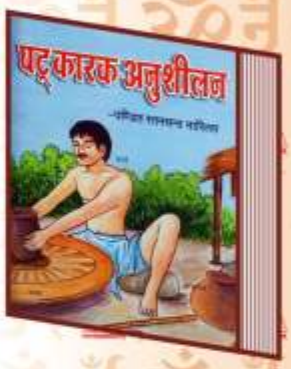

यह मिथ्यात्व आत्मारूपी घर के कोनों में चूहों की तरह कहाँ-कहाँ छुपा हुआ रहता है और तत्त्वज्ञान के महत्वपूर्ण दस्तावेजों को, संयम और सदाचार के कीमती कपड़ों को कुतरता रहता है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

पकड़कर संसार की राह दिखाता है तो ज्ञानी गुरु हाथ पर हाथ रखकर मोक्षमार्ग सिखाते हैं, जैसे सैकड़ों विषयों को आदरणीय बड़े दादाजी ने अपने प्रवचनों, कक्षाओं में बड़ी सरलता और सहजता से विद्यार्थियों को हृदयंगम कराया।

जितनी सरलता आदरणीय बड़े दादा रतनचंदजी भारिल्ल साहब के जीवन में थी, उतनी ही सहजता उनकी लेखनी में भी दिखती है। गहन-गंभीर विषयों को आसान शब्दों में व्यक्त करने की अद्भुत कला आपमें देखते ही बनती है। आपके द्वारा लिखे गए महत्वपूर्ण धार्मिक साहित्य में से आज हम 'पर से कुछ भी संबंध नहीं' पुस्तक पर चर्चा करेंगे।

जैनदर्शन की दार्शनिकता को बताने वाला वस्तु स्वातंत्र्य के सिद्धांत का दूसरा नाम है- पर से कुछ भी संबंध नहीं। लेखक ने इसमें सरल भाषा का सहारा लेकर प्रश्नोत्तरी शैली में गूढ़ से गूढ़ विषय को बड़ी सहजता से उद्घाटित किया है । विश्व व्यवस्था का स्वरूप, कार्य-कारण का स्वरूप एवं उनके संबंधों का विश्लेषण, निमित्त-उपादान कारण का विवेचन, उसके भेद-प्रभेद, कार्य की संपन्नता में निमित्तों की भूमिका, निमित्तों को कारण कहने का औचित्य तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक एवं निमित्त-उपादान संबंधी विस्तृत विवेचना का जनसामान्य की समझ में आने योग्य बड़ी स्पष्टता के साथ खुलासा किया है। गहन विषय की मीमांसा करते हुए लेखक ने कार्य-कारण व्यवस्था को आधार बनाकर कारणों की उपयोगिता एवं उनके स्वरूप आदि का सरल भाषा में विवेचन किया है।

पदार्थ के स्वतंत्र परिणमन को कार्य कहते हैं। कार्य कारण के अनुसार ही निष्पन्न होता है, कहा भी है- कारणानुविधायीनि कार्याणि। कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं अर्थात कार्य के पूर्व जिसका सद्भाव नियत हो और जो किसी विशिष्ट कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य को उत्पन्न ना करे, वस्तुतः यही कार्य की उत्पादक सामग्री है, जिसे कारण कहते हैं। लेखक के अनुसार मात्र कारण-कार्य व्यवस्था को समझ लेना ही पर्याप्त नहीं है, वे इससे आगे प्रायोगिक जीवन को मानवीय भावनाओं से जोड़कर इसके लाभ-हानि भी गिनवाते हैं, वे कहते हैं कि मैं पर जीवों का भला कर सकता हूँ, पर मेरा भला कर सकता है, पर मेरा बुरा कर सकता है, इन मान्यताओं के विनाश से अहंकार, क्रोध, दीनता एवं भय आदि भावनाएं स्वत: ही दूर हो जाती हैं। कार्य-कारण व्यवस्था को समझने से वस्तु की स्वतंत्रता का भाव जाग्रत होता है। इससे अपनी या पराई पर्यायों को पलटने की आकुलतारूप बुद्धि भी नष्ट हो जाती है, सहज शांति एवं अंतरंग पुरुषार्थ का उदय होता है।

निमित्त उपादान के शब्दजाल में फंसना और उसमें ही उलझकर रह जाना, यह व्यक्ति की बहुत बड़ी भूल है। लेखक यहाँ यह कहना चाहते हैं कि निमित्त-उपादान कारण तो वस्तु के सही स्वरूप को समझने के लिए थे, आपस में झगड़ने या कलह करने के लिए नहीं। निमित्त-उपादान की परिभाषा देते हुए लेखक कहते हैं कि जिसके बिना कार्य हो ही नहीं और जो कार्य को करे नहीं वह निमित्त है तथा स्वयं समर्पित होकर कार्यरूप परिणमित हो जाए वह उपादान है।

यहाँ पर यदि कोई प्रश्न करे कि जब निमित्त से कार्य नहीं होता तो उसकी जानकारी की क्या जरूरत है? इसका जवाब बहुत ही अच्छी तरह से लेखक ने दिया है कि निमित्तों का यथार्थ स्वरूप जाने बिना निमित्तों को कर्त्ता माने तो श्रद्धा मिथ्या है तथा निमित्तों को माने ही नहीं तो ज्ञान मिथ्या है । इसी प्रकार निमित्त-उपादान कारणों के भेद-प्रभेद भी चार्ट द्वारा बड़े ही व्यवस्थित तरीके से उद्घाटित किए गए हैं। उपादान के मूल दो भेद हैं (1) त्रिकाली उपादान (2) क्षणिक उपादान। क्षणिक उपादान के पुनः दो भेद किए हैं, (1) अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय (2) तत्समय की योग्यता।

निमित्तों के भी आठ भेदों को दर्शाते हुए प्रत्येक की सरल परिभाषाएं दी हैं, वे निम्न है - 1. प्रेरक निमित्त, 2. उदासीन निमित्त, 3. अंतरंग निमित्त, 4. बहिरंग निमित्त, 5. सद्भाव निमित्त, 6. अभाव रूप निमित्त, 7. बलाघात निमित्त, 8.प्रतिबंधक निमित्त।

जैनधर्म की मूल दार्शनिक अभिव्यक्ति देने वाले सिद्धांतों में कर्त्ताकर्म सिद्धांत की महत्ता इससे ही सिद्ध होती है कि इसके समझे व जाने बिना जैनदर्शन की शुरुआत ही नहीं की जा सकती। निमित्त-उपादान कहें या कार्य-कारण व्यवस्था कहें, सभी कर्त्ता-कर्म सिद्धांत के ही दूसरे पहलू हैं।

जैनदर्शन में अच्छे कर्मों को करने वाला ना तो ईश्वर है और ना ही बुरे कर्मों को प्रेरित करने वाला शैतान। यहाँ तो व्यक्ति एवं वस्तु-स्वातंत्र्य अपने पूर्वपने से स्वीकार है। ''य:परिणमति स: कर्त्ता'' अर्थात् जो स्वयं कार्यरूप परिणमता है, वही वास्तविक कर्त्ता है। संसारी प्राणी को संसार समुद्र में रुलाने वाला परद्रव्य कर्म नहीं वरन् स्वयं ही जीव के अपने परिणाम हैं और उससे छूटने का उपाय भी स्वयं का पुरुषार्थ है। कर्मों का उदय जीव को बंधनकारक नहीं है। लेखक लिखते हैं कि यदि उदय मात्र से ही बंध होने लगे तो संसारी जीवों का सदैव कर्मोदय होने से सदा ही बंध होता ही रहेगा, मोक्ष कभी होगा ही नहीं। यह पंक्ति कितनी सार्थक है कि भगवान आत्मा स्वयंभू हैं और स्वयंभू सदा सत् एवं अहेतुक होता है।

निमित्त कारणों को स्वीकारने की व्याख्या में लेखक की जीवन-शैली के दर्शन होते हैं, वे कहते हैं - जो निमित्त कारणों को मानते ही नहीं हैं, वे तो अज्ञानी हैं ही, पर जो निमित्तों को परद्रव्य का कर्त्ता मानते हैं, वे भी वस्तु स्वरूप से अनभिज्ञ हैं। निमित्तों को कर्त्ता कहना मात्र व्यवहार है और निमित्तों को कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है ।

यह कहना गलत ना होगा कि 'पर से कुछ भी संबंध नहीं' शीर्षक इस बात को सिद्ध करता है कि निमित्त पर है और उनकी उपयोगिता या उनकी विद्यमानता का आशय मात्र इतना ही है कि उपादान में हुए विशेष कार्य के अनुरूप संयोग (निमित्त) कैसे होते हैं, यह ज्ञान कराने के लिए निमित्तों का वर्णन किया जाता है, कार्य में उसका कर्तृत्व जताने के लिए निमित्तों का वर्णन नहीं किया जाता । जिस प्रकार मिट्टी में से घट कार्य हुआ तो तदनुकूल इच्छा व क्रियावाले कुम्हार का ही संयोगरूप निमित्त होगा, जुलाहा आदि का नहीं। ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है। इसी प्रकार जीव जब सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्यायें प्रकट करता है तो अपनी तत्समय की योग्यता से ही करता है; किंतु उस समय निमित्तरूप में सच्चे देव शास्त्र गुरु की उपस्थिति होती ही है।

यह काबिले तारीफ है कि लघु पुस्तिका में सलीके से आत्मा का पर से पूर्णत: संबंध विच्छेद बताया है; क्योंकि अज्ञानी निमित्त-नैमित्तिक आदि संबंधों की आड़ में कर्ता-कर्म संबंध का पोषण करता है। पुस्तक के अंत में प्रायोगिक प्रश्नोत्तर के माध्यम से अपने आसपास का परिवेश एवं घटनाओं को आधार बनाकर क्रमबद्धरूप से उदाहरणों द्वारा अंतरंग एवं बहिरंग कारणों की व्याख्या बखूबी की गई है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लेखक ने थोड़े में बहुत कहकर प्राथमिक, जिज्ञासु, अभ्यस्त, अनभ्यस्त - सभी प्रकार के पाठकों को ध्यान में रखकर धार्मिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों का रहस्योद्घाटन किया है। लगता है कि लेखक की स्वाभाविक जीवनी ही पुस्तक में उतर गई है, वस्तुतः यह पुस्तक कई बार पठनीय है। ऐसी ही धरोहररूप कृतियों से जैन साहित्य की श्रीवृद्धि होती है, इस उपकार को समाज सदा ही याद करेगा। ●

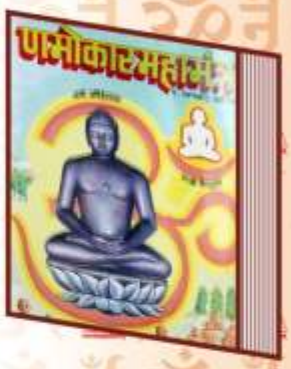

शुभ और अशुभ दोनों ही परिणतियाँ अंध हैं और कर्मबन्ध की कारण हैं। एकमात्र वीतराग परिणति ही भव-समुद्र से तारने वाली तरणी है, संसार-सागर में गोते खाते प्राणियों को पार उतारने वाली नौका है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

आत्मैव आत्मनः गुरुः। .... बोधप्रदाता बडे दादा!

– सुनील जैनापुरे, राजकोट

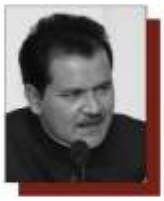

स्वच्छ धवल वस्त्रों से सुसज्जित सहजता, सात्त्विकता एवं सादगी की प्रतिमूर्ति अर्थात् बड़े दादाजी। परम श्रद्धेय बड़े दादा मुझ जैसे न जाने कितनों के विद्यागुरु रहे हैं।

ज्ञानतीर्थ स्मारक में सन् 1989 से 1994 तक का मेरे अध्ययन काल का स्वर्णयुग रहा। अनगिनत अविस्मरणीय क्षणों की साक्षात् स्मृतियाँ नेत्रों में तेजस्विता भर जातीं हैं। **'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति'** उक्ति के अनुसार बड़े दादा के अगणित उपकारों का मैं चिर ऋणी हूँ और संपूर्ण जीवन बना रहूँगा।

केवल कक्षाओं के माध्यम से ही नहीं; अपितु अन्य व्यावहारिक बोध-पाठ व सत्संस्कारों से दादाजी ने हमें संस्कारित किया है। 'समयसार' की कक्षा से लेकर 'नाटक समयसार' तक लंबी सूची तैयार हो सकती है। 'नाटक समयसार' तो वे इतने सुरुचिपूर्वक एवं पण्डित बनारसीदासजी के जीवन की विविध घटनाओं के रेखाचित्रों से तादृश्य कराते हुए पढ़ाते थे, जिसका कोई सानी नहीं है। इसी विषय की प्रथम कक्षा दादाजी ने ली थी, जिसकी अमिट छाप मेरे मानस पर सदा-सदा के लिए पड़ गई। बात कुछ ऐसी है, कक्षा का मंगलमय प्रारंभ ही आर्षोक्ति से हुआ **'आत्मैव आत्मनः गुरुः! कौन किसका गुरु? कौन किसका शिष्य? आप सभी विद्यार्थी महाविद्यालय में शास्त्री की पढ़ाई करने आए हैं; किंतु स्वयं अपना आप ही गुरु बनकर गुरुजनों से विनय विवेकपूर्वक अध्ययन करते रहोगे तो समाज में श्रेष्ठ गुरु बन पाओगे'**; सच में ऐसी सोच ऐसे उच्च विचार मेरे हृदय के अंतर को छू गए, मानो कोई चमत्कार ही हो गया।

इस विषय में दादाश्री नित्य पितातुल्य प्रेम-वात्सल्य की वर्षा एवं मार्गदर्शन प्रदान करते रहते थे।

अपने शैशव काल के और ग्रामीण जीवन के संसाधनों से अभावग्रस्त जीवन-पद्धति का चित्रण करते हुए वे बहुत ही भावुक हुआ करते थे। किस प्रकार वे अपने जीवन के उत्कर्ष को साध सके यह सोचकर ही **'उन्नतं मानसं यस्य भाग्यं तस्य समुन्नतम्'** जैसे विचारों को सार्थक करने वाले कोई शिखर पुरुष उनके विराट व्यक्तित्व में हमें नजर आया करते थे। बिलकुल छोटी-छोटी बातों की तरफ विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करना उनके मननशील, मनोवैज्ञानिक गुरुत्व को दर्शाने वाली अपूर्व विशेषता थी । अध्ययन के उन वर्षों में ही 'संस्कार', 'विदाई की बेला' जैसी कृतियाँ विशेष चर्चा में थीं। 'संस्कार' कृति तो यथार्थ में संस्कारों की संग्रह कृति है। 'विदाई की बेला' का तो कहना ही क्या? दो मित्रों की परिचर्चा मानो समूची दुनिया के मित्रों की कहानी ही है। जब स्मारक की विशाल छत पर जहाँ त्रिमूर्ति की रचना सद्यः हुई ही थी। दादाजी कहीं भी शांति से किसी कोने में चुपचाप बैठे-बैठे अपनी सारस्वत प्रतिभा से लेखन-वाचन में नित्यरत रहा करते थे। उनकी वह नीरव साधना भी हमारे

लिए **आवाग्विसर्गात्**..... का मौनसन्देश चरितार्थ करने की प्रेरणास्रोत बनी रहती थी।

अध्ययनशीलता, संवेदनशीलता गंभीरता, सहजता, सरलता, सुसंस्कृतता उनके आभिजात्य व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ उनके गरिमामय आदर्श जीवन की अटूट संपदा थी।

विद्यार्थियों को पारिवारिक प्रेम हेतु वे नित्य स्रोत बने रहते थे। वात्सल्य तो मानो उनके हर एक शब्द-शब्द में ही समाया हुआ था।

ऐसे वात्सल्यमूर्ति गुरु श्रद्धेय दादाश्री के चरणों में नित नमन करते हुए अपनी हृदयांजली समर्पित करता हूँ। ●

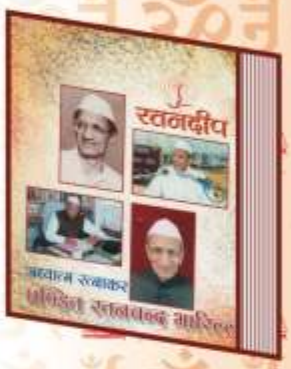

वात्सल्य के सागर बड़े दादाश्री

– संजय जेवर, कोटा

महापुरुष कभी स्मृति से नहीं जाते, भले ही वे इस धरा से क्षेत्र से क्षेत्रान्तर हो जाएँ। महापुरुषों का कार्य उनकी महानता और उनकी अक्षरदेह सदा जीवित रहती है; उसमें ही हैं हमारे बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, जिनका उपकार जीवनभर नहीं भुलाया जा सकता।

भूली बिसरी यादें आज मस्तक पटल पर आ रही हैं। धन्य घड़ी जिस बेला में, मैं स्वयं धोती दुपट्टा पहने हुए हाथ में एक पीतल का कमंडल था, स्मारक की भूमि पर कदम रखा था, छोटे दादाश्री उस समय परदेस गए हुए थे, मैं बड़े दादाश्री से मिला और स्मारक में प्रवेश के लिए निवेदन किया।

आगम का अध्ययन तो था, पर मुझे तत्व की कोई समझ नहीं थी, बड़े दादा ने कहा – यह सब वेष बदलना पड़ेगा, सामान्य विद्यार्थी बनकर पढ़ना पड़ेगा; लेकिन आपने हमारा प्रशिक्षण शिविर भी तो किया ही नहीं है, आपका एडमिशन कैसे होगा? मैंने बहुत विनती की तो बड़े दादा मान गए और कहा छोटे दादा आने के बाद ही प्रवेश संभव हो सकेगा। छोटे दादा परदेस से वापस आये। मेरे प्रवेश के बारे में बात रखी गई, छोटे दादा ने कहा – तुम सामान्य विद्यार्थी बनकर पढ़ सकोगे क्या? तब मेरा एडमिशन बड़े दादा के ऊपर छोड़ दिया गया। उस समय बड़े दादा और अन्नाजी की कृपा से स्मारक में मेरा एडमिशन हुआ।

बड़े दादाश्री में, धर्म और तत्त्व के साथ-साथ मैंने सदा वात्सल्य का सागर उमड़ते हुए देखा है।

कभी भी किसी छात्र को विशेष दंड नहीं दिया। किसी भी अपराध को आप बड़ी उदारता से तुरंत क्षमा कर देते थे। उनकी निश्चल मुद्रा, निश्चल प्रेम और निश्चल हंसी आज भी याद आती है। बड़े दादा आज हमारे बीच में नहीं है; किन्तु हमारे दिलों में सदा अमर रहेंगे।

जो वे टोडरमल स्मारक में अपनी तत्वज्ञान, प्रेम, वात्सल्य और शिक्षा की उज्ज्वल छवि छोड़कर गए हैं, वह पंचमकाल के अंत तक धूमिल नहीं हो सकती। मैं उनका शिष्य होने का ऋण धर्म आराधना प्रभावना करके सदा चुकाता रहूँगा। ●

आज की दुनियाँ में खुले रूप में पाँचों पापों एवं सातों दुर्व्यसनों का ताण्डव नृत्य हो रहा है। विशेष दुःख तब होता है, जब ये पाप प्रवृत्तियाँ धर्म, उन्नति की आड़ में होती हैं, समाज सेवा और राष्ट्रोन्नति के नाम पर होती हैं।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

मृदुता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति : बड़े दादा

– डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन
(अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, सोमैया विद्याविहार विश्वविद्यालय, मुम्बई)

आदरणीय बड़े दादा की स्मृति में प्रतिवर्ष 21 नवम्बर को हम सब सहजता दिवस के रूप में मनाने का निर्णय किया है। बड़े दादा का स्वभाव स्नेहशील और वात्सल्यपूर्ण था। अनुशासन की दृष्टि से उनका गुस्सा भी ऊपरी ही होता था, लेकिन वे अपने शिष्यों के साथ बहुत वात्सल्यपूर्ण व्यवहार रखते थे।

शास्त्री प्रथम वर्ष में वे हमें पुरुषार्थसिद्धयुपाय नामक ग्रन्थ पढाते थे और मैं उनकी पहली ही कक्षा में अनुपस्थित था। जब उन्हें मालूम हुआ तो उन्होंने मुझे बुलवाया। मैं उनके पास गया तब तक शायद वे भूल चुके थे कि मुझे किसलिए बुलाया था। जब मैंने कहा कि आज मैं आपकी कक्षा में अनुपस्थित था, तो उन्होंने डांटते हुए कहा कि 10 उठक-बैठक लगाओ। स्पष्ट ही है कि दादा ऊपरी गुस्सा ही करते थे, वह भी अनुशासन की दृष्टि से। जिस प्रकार एक नारियल ऊपर से कठोर, लेकिन अन्दर से कोमल होता है, उसी प्रकार बड़े दादा की डांट भी ऊपरी-ऊपरी ही होती थी, लेकिन स्वभाव से वे कोमल ही थे।

उनके स्वभाव से यह समझ में आ गया कि एक अध्यापक में कम से कम छात्रों के प्रति स्नेह और वात्सल्य का भाव अवश्य होना चाहिए, शेष शिक्षण एवं ज्ञानार्जन की प्रक्रिया तो इन गुणों के रहते स्वयमेव सफलतया निष्पन्न हो जायेगी। आज भी मेरे विचार ये हैं कि एक अध्यापक के गुणों में सर्वोपरि गुण छात्रप्रेम है। यदि वह है तो उसमें बाकी गुण भी स्वयमेव विकसित हो ही जायेंगे; क्योंकि वह शिक्षण भी तो छात्रों के लिए कर रहा है और उनके अधिगम के लिए जो कुछ आवश्यक होगा, चाहे वह विषय का ज्ञान हो या चाहे समीचीन शिक्षणविधि हो, यदि छात्रप्रेम है तो निश्चित ही अध्यापक उन गुणों को भी एक न एक दिन अवश्य ही अर्जित कर लेगा।

पहली बात तो यह है कि एक अध्यापक में वात्सल्य होना चाहिए और हाँ दूसरी बात यह है एक छात्र में सर्वोपरि गुण अध्यापक के प्रति श्रद्धा और भक्ति होनी चाहिए। यदि वह है तो निश्चित ही वह छात्र उनके द्वारा प्रदान की गई सभी शिक्षाओं को आसानी से हृदयंगम कर लेगा। यही कारण था कि एकलव्य ने अपने मिट्टी के गुरु द्रोणाचार्य से भी धनुर्विद्या को हासिल कर लिया था। यह वास्तव में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, कोरा अन्धविश्वास नहीं।

आदरणीय बड़े दादा से मैंने जो बातें सीखी थीं, वे आज भी मुझे याद हैं और मैं अक्सर उनका जिक्र अपने व्याख्यानों में छात्रों के मध्य करता ही रहता हूँ। बड़े दादा की शिक्षण शैली बहुत ही सरल थी, सहज थी और बोधगम्य थी। उनकी कक्षा में अनुशासन भी बना रहता था। निष्कर्षत: कहूं तो वास्तव में वे मृदुता और वात्सल्य की मूर्ति ही थे। ●

पुस्तकों से जीवन परिवर्तन हुआ

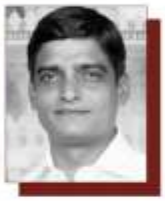

– राजेशकुमार शास्त्री, शाहगढ़

इसे एक सहज संयोग ही कहा जायेगा कि एक दिन नासिक जेल से बड़े दादा के पास राजकुमार गुप्ता का अप्रत्याशित पत्र प्राप्त हुआ, पढ़कर उन्हें आश्चर्य हुआ। राजकुमार गुप्ता किसी अपराध के कारण नासिक जेल में सजा काट रहा था। एक दिन जेल के पुस्तकालय में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'संस्कार' उपन्यास उसके हाथ लग गया था, जिसे पढ़कर वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसे लेखक को धन्यवाद देने का तीव्र भाव आया और वह पत्र लिखने बैठ गया। पत्र लिखने का वह सिलसिला आज भी अनवरत रूप से चल रहा है।

ज्ञातव्य है कि कैदियों के जीवन को सुधारने के लिए, उनकी आपराधिक प्रवृत्ति कम करने के लिए और जेल जीवन को शान्ति से व्यतीत करने के लिए वहाँ शासन की ओर से कुछ ऐसी गतिविधियों की व्यवस्था होती है, जिससे उन्हें कुछ शिक्षा मिले, सुधरने के अवसर मिले; इसी व्यवस्था के अन्तर्गत वहाँ पुस्तकालय की भी व्यवस्था होती है। उसमें ऐसा साहित्य उपलब्ध कराया जाता है, जिससे कैदियों का जीवन भी सुसंस्कारित हो सकें।

किसी साहित्य प्रेमी ने बड़े दादा (पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल) के प्रसिद्ध लोकप्रिय उपन्यास 'संस्कार' की कुछ प्रतियाँ नासिक जेल में प्रदान की थीं, तभी राजकुमार गुप्ता को संस्कार उपन्यास पढ़ने को मिल गया, जिसने उसे सर्वाधिक प्रभावित किया। उसका लेखक के नाम एक अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से भरा 3-4 पृष्ठ का पत्र आया, जिसमें संस्कार की प्रशंसा तो थी ही, साथ में लेखक का आभार मानते हुए उपन्यास की प्रकाशक संस्था पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से विनम्र निवेदन किया गया था कि लेखक की अन्य जो भी कृतियाँ प्रकाशित हुई हों, कृपया उन्हें भी अवश्य भेजें तथा भविष्य में भी जो भी प्रकाशित हों, कृपया भेजते रहें। एतदर्थ गुप्ताजी ने पुस्तक के मूल्य की अग्रिम राशि भिजवाने की भी व्यवस्था की।

राजकुमार गुप्ता ने अपने साथियों को भी वह पुस्तक पढ़ने को दी थी, उनके नाम हैं - हितेश शाह, जोगेन्द्र, सरजू सिंह आदि। अपने अगले पत्राचार में उनके नामों का उल्लेख करते हुए लिखा था कि भारिल्लजी के साहित्य को सभी साथी बहुत श्रद्धा-भक्ति के साथ पढ़ रहे हैं और उसमें प्राप्त निर्देशों, नीतियों और सिद्धान्तों के अनुसार अपने जीवन को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। ये पुस्तकें जले घावों पर मरहम की भाँति काम करती हैं, मानसिक तनाव को कम करती हैं। यह भी लिखा है कि ये पुस्तकें जीवन में द्वेष की ज्वाला को शांत करने में अमृत का काम करती हैं।

यह बात आश्चर्यचकित कर देनेवाली हैं कि पण्डित रतनचन्दजी के सत्साहित्य के माध्यम से कैदियों का हृदय भी बहुत तेजी से परिवर्तित हो रहा है। कई कैदियों के द्वारा लिखे गये लम्बे-लम्बे पत्रों से यह प्रमाणित होता है कि निराश, नीरस और एकाकी जीवन व्यतीत करते कैदियों को सामाजिक जीवन जीने के लिए भारिल्लजी का साहित्य कितना अधिक उपयोगी साबित हो रहा है।

एन.सी.आर.पी. जेल नासिक के बन्दी हितेश प्रवीण शाह पण्डित रतनचन्दजी को लिखे

काम करते-करते थकावट अनुभव करने पर आटे में नमक की भाँति शुद्ध-सात्विक लौकिक कलाओं के द्वारा अपना उपयोग पलट कर विश्राम लेकर पुनः अपने प्रयोजनभूत काम को करने में ही हमारी भलाई हैं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

एक पत्र में लिखते हैं - ''आपके साहित्य से प्रभावित होकर मैं सुख और शान्ति के पथ पर अपने आपको, स्वयं के अन्दर बसे ज्ञाता को जानने एवं उससे तन्मय-एकरूप होने का प्रयत्न कर रहा हूँ तथा संसार के सभी जीवों के कल्याण की कामना करता हूँ। आज मैं अपने आप में एक नई शक्ति का अनुभव कर रहा हूँ।''

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि एक ओर जब व्यक्ति समाज में था, तब कुंठाओं, गरीबी और बेरोजगारी, ईर्ष्या-द्वेष तथा बदले की भावना आदि कारणों से ऐसे-ऐसे अपराध कर बैठता है, जिसके कारण उसे जेल जाना पड़ता है; परन्तु वह उसे अपने मन से अपराध मानने को तैयार नहीं होता; परन्तु वही व्यक्ति सत्साहित्य को पढ़ने से समाज की स्थिति को पहचान कर अपनी भूल स्वीकार करता हुआ पश्चाताप करता है - ऐसे अपूर्व और अनुकरणीय कार्य को करने की सशक्त प्रेरणा पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के साहित्य में है।

नासिक जेल के कैदियों में हो रहे परिवर्तन से प्रभावित होकर जेल अधिकारी ने उक्त कैदियों के निवेदन पर भारिल्ल बन्धुओं को कैदियों को उद्बोधन करने हेतु जेल में आमंत्रित किया था। वहाँ जाकर दोनों भारिल्ल बन्धुओं ने कैदियों को संबोधित किया था, जिसे कैदियों ने बड़े मनोयोगपूर्वक ध्यान से सुना। संबोधन सुनकर अपने आपको धन्य मानते हुए आपका अत्यन्त हार्दिक आभार भी माना था।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि किसी एक के द्वारा ज्ञानदान हेतु बाँटी गई पुस्तकें, किसतरह से किसी के जीवन में अपूर्व परिवर्तन ला देती हैं, उन्हें संस्कारित करते हुए जीवन जीने की कला सिखा देती हैं। अत: हमें कभी-कभी प्रसंगानुसार सत्साहित्य को घर-घर और सार्वजनिक स्थानों पर अवश्य ही पहुँचाना चाहिए। ●

सरलता के प्रतीक बड़े दादा

- डॉ. दीपक जैन 'वैद्य' जयपुर

आदरणीय बड़े दादा से मेरा पहला मिलन भोपाल के चौक मंदिर में सन् 1993 में बालबोध प्रशिक्षण शिविर में हुआ। उस समय मैं बीएएमएस (द्वितीय वर्ष) में पढ़ता था। मेरे पाठशाला शिक्षक श्री बाहुबलीजी ढोकर के साथ भोपाल में उस ग्रीष्मकालीन शिविर में गया था; प्रवेश परीक्षा हो रही थी और मैंने बड़े दादा को देखा, इसके पूर्व सिर्फ छोटे दादा को ही देखा था। मैं छोटे दादा समझकर उनके चरणों में झुक गया और उनसे कहा दादा आपको मैंने दादर मुंबई में सुना था। वे बोले कि आपने छोटे दादा को सुना था, उन्होंने उस समय जो सहज आत्मीयताभरी मुस्कान से सहजता दिखाई, वह मेरे हृदय पर अमिट छाप छोड़ गई। वास्तव में उनका मनमोहक सरल भोला व्यक्तित्व, वह हृदय स्पर्शी फर्स्ट इंप्रेशन मेरे पूर्ण जीवन के लिए बहुत मृदु और सरलता का प्रतीक बन गया। फिर उन्हें जब मैंने उनके महाविद्यालय में प्रवेश हेतु इच्छा व्यक्त की तो सहर्ष उन्होंने स्वीकृति देकर और मनोबल बढ़ाया कि बहुत श्रेष्ठ निर्णय है। उसके बाद मैंने अपना बीएएमएस 2 वर्ष में पूर्ण करने के बाद 1995 में टोडरमल स्मारक में प्रवेश लिया टोडरमल स्मारक में बड़े दादा की कक्षा मुझे सबसे सरल और एकदम रुचिकर लगती थी। उनकी भाषा-शैली अत्यंत सरल होने से एक-एक अक्षर शुरू से ही समझ में

आता था। उनके दृष्टांत भी सहज-सरल-सुबोध होते थे। साइकिल के पिछले टायर में हवा नहीं हो, आगे के टायर में हवा भरता जाए और पीछे के टायर को चेक करे तो वह किस प्रकार सफल होगा, आगे का टायर भी फट जाएगा और पीछे का टायर वैसा ही बिना भरा रह जाएगा; इसी प्रकार जीव पुद्गल में ही पुरुषार्थ करता रहे और अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचाने तो वह विपरीतता को प्राप्त होगा और स्वयं के आत्मकल्याण को साध नहीं सकेगा। इस तरह उनके उदाहरणों की बहुत ही सुलभ शैली रहती थी। जिस प्रकार कोई चेहरे का धब्बा दर्पण में साफ करे तो कार्यकारी नहीं होगा, उसी प्रकार अंदर जीव में स्वयं में भूल हो और सुधार पुद्गल में या बाह्य संयोगों में करे तो वह यथार्थ नहीं होगा। ये दो उदाहरण तो हृदय में जम गए थे। बड़े दादा से बोलने में हमें कभी संकोच नहीं रहा; क्योंकि वे बहुत ही मृदु स्वभाव के धारक थे, उनका गुस्सा करना हमें हँसी ला देता था, उसमें किंचित भी बुरा नहीं लगता था। इसप्रकार उन्होंने सरलता की अमिट छाप सदा के लिये हृदय पर छोड़ रखी है। आदरणीय बड़े दादा मुझसे विशेष प्रीतिपूर्वक बात करते थे और अनेक प्रकार की औषधालय या अन्य बातों में अपनेपन से रुचि लेकर खूब प्रीति व वात्सल्य भाव रखते थे। उनकी सुखद स्मृतियाँ हमारे हृदय में समाहित है; जय जिनेंद्र। ●

याद है उनकी पहली डांट

– प्रो अनेकांत कुमार जैन, नई दिल्ली

मुझे स्मरण है जब मैंने स्मारक में प्रवेश किया था, ना मैंने पूर्व में कोई शिविर किया था और ना ही पहले कभी यहाँ आया था; लेकिन 'भावितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र' उक्ति के अनुसार प्राचार्य आदरणीय बड़े दादाजी की अनुकम्पा से मुझे इस शर्त पर ले लिया गया कि अगला प्रशिक्षण शिविर जरूर करोगे।

जब आए तब छोटे दादाजी विदेश गए हुए थे; अतः बहुत समय तक बाल मन आपको ही छोटे दादा समझता रहा और लगा कि बड़े वाले तो विदेश गए हैं।

किसी की कोई बात समझ में नहीं आती थी। नेमीचंदजी पाटनी का प्रवचन तो बिल्कुल भी नहीं। शुरू में सुनना सबकी पड़ता था; किन्तु समझ में सिर्फ दो लोग आते थे - एक बड़े दादाजी के प्रवचन और दूसरा बड़ी मम्मीजी की कक्षा।

साहित्य भी इनका ही इतना सरल था कि वो ही पल्ले पड़ता था।

शुरू में छात्रावास में मन नहीं लगता था तो बड़े दादा और बड़ी मम्मी में ही घर देखा, परिवार देखा, मां बाप देखे और वैसा ही वात्सल्य देखा और वैसी ही डांट खाई।

अभी शुरुआत ही थी कि एक दिन शाम को प्रवचन न सुनकर मित्र संजय के साथ मन बहलाने बिड़ला मंदिर चले गए। दूसरे दिन बड़े दादाजी ने प्रवचन शुरू करने से पहले ही मंच से डांटा - मिस्टर अनेकांत कल आप प्रवचन में नहीं थे और घूमने गए थे। ये बनारस नहीं है, यहाँ ऐसा नहीं चलेगा। तुम यहाँ घूमने नहीं आए हो' - सबके सामने ऐसी फटकार से दिल बहुत दुःखी हुआ और अपराध बोध हुआ तो उनसे मांफी मांगने उनके घर चला गया; लेकिन वहाँ जाकर कहा और देखा तो उन्हें यह प्रसंग याद ही नहीं था। उल्टा पुचकारने लगे, प्रशंसा करने लगे।

दुःख की घड़ियाँ काटे नहीं कटतीं और सुख में समय बीतते देर नहीं लगती। सुखद वातावरण में बरसों का बीता समय परसों जैसा लगता है। अतः सुखद समय में अपने कल्याण का प्रयोजन साध लेना चाहिए।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सरलता की ऐसी प्रतिमूर्ति थे बड़े दादा जी।

मैंने उनके अभिनन्दन ग्रंथ में एक लेख लिखा तो शीर्षक दिया था - 'मुमुक्षु समाज के महात्मा गांधी'।

आज कह रहा हूँ - 'समाज ने अपना गांधी खो दिया'।

कभी कोई कविता या लेख लिखा तो जैनपथप्रदर्शक में उसे प्रकाशितकर प्रोत्साहित किया। एक बार मित्रों के साथ एक हस्तलिखित अख़बार 'स्मारक टाइम्स' प्रकाशित किया जो काफी विवादास्पद और चर्चित रहा। एक कुशल प्रशासक की भांति उसके कारण उनके मुख से निष्कासन शब्द भी सुनना पड़ा, वहीं दूसरी ओर मेरी साहित्यिक रुचि को देखते हुए उन्होंने निर्माणाधीन कृति 'इन भावों का फल क्या होगा?' की प्रूफ रीडिंग और साहित्य शैली और सुगमता की परख मुझ बालक से सिर्फ इसलिए करवाई कि अभी कृति में बाल बोधत्व बरकरार है या नहीं, कहीं यह कठिन तो नहीं हो रही।

इसी कारण हम प्रूफ देखना भी सीख गए और कहानी लिखना भी।

गुरुओं की शिक्षा और आशीर्वाद कब किस रूप में फलीभूत हो जाए कह नहीं सकते।

आज तक जब भी मिलने गए लेखों और कार्य की प्रशंसा से उत्साह ही बढ़ाया।

2006 में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर आयोजित विशाल जैन विद्वत-सम्मेलन में सह-संयोजक के रूप में दायित्व मिला। पूज्य पिताजी प्रो. फूलचंदजी जैन प्रेमी के संयोजकत्व में कार्य करने का सौभाग्य मिला, तब आदरणीय बड़े दादा वहाँ पधारे। वहाँ मंच पर विराजित सभी मुनिराजों को एक-एक विद्वान् आकर श्रीफल भेंट करेंगे - ऐसा भट्टारकजी ने निर्देश किया। तब सभी विद्वानों ने कहा कि भारिल्लजी से आचार्य वर्धमान सागर जी को श्रीफल भेंट करवाकर दिखाओ तो जानें।

पिताजी ने उनसे निवेदन किया तो वे तुरंत तैयार हो गए और मंच पर उन्हें श्रीफल भी समर्पित किया। कई लोगों ने कहा अरे आप इन्हें जानते नहीं हैं। मैंने कहा कि मैं तो जानता हूँ, तुमने जानने में भूल की है।

आज वो हमारे बीच नहीं हैं; लेकिन उनकी वो पहली डांट रूपी शिक्षा आज भी याद है, जिसका मैं लौकिक और पारमार्थिक दोनों अर्थ लगाता हूं - 'तुम यहां घूमने नहीं आए हो'।

दादा आपने सच कहा था हम यहां घूमने नहीं आए हैं; बल्कि इस मनुष्य भव में सिर्फ इसलिए आए हैं कि ये घूमना फिरना भ्रमण अब बंद हो जाए।

आपकी साधना, प्रज्ञा, विनम्रता और समर्पण को नमन, काश हम भी आपकी तरह सरल हो पाते; क्योंकि अब सरल होना बहुत कठिन हो गया है। आज आप नहीं हैं; लेकिन अपनी शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से शिष्य रूपी पुत्रों की फौज के रूप में आप सदा विद्यमान रहेंगे। ●

हम कैसे भूल सकते हैं?

- सुधीर शास्त्री, मंगलायतन

अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं हैं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होतीं। उन्हें परिणमाने का भाव मिथ्यादर्शन है। इत्यादि महामन्त्र को हमने आपसे ही सीखा है।

आदरणीय बड़े दादाश्री हमारी कक्षाएँ लिया करते थे और जिनागम के सिद्धान्तों को बड़े सरल ढंग से हमें बताया करते थे। हमें उनकी कक्षाएँ-प्रवचन बहुत अच्छे लगते थे। निमित्त-उपादान के सम्बन्ध में एक उदाहरण हमेशा दिया करते थे - हम लोग सोनगढ़ जाकर जब वापिस आते थे तो लोग पूछा करते थे - कार्य उपादान से होता है या निमित्त से। निमित्त से कार्य नहीं होता है तो सोनगढ़ क्यों जाते हो, तब वे कहा करते थे कि इसी बात को पक्का करने के लिये सोनगढ़ जाते हैं।

गुरू गोविन्द दोउं खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरू आपने भगवन दियो बताए।।

भगवान बनने की सच्ची कला भी गुरू के ही माध्यम से प्राप्त होने के कारण, गुरू की मुख्यता बताने वाली यह कहावत एकदम सही चारितार्थ होती है। हमारे जीवन को 'तत्त्व के माध्यम से बताने वाले गुरू' को हम कैसे भूल सकते हैं?

यूँ तो दुनिया में हजारों जीव जन्म लेते हैं और अमूल्य मनुष्य पर्याय को सही दिशाबोध के बिना नष्टकर चर्तुगति में भ्रमण करते हैं। हमारे पूज्य बड़े दादाश्री का व्यक्तित्व ऐसा था, जिन्होंने पूज्य गुरूदेवश्री कानजीस्वामी के प्रताप से न केवल दिशा-बोध प्राप्त किया; बल्कि अपने जीवन को तत्त्वज्ञानमय जीया है। इस अवसर पर आदरणीय बड़ी मम्मीजी को भी कैसे भूल सकता हूँ, जिन्होंने दादाश्री के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया। अन्त में आदरणीय बड़े दादाश्री के चरण कमलों में मेरा बारम्बार नमन एवं कोटि कोटि अभिनन्दन! ●

जीवन सुखी कैसे बने यह बात यदि कोई सिखा सकता है तो वह सन्तान की शुभचिन्तक माँ ही सिखा सकती है। एतदर्थ माँ का शिक्षित और संस्कारी होना अत्यावश्यक है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

बड़े हृदय के बड़े दादा

- धर्मेन्द्र शास्त्री (प्राचार्य - मुमुक्षु आश्रम, कोटा)

''बड़े बड़ाई न करें बड़े न बोलें बोल
रहिमन हीरा कब कहै लाख टका मम मोल''

उपरोक्त पंक्तियाँ स्व. पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (आदरणीय बड़े दादा) के व्यक्तित्व पर पूर्णतया घटित होती हैं। आ. बड़े दादा मेरे परिचय में आए उन महान व्यक्तित्व में से हैं, जिन्होंने सबके बीच रहकर अति महत्वाकांक्षी हुए बिना सम्पूर्ण जीवन वह यश, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त किया जो कि महत्वाकांक्षा के पीछे भागने वाले व्यक्तियों को कभी प्राप्त नहीं होता। पुष्प का स्वभाव होता है कि वह अपने अस्तित्व की उपस्थिति को किसी पर थोपता नहीं है; किंतु वह जहाँ होता है, वहाँ के वातावरण को सुगंधमय बना लेता है। आदरणीय बड़े दादा ऐसे ही थे, वे जहाँ रहते थे, उस स्थान के व्यक्तियों को उनके जैसी सहजता में ढाल लेते थे। बड़े दादा के साथ मुझे बहुत समय बिताने का अवसर मिला है। विद्यार्थी जीवन और अध्ययन के दौरान उनको बहुत नजदीक से जानने का अवसर मिला। वहीं उनके द्वारा लिखित साहित्य को पढ़कर उनके अंतरंग की गहराईयों को जानने का अवसर प्राप्त हुआ।

प्रशासक होने के नाते एक प्राचार्य को कठोर हृदय वाला होना चाहिए और कठोर हृदय न भी हो तो झूठ-मूठ कठोरता दर्शाना चाहिए; किंतु बड़े दादा सदैव इससे उलट सहजता और कोमलता के साथ एक कुशल प्रशासक रहे। उनके द्वारा लिए गए अनुशासन, मार्गदर्शन

सम्बन्धी सभी निर्णय हृदय की गहराई से निकले हुए और व्यवहारिक रहे हैं। सदैव उन्होंने दूसरे के बारे में सोचते हुए ही निर्णय लिए, जिनमें कई बार हम अध्यापक तत्काल असहमत होते थे; किंतु बाद में उनके द्वारा लिए निर्णय के दूरगामी परिणाम देखने के बाद संतुष्ट होते थे।

उनका जीवन अंतरंग बहिरंग एकरूपता की मिसाल रहा है। वे सदैव हम सबके लिये आदर्श रहे हैं और रहेंगे। आज भी जब मैं एक महाविद्यालय की जिम्मेदारी सम्हाल रहा हूँ तो यही विचार रहता है कि दादा इसमें किस प्रकार से निर्णय लेते या मार्गदर्शन देते।

आ. बड़े दादा द्वारा लिखित ''संस्कार'', ''इन भावों का फल क्या होगा'' और ''विदाई की बेला'' पुस्तकों में भी कठिन से कठिन समय में धैर्य रखते हुए दूसरे के बारे में विचार करते हुए किसी भी समस्या का समाधान कैसे निकाला जाए, यह दिखाई देता है। उनकी यह सहज विवेकशीलता कार्यक्षेत्र में सदैव काम आती रही है।

मैं सौभाग्यशाली हूँ, जो उनके मार्गदर्शन में मुझे अध्ययन और कार्य करने का अवसर मिला। उनके द्वारा प्राप्त जीवन-सहज शिक्षाएँ सदैव मेरा मार्गदर्शन करती रहेंगी। ऐसे व्यक्तित्व को सदा नमन। ●

उनकी एक छोटी-सी कलम....

– सोनू शास्त्री, सोनगढ़

देह मरे पर मैं नहीं मरता, अजर अमर अविनाशी रूप।
सहजानंदी शुद्ध स्वरूपी, अविनाशी हूँ आत्मस्वरूप।।

जब मुझे सन् 1994 में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश दिया गया, उसके दो वर्ष बाद 1996 में आदरणीय बड़े दादाश्री दशलक्षण महापर्व में प्रवचनार्थ मेरी जन्मस्थली फिरोजाबाद में मोहल्ला छोटी-छपैठी में गए। तब संस्था ने मुझे दादाश्री के साथ उनके सहयोग एवं सेवा के लिए भेजा। मेरा दसलक्षण महापर्व में जाना पहला ही अनुभव था। सभा का संचालन करना, दादाश्री के प्रवचन में से 3 प्रश्न सभा से पूंछना, सांस्कृतिक कार्यक्रम कराना, सभी कुछ करने में बहुत डर लग रहा था। दादाश्री ने जब मुझे डरा हुआ अनुभव किया तो मुझे अपने पास बुलाकर बहुत ही सरलता से, प्यार-दुलार से समझाया और कहा कि तुम डरोगे तो आगे कैसे बढ़ोगे, जिनधर्म की प्रभावना कैसे करोगे, आगे आपको ही तो हमारी तरह ये तत्त्वज्ञान जन-जन तक पहुँचाना है।

जब उन्होंने इतनी प्यारभरी सहजता से समझाया, तब मुझे यह अहसास हुआ कि आपको जिनधर्म के प्रति बहुत लगाव है, साथ ही जो विद्यार्थी तत्त्वज्ञान के लिए महाविद्यालय में आये हैं, उनके प्रति बहुत अपनापन है। उनके इस तरह से समझाने पर मुझे उनके प्रति बहुत अपनापन हृदय में आया।

आदरणीय दादाश्री वास्तव में अद्भुत जादुई व्यक्तित्व थे। उनका समझाया हुआ आज भी मेरे हृदय में ज्यों का त्यों अंकित है।

मुझे यह लिखते हुए कोई संकोच नहीं है कि उनकी सरलता से ही प्रभावित होकर ही मुझे प्रवचन करना आया और आज मैं उनकी ही प्रबल प्रेरणा से तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में कुछ कर पा रहा हूँ और करता रहूँगा। यही मेरे लिये उनकी जीवन्तता है। दादा मेरे पास हैं और रहेंगे। ●

सहजता की प्रतिमूर्ति

– विपिन शास्त्री, सत्पथ फाउन्डेशन, नागपुर

सहजता की प्रतिमूर्ति आदरणीय रतनचंद भारिल्ल जैनदर्शन को जीवन दर्शन बनाने वाले व्यक्तित्वों में से एक थे। उनके लिखे साहित्य से तो उनका जीवन झलकता ही है, पर जिन्होंने प्रत्यक्ष उन्हें देखा होगा, वे भलीभाँति जानते हैं कि उनका पूरा जीवन दर्पण की तरह स्वच्छ रहा है, जिसमें झलकता सब कुछ है पर प्रभावित किसी से भी नहीं होता है। उन्होंने कभी व्यक्त ही नहीं होने दिया के वे एक जाने माने सिद्धहस्त लेखक/कवि/प्राचार्य आदि पदों से विभूषित विभूति हैं उन्होंने तो एक भद्र पुरूष की तरह जीवन जिया। उन्होंने अपनी प्रतिभा को कभी अपने मुख से नहीं गाया और वह प्रतिभा ही क्या जिसे अपने मुख से गाना पड़े।

कहा भी है –

बड़े बढ़ाई ना करें, बड़े ना बोलें बोल।
हीरा मुख सों ना कहे, लाख हमारो मोल।।

मानो ये दोहा उन्हीं जैसे महापुरूषों को देख कर लिखा हो। जघन्य, मध्यम और उत्तम पुरूष बेर, नारियल और किसमिस के समान कहे हैं उनमें से ये किसमिस के समान थे, अंतर बाह्य एक जैसा। कहा जाता है कि मनुष्यगति में मान कषाय की अधिकता है पर वे इसके अपवाद थे ये मेरा निजी अनुभव है उनके साथ, वे मान अपमान में भेद भी न जानते थे ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व के सामने सभी विभूतियाँ फीकी हैं उनको समझना है या उनकी आदर्श जीवनशैली का राज जानना है तो उनके द्वारा लिखित साहित्य को पढ़िये। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, जीवन सें सहजता इसी से आयेगी।

उन्होंने अपना पूरा जीवन एक अलग अंदाज में जिया। एक ऐसा जीवन जिसे बाह्य परिस्थियाँ प्रभावित नहीं कर सकतीं, लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं इसका फर्क नहीं पड़ता, हानि लाभ जिसके लिए समान थे, मंचमाला के आकर्षण से कोसों दूर शायद ही आपको ऐसा व्यक्तित्व आजकल मिले। कभी किसी पर किसी बात का दबदबा नहीं बनाया। दरअसल वे जिनवाणी के लेखन में इतने खोये रहते थे कि बाहर की दुनियां में क्या हो रहा है इसकी उन्हें पड़ी नहीं थी। हम सबके लिए सीखने जैसी चीज ये है कि मंच-माला की आपाधापी से रहित जीवन भी जिया जा सकता है। उन्होने सादा जीवन उच्च विचार वाली कहावत को चरितार्थ किया था।

जब मैं देवलाली प्रशिक्षण शिविर में जयपुर विद्यालय में भर्ती होने के लिये गया, तब शाम को घूमते हुये परिसर में बड़े दादा मिल गये। साथियों ने बताया कि ये ही प्राचार्य हैं, इनसे निवेदन करने पर काम हो जायेगा। जब मैंने निवेदन किया तो उन्होंने पूछा कितने प्रतिशत नम्बर आये हैं? चूँकि मेरे बहुत कम आये थे तो मेरे मुख से अनायास ही निकल गया भगवान बनने के लिये कितने चाहिये? बालक के मुख से यह बात सुन कर हँसकर निकल गये और प्रसाद के रूप में विद्यालय में प्रवेश मिल गया; और जब नजदीक से देखा तो अहसास हुआ कि बिना ताम-झाम के भी जिन्दगी जी जा सकती है। ●

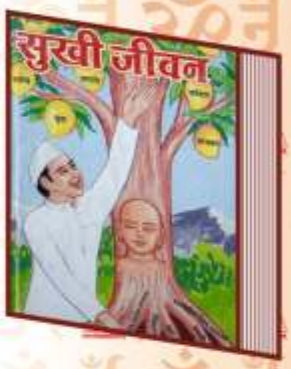

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि – देह में लगे धनुष के बाणों की चुभन से हृदय में लगे व्यंग्य बाणों की चुभन अधिक पीड़ादायक होती है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

जीवन के शिल्पकार

– डॉ. मनीष शास्त्री, मेरठ

आदरणीय बड़े दादा हमारे जीवन के शिल्पकार हैं। इस अभौतिक जीवन को उन्होंने ही गढ़ा है। सच्चा श्रावक तत्त्वज्ञान को तो जीता ही है, साथ-ही-साथ लौकिक जीवन की मर्यादाओं को भी पूरी दृढ़ता से निभाता है। आदरणीय दादा के व्यक्तित्व के अनेक अगणित पहलू हैं। उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ उन्हें एक परिपूर्ण साहित्यकार एवं अनासक्त साधक के रूप में स्थापित करती हैं।

बात उन दिनों की है, जब मैं राजस्थान लोक सेवा आयोग के व्याख्याता पद के लिए आवेदन करना चाहता था। मुझे इसके लिए राजस्थान के स्थाई निवास प्रमाण-पत्र की आवश्यकता थी। चूँकि दादा महाविद्यालय के प्राचार्य थे, यदि वे बतौर प्राचार्य दो पंक्ति मेरे निवास से संबंधित लिख देते तो मेरा काम आसान हो जाता। महाविद्यालय में तो 5 वर्ष रहा ही था, लेकिन स्थायी निवास प्रमाण-पत्र के लिए समय-सीमा कुछ अधिक थी। मैं बड़ी ही सहजता से दादा के पास गया। मैंने जब दादा से हस्ताक्षर करने के लिए कहा तो उन्होंने मना कर दिया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप बड़ी सहजता से कहा कि मैं यह गलत कार्य नहीं करूँगा।

यद्यपि मुझे दादा से ऐसी उम्मीद नहीं थी। वापिस आते हुए मुझे दुख हो रहा था। दादा पर गुस्सा आ रहा था। थोड़ी देर में वह गुस्सा आत्मग्लानि में बदल गया। मैं खुद से नाराज हो गया। गलती मेरी थी। मैंने आखिरकार दादा से ऐसी उम्मीद की ही क्यों? उन्होंने जीवनभर सत्य एवं निष्ठा का पाठ पढ़ाया। यदि वे हस्ताक्षर कर देते तो उस समय भले ही खुशी होती, किन्तु आज मैं उस पल को गौरव के साथ याद नहीं करता; लेकिन उस समय मुझे कुछ पल जरूर बुरा लगा, किन्तु मेरे अंदर दादा का कद और बढ गया। उनका वह इंकार मुझे आज भी प्रेरित करता है। मैं उनका शिष्यत्व पाकर गौरवान्वित हूँ। ●

बोलती तस्वीरें

– शुद्धात्म जैन शास्त्री (निर्देशक-समयसार विद्या निकेतन, आत्मायतन-ग्वालियर)

स्मृतिशेष आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का व्यक्तित्व सरल व सहज था, वहीं उनके कर्तृत्व की ओर ध्यान आकर्षित करें तो आपके द्वारा लिखी गई रचनाओं की शैली भी एकदम सरल, सहज व सुबोध है। आपकी रचनाएं सरल शैली में होने के कारण जनमानस के चित्त पर अद्भुत छाप छोड़ती हैं। सुधी पाठक आपकी रचनाओं को पढते समय सरल भाषा में होने के कारण मानस पटल पर प्रत्यक्ष घटित न होने पर भी चलचित्र की भांति 'बोलती तस्वीरों' की तरह है। रचनाओं में घटित घटनाक्रम प्रत्यक्ष सा दिखाई देता है। अत: चित्ताकर्षक कर देने वाली आपकी रचनाओं को बोलती तस्वीरों की उपमा दी जाये तो आप जैसे सहज लेखक के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ●

मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह बड़े दादा के कारण हूँ

– डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री

प्रदेशाध्यक्ष अ. भा. जैन युवा फैडरेशन, राजस्थान व मंत्री शाश्वत धाम, उदयपुर

विशाल व्यक्तित्व, कवि, नाटककार, निबंधकार, विचारक और दार्शनिक चिंतक बड़े दादा पंडित रतनचंदजी भारिल्ल बहुत ही सरल हृदय होने के साथ जैन सिद्धांतों के पथप्रदर्शक थे। उन्होंने गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के गुजराती भाषा में बोले गए 6 हजार से अधिक समयसार के प्रवचनों को हिंदी भाषा में ग्यारह भागों में प्रकाशित किया। जैनपथप्रदर्शक के कुशल प्रधान संपादक की भूमिका निभाते हुए उन्होंने 56 चर्चित पुस्तकों का स्वलेखन किया। उनकी लेखनी हर वर्ग पर विशेष प्रभाव छोड़ती रही है। उनकी सोच केवल समाज के लिए ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने सामाजिक चित्रण के साथ राजनीतिक विश्लेषक के तौर पर लोगों को सच्चाई से रूबरू कराया है। यही वजह है कि आज उनके परलोक गमन के बाद भी जैन समाज का हर वर्ग उनसे प्रभावित है। इतना ही नहीं, उन्हें आदर्श मानते हुए उनके बताए हुए पदचिह्नों पर बढ़ चला है। दूरदर्शी विचारों के धनी बड़े दादा को भविष्य में भी ये समाज पूजता रहेगा।

मुझे इस जीवन पर गर्व है कि मुझे बड़े दादा की कई अवसरों पर सेवा का मौका मिला। उनके जीवनरूपी शोध कार्य को पूरा कर मैंने इस जीवन को तारने के साथ अगले जीवन को भी सफल बना लिया है। उनकी छत्रछाया में बढ़ाए गए मेरे कदम आज भी धरातल पर होकर आसमान में सेवा भाव को तलाशते हैं। उनकी ही सीख व आशीर्वाद है कि उनकी भावना के अनुरूप आज मैं समाज के साथ जीव दया व जनसेवा में अपने जीवन को समर्पित करते हुए भविष्य को साधुवाद की राह पर ले जा रहा हूँ।

मुझे स्मरण है कि टोडरमल स्मारक छात्रावास में रहते हुए सामूहिक उद्दण्डता के कारण मुझे बाहर किया गया था। तब बड़े दादा ने उदारता दिखाते हुए मेरा बचाव किया था और हमारे बालपन के अपराध को क्षमा योग्य बताते हुए उन्होंने मुखर शब्दों में कहा था कि बच्चे नटखट नहीं होंगे तो कौन होगा। ये उम्र ही है, जब बालमन उद्दंडता की ओर आकर्षित होता है। उनके इस विचार ने मेरा जीवन संवार दिया। यही वजह है कि मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह बड़े दादा के कारण हूँ और आप लोगों के बीच जिम्मेदारी वाले दायित्वों के साथ कदम बढ़ा रहा हूँ। मैं और मेरा परिवार आज उनके चरण कमलों पर श्रद्धांजलि अर्पित करता है। ●

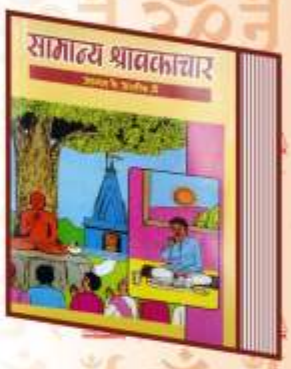

सबसे पहले शास्त्राभ्यास द्वारा हमें तत्त्व निर्णय करना होगा, ज्ञान स्वभावी आत्मा का निश्चय करना होगा, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के यथार्थ स्वरूप को समझना होगा, फिर जो पर की प्रसिद्धि में ही मात्र निमित्त हैं। ऐसी पाँचों इन्द्रियों और मन के विषयों पर से अपनी रुचि को हटाकर आत्म सन्मुख करना होगा। तभी सन्यास एवं समाधि की पात्रता प्राप्त होगी। यहीं से होता है संन्यास एवं समाधि का शुभारंभ।

– पण्डित रतनचंद भारिल्ल

जैसे ज्वर वालों को दूध भी कड़वा लगता है? वैसे ही जिसे अज्ञान का ज्वर चढ़ा हो, कषायों की तपन हो तो उसे सत्य भी कड़वा लगता ही है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

ज्ञानपिपासु

– डॉ. ऋषभ शास्त्री, ललितपुर

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर में प्रवेश हो जाने के उपरान्त ग्रीष्मावकाश में अपने घर ललितपुर आता था। आदरणीय बड़े दादाजी के इकलौते पितृतुल्य जीजाजी श्री गुलाबचंदजी लागोनवाले, जो जगत फूफाजी नाम को प्राप्त थे, अपने जीवन की घटनाओं को बताते हुए कहते हैं कि छोटे दादाजी डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल की बुद्धि तीव्र थी, सो मुरैना पढने के लिये भेजने का निश्चय किया और बड़े दादाजी को कहा कि तुम हमारे साथ ही व्यापार कार्य करो, तब बड़े दादा ने अपने जीजाजी से कहा कि छोटे का ज्ञान उसके साथ रहेगा। मेरा ज्ञान मेरे साथ रहेगा। यदि मुझे पढने का अवसर नहीं मिला तो मैं अपने ज्ञान का विकास कैसे करूँगा? अत: आप मुझे भी मुरैना पढने की स्वीकृति दें। ऐसा कहने पर श्री गुलाबचंदजी ने आपकी ज्ञानपिपासा की ललक जानकर आपको मुरैना विद्यालय में ज्ञानार्जन हेतु भेजा। इससे बड़े दादा की ज्ञानपिपासा के प्रति ललक दिखायी देती है।

कठिन बात को सरलता व सहजता से कहने में बड़े दादाजी का कोई सानी नहीं। प्रवचन कक्ष में नियत समय पर आकर प्रवचन करना व समयसार आदि गम्भीर विषय को सहज जीवन में आने वाले उदहरणों से समझाकर सरल कर देना आपकी विद्वत्ता को प्रदर्शित करता है। स्मारक अध्ययन काल में प्रवचन के बाद बड़े दादाजी के प्रवचनों को सुनकर एक दो छंद उस विषय के बनाकर दिखाता था। बड़े दादाजी उसे देखकर प्रसन्न भी होते थे और लेखन कार्य की प्रेरणा भी देते थे। विद्यालय से लौटने पर भी दादाद्वय को बाहर टेबल कुर्सी पर या ऑफिस में ग्रंथों का स्वाध्याय करते हुए घंटों बैठे देखना सभी छात्रों के लिये आज भी प्रेरणास्रोत है। कहा जाता है कि शिक्षक को यदि कोई बात अपने छात्रों को सिखानी हो तो उसे स्वयं भी अपने जीवन व आचरण में उसका पालन करना चाहिये। बड़े दादाजी इस बात के जीवंत प्रमाण हैं। शिक्षा व ज्ञान प्राप्ति के लिये छात्रावस्था में जो निष्ठा आपके जीजाजी ने आपके बारे में बतायी उसी के अनुरूप सम्पूर्ण जीवन ज्ञानसाधना में तो बिताया ही, जो भी आपके सम्पर्क में आया उसे भी सहज रूप से ज्ञान प्राप्ति हेतु स्वाध्याय के लिये प्रेरित किया। स्मारक से मुझे सबसे ज्यादा सहजता से जीवन जीने की जो प्रेरणा मिली वह बड़े दादा व बड़ी मम्मीजी की ही देन है। शादी के समय स्मारक आमंत्रण पत्र भेजा तो बड़े दादाजी का आशीर्वचनरूप गृहस्थ जीवन में प्रवेश का पत्र आया। मैं बड़े दादाजी का अपने प्रति यह प्रेम जानकर अभिभूत हो गया कि दादाजी अपने छात्रों के प्रति कितना प्रेम रखते हैं। दादाजी के जीवन ने मेरे जीवन में अनेक प्रसंगों पर मुझे प्रेरणा दी है। उनके जन्मदिवस पर वर्तमान छात्रों से यही कहूँगा कि वे भी दादाजी की तरह ज्ञानपिपासु हो स्वाध्याय के लिये लगनशील हों, अपना विवेक जागृत कर स्वकल्याण के साथ जगत कल्याण में सहभागी बनें। ●

संयोगों में न तो सुख है और न दु:ख ही है। सांसारिक सुख-दु:ख तो संयोगी भावों से होता है, संयोगों में इष्ट-अनिष्ट कल्पनाएँ करने से होता है। संयोगों में वस्तुत: सुख है ही कहाँ, वह तो सुखाभास है, दु:ख का ही बदला हुआ रूप है। वास्तविक सुख का सागर तो अपना आत्मा ही है।

– पण्डित रतनचंद भारिल्ल

बहुत याद आएँगे 'बड़े दादा'

– डॉ. प्रवीणकुमार शास्त्री, ध्रुवधाम

परतन्त्र भारत में 21 नवम्बर 1932 को जन्म लेकर देश के स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही जिनके अंदर कण-कण की स्वतंत्रता को बताने वाले अध्यात्मरूप अमृत का बीजारोपण हुआ ही था कि इतने में सन् 1956 में अध्यात्म की गंगा को बहाकर तत्त्व पिपासुओं के सन्मुख लानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री के सत्समागम से वह बीज एक वटवृक्ष के रूप में परिणत होने के उन्मुख होकर इतना फैला कि उसमें सामान्य श्रावकाचार, षट्कारक, द्रव्यदृष्टि, समाधि साधना और सिद्धि आदि फलों के उद्भूत होने से वह संसार दु:खों से संतप्त प्राणियों के संताप को दूर करने हेतु एक विशाल छाया का केन्द्र बन गया।

पर क्या पता था कि उस अध्यात्म वृक्ष को पल्लवित व पुष्पित करनेवाला वह व्यक्तित्व, उस वृक्ष की तलहटी में बैठे अध्यात्मरसिकों को 'णमोकार महामंत्र' व 'संस्कार' से लेकर 'पर से कुछ भी संबंध नहीं' व 'इन भावों का फलों' का ज्ञान कराता हुआ 12 नवम्बर 2019 को पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल नामधारी 87 वर्ष तक संयोग में रहने वाली मिट्टी की नश्वर काया को मिट्टी में ही समर्पित करके यथा नाम तथा गुण को प्रकट करने हेतु वैदेही होने के संकल्प को धारण करता हुआ संबंधियों को 'विदाई की बेला' का अवसर देकर मोहियों को 'ये तो सोचा ही नहीं' का भाव पैदा करके तत्त्वाभ्यासियों के लिए 'सहजता-दिवस' मनाने का संकेत देकर अदृश्य हो गया।

वह ऐसा व्यक्तित्व जो किशमिश-दाख के समान, जितना बाहर से नरम, उतना ही अंदर से नरम था। जिनकी सरलता और सहज निश्छल मुस्कान, मित्र तो क्या कदाचित् शत्रुपक्ष पर अपना प्रभाव छोड़े बिन नहीं रह सकती थी। उनका स्फटिकवत् पारदर्शी व्यक्तित्व उस खुली किताब की तरह था, जिसके पन्ने-पन्ने को पलटनेवाला हरेक व्यक्ति उनके आडम्बर-विहीन चरित्र को बखूबी पढ सकता था।

यदि उनके जीवन की घटनाओं पर दृष्टिपात करें तो कहने में कोई संकोच नहीं कि वे एक आधुनिक महापुरुष ही थे। वे समाज के लिए एक प्रेरणादायी व्यक्तित्व, शिष्यों के लिए आदर्श गुरु, पत्नि के लिए एक वास्तविक धर्मपति, पुत्र के लिए जिम्मेदार पिता तथा प्रपौत्र के लिए सच्चे अर्थों में सबकुछ देने वाले अति प्रिय दादा थे।

उनके जीवन के संघर्ष की कहानी भी किसी महापुरुष से कम नहीं थी। वे स्वयं नौ भाई-बहिन होकर बचपन में ही पाँच का देह परिवर्तन पण्डित बनारसीदासजी के घटनाचक्र को दोहरता हुआ-सा प्रतीत होता है।

इसीतरह बढ़ती उम्र में उतार-चढाव से संयुक्त जीवन की कहानी भी प्रेरणा की मूर्ति है। पढ़ाई की कठिनाई के साथ आजीविका हेतु कभी भीलवाड़ा तो कभी मुरैना, फिर ग्राम पंचायत का चुनाव लड़ना, उसमें जीतना, पुन: बबीना में निजी व्यापार, फिर अशोकनगर में निजी 'भारिल्ल विद्या मंदिर' नाम से स्कूल चलाना, फिर उसे छोड़कर अन्य स्कूल में अध्यापक; फिर कोटा में अकलंक विद्यालय में अध्यापन, उसके पश्चात् खुरई, फिर अशोकनगर और फिर 17 वर्षों तक विदिशा में शासकीय सेवा - यह सब उनका व इसीतरह

जैनतत्त्व जितना सूक्ष्म है, उसे समझने के लिए अपने उपयोग को भी उतना ही सूक्ष्म-पैना करना आवश्यक है, अन्यथा बात माथे के ऊपर से ही निकल जाती है, कुछ हाथ नहीं लगता।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

उनके परिवार का भी संघर्षमय घटनाक्रम रहा है।

इसके पश्चात् सन् 1979 से 2019 तक 40 वर्षों का उनका स्वर्णिम युग रहा है। इन दिनों उनकी साहित्य साधना, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर में प्राचार्यत्व, प्रशासन, अध्यापन, तत्त्वप्रचार हेतु गाँव-गाँव में भ्रमण - इससे उनकी कर्मठता व कार्यकुशलता का परिचय स्वयं ही प्रकट होता है।

इतना ही नहीं वे एक प्रवचनकार, जैनपथप्रदर्शक के संपादक के रूप में सफल पत्रकार, कथाकार, उपन्यासकार, गुजराती में लिपिबद्ध प्रवचनरत्नाकर के 11 भागों के हिन्दी में रूपान्तरण करनेवाले अनुवादक, पद्यरचना करनेवाले होने से कुशल कवि भी थे।

इसके अतिरिक्त उनका अपने परिवार के प्रति मोहरूप प्रेम कम; किन्तु तात्त्विक प्रेम अगाध था। उन्होंने पूरे परिवार को धर्म मार्ग में लगाया, उनके छोटे भाई आदरणीय छोटे दादाजी (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल) के प्रति उनका अपनत्व तो मानो दो देह एक आत्मा का था।

उनके प्रति जितना लिखूँ उतना कम है। मैं स्वयं उनके सान्निध्य में 13 साल रहा। 5 वर्ष अध्ययन के व 8 वर्ष उनके सान्निध्य में अध्यापन के, बहुत कुछ सीखा। अब मैं ध्रुवधाम संस्था में हूँ तो यहाँ पर कार्य करते हुए भी उनका मार्गदर्शन बना रहा।

ऐसे इस महान व्यक्तित्व का जब-जब स्मरण होता रहेगा तब-तब उनके द्वारा दिए गए मार्गदर्शन, निर्देशन सदा ही प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। साथ ही उनके द्वारा लिखित विविध प्रकार का साहित्य लौकिक जीवन व धार्मिक जीवन हेतु मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

इतने बड़े महान व्यक्तित्व के लिए आगामी अभ्युदय की मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति की भावनाएँ क्या काम करेंगी; किन्तु ज्यादा नहीं तो उस चिड़ियावत् तो अवश्य काम करेंगी, जिसने जंगल में लगी आग को पानी की एक बूँद से बुझाने के प्रयास में अपना नाम इतिहास के पन्नों में आग बुझानेवालों की पंक्ति में अंकित कर लिया था।

अंत में बस इतना ही -

अरे! महान व्यक्तित्व के धनी, मेरे जीवन शिल्पी,
तुमको न भूल पायेंगे, दिया जो आपने है इतना कि
जीवन के हरेक प्रसंग में, 'बड़े दादा' बहुत याद आएँगे। ●

सुखी जीवन : एक सार्थक कृति

- प्रमोद जैन शास्त्री, शाहगढ़

जैनदर्शन के सिद्धान्त मानसिक तर्क-वितर्क और बौद्धिक व्यायाम के साधन न होकर तथा मात्र पारलौकिक सुख का प्रलोभन देने वाले न होकर इस लोक के व्यावहारिक जीवन में भी प्रतिपल शान्ति और सुख का संचार करने वाले हैं। इसी का सफल प्रयोग है - 'सुखी जीवन'।

'सुखी जीवन' की नायिका के रूप में प्रस्तुत कर विविध कलाओं में पारंगत कला संकाय की छात्रा 'सरला' को एक विज्ञान संकाय के छात्र 'निजानन्द' द्वारा अपने विज्ञान (वीतराग-विज्ञान) के माध्यम से कला (ज्ञानकला) की शिक्षा दिया जाना कृतिकार की विलक्षण प्रतिभा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को तो दर्शाता ही है, कृति का प्रतिपाद्य भी इससे अधिक रुचिकर व

उपादेय बन जाता है।

आत्मा-परमात्मा की समानता-असमानता की गुत्थी में उलझी उपन्यास की नायिका सरला द्वारा 'मम स्वरूप है सिद्ध समान' और 'अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग मैं राग वितान' के माध्यम से स्वप्न में ही द्रव्यस्वभाव और प्रगट की यथार्थता को समझ लेना वास्तव में उसके इहलोक और परलोक के सुखी जीवन का विस्मयकारी संकेत है, जो कि कृति की सार्थकता का परिचायक है।

प्रस्तुत कृति जहाँ एक ओर आदर्श दाम्पत्य जीवन का सुन्दर नमूना पेश करती है, वहीं दूसरी ओर बातों ही बातों में धर्म के मूल स्वरूप से भी पाठकों को अवगत करा देती है। ''अग्नि को उष्ण और बर्फ को ठण्डा रहने के लिए जिसप्रकार कुछ नहीं करना पड़ता, उसीप्रकार आत्मा को धर्मात्मा बनने के लिए भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।'' इस सन्दर्भ में लेखक का तर्क दृष्टव्य है - ''व्यक्ति शान्त तो जीवन भर रह सकता है, पर क्रोध लगातार आधा घण्टा भी नहीं कर सकता; क्योंकि शान्त रहना स्वभाव है और क्रोध करना विभाव।''

वजन तौलने वाली ऑटोमेटिक मशीन और कम्प्यूटरीकृत आरक्षण टिकिट के उदाहरणों के माध्यमों से स्व-संचालित विश्वव्यवस्था का स्पष्टीकरण कर्तृत्व के अहंकार में डूबे लोगों को बरवश ही अकर्तावाद की ओर आकर्षित कर लेता है; फलतः उनके मन की चिन्ताएँ और तनाव स्वयमेव नदारद हो जाते हैं तथा व्यक्ति के शान्त रहने रूप स्वभाव की अभिव्यक्ति सहज ही होने लगती है।

बाल गंगाधर तिलक का 'स्वाधीनता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा तो इस मानव जीवन में ही परतंत्रता से मुक्ति दिलाने की दिशा में प्रयास था; परन्तु प्रस्तुत कृति तो 'स्वतंत्रता न केवल जन्मसिद्ध अधिकार है; बल्कि अनादि सिद्ध अधिकार है' कहकर अनन्तकाल के लिए पराधीनता से मुक्ति दिलाते हुए चिरन्तन सुख की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके साथ-साथ पाँच लब्धियों और पाँच समवायों का निरूपण स्वयं ही स्व-सन्मुख पुरुषार्थ की ओर अग्रेसित करता है।

चार अभाव के प्रकरण में तो स्वाधीनता व स्व-सन्मुखता मुखर ही हो उठती है - ''चार अभावों को समझने से स्वाधीनता का भाव जागृत होता है, पर से आस की चाह समाप्त होती है, भय का भाव निकल जाता है, भूतकाल व वर्तमानकाल की कमजोरी और विकार देखकर उत्पन्न होने वाली दीनता समाप्त हो जाती है और स्व-सन्मुख होने का पुरुषार्थ जागृत होता है।''

समाधि के प्रसंग में तो कृतिकार ने सारे उपदेशों को मथकर मानों नवनीत प्रस्तुत कर दिया है - ''तत्त्वों का मनन, मिथ्यात्व का वमन, कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन, आत्मा में रमण - ये ही समाधि के साधन हैं। मरणकाल में वस्तुस्वरूप के चिन्तन से साम्यभाव पूर्वक देह को विसर्जित करके मरण को समाधि मरण में और मृत्यु को महोत्सव में परिणत किया जा सकता है'' - यह पढ़कर तो सुखी जीवन की खोज में निकले पथिक की रही-सही चिन्ता भी दूर हो जाती है। अनुभवी लेखक द्वारा प्रस्तुत कृति में वर्णित सिद्धान्तों को आत्मसात् करके न केवल वह पथिक अपने कण्टकाकीर्ण पथ को शान्ति-पुष्पों से सुरभित बना सकता है, अपितु समाधि रूपी नौका में बैठकर अपनी चिरकालीन सुखी जीवन की मंजिल को भी पा सकता है। ●

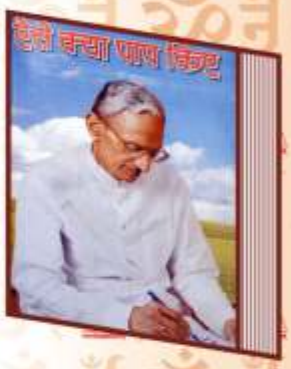

यह आत्मा अमूल्य चैतन्य चिन्तामणि है। बस, इसे जानते-देखते रहो और आनन्द लेते रहो। मात्र यही करना है, इसके सिवाय कुछ नहीं करना है। यही आत्मा का स्वरूप है, काम है और यही आत्मा का धर्म है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सरल स्वभावी दादाजी

– श्रीमन्त नेज शास्त्री, जयपुर

'पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल' ये शब्द मेरे लिए अभ्यस्त नहीं है, मेरा परिचय तो बड़े दादा से है। बड़े दादा इस शब्द में आत्मीयता और अपनापन भरा है। आज भी मेरे स्मृति पटल पर उनकी छवि बड़े दादा के रूप में है। दादा शब्द भले ही गंभीरता और कठोरता को सूचित करता हो, पर मेरे लिए बड़े दादा सरलता और सहजता के प्रतीक हैं। मेरा दादा से प्रथम परिचय १९९६ के जयपुर प्रशिक्षण शिबिर में हुआ। दादा से जुड़ना विद्यार्थी, अध्यापक, भोजनशाला प्रभारी एवं वीतराग-विज्ञान (कन्नड) के प्रबन्ध संपादक के रूप में रहा है। हर रूप में मुझे उनसे सीखने को मिला है। विद्यार्थी के रूप में उनकी सरलता, अध्यापक के रूप में गहनता, भोजनशाला प्रभारी के रूप में अनुशासित सहजता और प्रबन्ध संपादक के रूप में लेखन और पाठन कौशल सीखने को मिला है। आज भी दिवंगत दादा मुझे मेरे हर कार्य में प्रेरणा प्रदान करते हुये प्रतीत होते हैं।

वर्तमान को आपकी आवश्यकता - वर्तमान में आपका जो स्वभाव है सरलता, विनम्रता, समर्पणपना, धैर्यपना एवं संयमता की बहुत आवश्यकता है। जैसे हमारे अग्रजगण लोग हमसे बिछुड़ते जा रहे हैं, उसी प्रकार से सरलता, विनम्रता, समर्पणपना, धर्यपना, संयम और वात्सल्यभाव भी बिछुड़ते जा रहे हैं। आप जैसे लोगों के जीवन से प्रेरणा लेने की बहुत ही आवश्यकता है।

संस्मरण में तो बहुत अधिक हैं; परन्तु हर उस बात को कहना और लिखना सम्भव नहीं होता। बड़े दादा जब तक रहे, तब तक वे हमारे परिवार जैसे ही रहे। इसलिए हमारे परिवार की ओर से सादर वंदन। वे शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण करें - इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ। ●

निश्छलता की जीवंत मूर्ति

– निलय शास्त्री, आगरा

सरल व सहज व्यक्तित्व के धनी आदरणीय बड़े दादा पंडित रतनचंदजी भारिल्ल की विद्वत्ता से मुमुक्षु समाज जितना अधिक लाभान्वित हुआ है उससे कई गुना अधिक उनकी सरलता से प्रभावी रहा है। निश्छलता की जीवंत मूर्ति आदरणीय दादा की हंसमुख मुद्रा सदा यह दर्शाती कि जो हृदय में है वही बाह्य में। वर्तमान में वाणी से प्रभावना करने वाले तो बहुत हैं पर दादा द्वारा वाणी ही नहीं अपनी संपूर्ण जीवन शैली के द्वारा ही प्रभावना की गई है। बहुत क्या कहें परंतु यदि हम उनके सच्चे शिष्य हैं और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहते हैं तो उनकी सरलता हम सभी अपने जीवन में लाने का प्रयास करें यही उनको सच्ची श्रद्धांजलि है। ●

थे बोल में सुन्दर सहज

– सौरभ शास्त्री, फिरोजाबाद

मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे ऐसे महान व्यक्ति के सान्निध्य में अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित होने का अवसर मिला, जो सरलता की प्रतिमूर्ति थे, जिनकी सरलता सहजता की मैं क्या बात करूँ, उनकी सरलता सहजता सर्वविदित थी। ऐसे सहजता की प्रतिमूर्ति श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य थे, जिनके सान्निध्य में सहस्राधिक शास्त्री विद्वान तैयार होकर जैन समाज में तत्त्वज्ञान की सुगन्ध बिखेर रहे हैं। बड़े दादा की लेखनी ने अनेक भूले-भटकों को मार्ग दिखाया है। उनकी लेखनी से निकली विदाई की बेला, इन भावों का फल क्या होगा, शलाका पुरुष, हरिवंश कथा आदि कृतियों ने हमें आगम को समझने के लिये प्रेरित ही नहीं बाध्य किया है। कथा साहित्य ही नहीं निमित्त-उपादान जैसे विषय भी दादा की लेखनी से इतने सरल हो गये कि वह आसानी से हृदयंगम कर सकते हैं। दादा ने जिनपूजन रहस्य के माध्यम से जिनपूजन के सही स्वरूप को बताकर वास्तविक पूजन विधि से अवगत कराया।

दादा की इस प्रथम पुण्य तिथि पर मैं अपने श्रद्धा के आवेग को रोक नहीं पा रहा हूँ। सरलता व सहजता की प्रतिमूर्ति आदरणीय बड़े दादा जैन जगत रूपी आकाश में ध्रुव तारे के समान चमक रहे हैं - इन चन्द शब्दों से मैं उन्हें हार्दिक वन्दन, नमन, अभिनन्दन एवं श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

थे बोल में सुन्दर सहज, उर में प्रेम का वास था।
तेज में सूरज तो हँसी में चांद का उपहास था।। ●

बड़े दादाश्री का व्यापक प्रभाव

– डॉ. सचिन्द्र जैन शास्त्री (सम्पादक-मंगलायतन पत्रिका)

आदरणीय श्रद्धेय बड़े दादाश्री हमारे गुरु, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्यतम शिष्यों में से एक हैं। जिन्होंने अनादि सर्वज्ञ परम्परा से प्राप्त वाणी के अनुस्यूत प्रवाहक्रम से प्राप्त तत्त्वज्ञान को सरल-सुबोध लेखनी चाहे वह - संस्कार, इन भावों का फल क्या होगा, विदाई की बेला, शलाका पुरुष, हरिवंश कथा, प्रवचन रत्नाकर सम्पादन, साधु समाधि सल्लेखना, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं... आदि साहित्य से जगतभर के पाठकों को प्रभावित किया।

प्राचार्य के रूप में नन्हें मिट्टी के ढेलों को गढ़कर परिपक्व घड़े के रूप में तैयार किया। शिष्य अवस्था में होने से, मन की चंचलता और चित्त की अस्थिरता के कारण कभी विषय को पूरा ग्रहण नहीं कर पाये; परन्तु इसे मैं आज आश्चर्य कहूँगा कि आदरणीय बड़े दादा के उदाहरणों की बात हम एकटक सुनते थे। पता नहीं वह उनके चेहरे का तेज था या उनके अन्तस की आवाज थी अथवा उनका निर्मल व्यक्तित्व था या समझाने की अद्भुत शैली थी। उनके सारे उदाहरण मुझे आज भी याद हैं और मैं स्वयं प्रवचनों में बड़े दादा के उदाहरण देता भी हूँ।

मुझे व्यक्तिगत भी आदरणीय बड़े दादा के सरल स्वभाव का लाभ हुआ है। जब मैं टोडरमल स्मारक के स्वागत कक्ष में कार्यरत था तो सायंकाल के समय दादा एवं बड़ी मम्मी स्वागत कक्ष में अपनी सरलता के पुष्पों की सौरभ से मुझे सुगन्धित करते थे। यह उनका उपकार जीवनभर रहेगा। ●

जिसप्रकार मणियों की माला मात्र देखने, पहिनने और आनन्द लेने की वस्तु है; उसीतरह यह भगवान आत्मा अमूल्य चैतन्य-चिन्तामणि, केवल स्वयं को जानने-देखने, स्वयं में जमने-रमने और अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति करने योग्य परम पदार्थ हैं। बस, इसे ही जानते रहे और आनन्द लेते रहे।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

जब कोई फूल मेरी शाख ए हुनर पर निकला

– अंकुर जैन, भोपाल

एक मशहूर उर्दू का शेर कुछ यूं है...

मैंने उस जान ए बहारां को बहुत याद किया।
जब कोई फूल मेरी शाख ए हुनर पर निकला।।

ज़िंदगी के अनेक पड़ावों को पार करते हुये और एक अदद मयस्सर मुकाम को तांकते हुये हम बहुत कुछ मुकम्मल पा जाते हैं और बहुत कुछ नहीं भी पा पाते हैं। जब कुछ पा जाते हैं तो अपने ही हुनर के गुमान में चूर हो उन अनेक दरख़्तों को भूल जाते हैं जिनके अक्स का कतरा-कतरा संजोकर हम वो बन पाते हैं जो हम आज हैं। असल में हम खुद में उन अनेक शख्सियतों को ज़िंदा रखे होते हैं जिनके कतरा-कतरा योगदान से हम वो बन सके हैं जिसे देख दुनिया कभी हमारे फ़न पर तालियां बजाती है तो कभी हमारे इल्म को देख तारीफ में कसीदे गढ़ती है।

बड़े दादा, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल। बड़े और दादा ये दोनों ही शब्द अपने-अपने अर्थों में गुरुत्व को संजोये हुये हैं और जब ऐसे गुरुत्व से लबरेज दो शब्द एक ही शख्स का पर्याय बन पड़े हों तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति के गुरुत्व को बयां करना कितना मुश्किल काम है। गुरुत्व के पैमाने सिर्फ ऊंचाईयों से आंकना बेमानी माना जाना चाहिये.... कई मर्तबा गहराईयां भी बड़े होने का प्रतीक होती हैं। मसलन, यूके लिपटस के पेड़ भले बरगद से ऊंचे हो सकते हैं लेकिन बरगद की गहराईयां और उसकी गुरुता को कभी किन्ही वृक्षों की तात्कालिक ऊंचाईयों से नहीं आंका जा सकता। बस कुछ यूं ही समझ लीजिये कि हो सकता है कि कई पैमानों पर बड़े दादा के व्यक्तित्व में वो ग्लैमर नजर न आये जिसे देख जमाने का तालियां पीटने को दिल करता हो लेकिन उनके व्यक्तित्व में एक अदद कल्चर के दर्शन आपको हमेशा होंगे जो सदाबहार एक सौंधी-सौंधी महक बिखेरता हुआ नजर आयेगा। और यकीन मानिये जब ग्लैमर सोने की लंका की तरह कहीं गुमान में अपनी आहें भर रहा होता है तब कल्चर किसी शांत वन में रोशन होती कुटिया में सांस ले रहा होता है। और इतिहास गवाह है कि सोने की लंका जल जाती है और वन की वो शांत कुटिया तुफानों के बीच भी जीवंत बनी रहती है। बड़े दादा की ऐसी ही गहराई उन्हें काबिल ए गौर बनाती है।

बात फिर वहीं ले जाता हूँ जहां से शुरु की थी कि आज हम जहां भी जो कुछ भी हैं उसमें बड़े दादा के अक्स को भुला पाना शायद मुमकिन नहीं होगा। विषमताओं के बीच धैर्य का जीवंत पाठ पढ़ाता कोई गुजरा दरख्त आंखों के सामने यदि जब तब उभरता है तो वो हैं बड़े दादा। अपेक्षा अथवा उपेक्षा के भंवर के बीच भी कोई गर अपनी सौम्य मुस्कान को एक सम बनाये रखता था तो वो हैं बड़े दादा। आगम के अथाह समंदर में गोते लगाकर तलाशे गये गूढ़ गलियारों की बजाय, जो लोगों को सुख के सरल राजमार्ग का तार्रुफ कराता था तो वो हैं बड़े दादा। अपनी संभावनाओं को जानते हुये भी जो अपने दायरों को समझ सदा किसी दूसरे के व्यक्तित्व पर अतिक्रमण करने से पहरेज करते रहे हैं वो हैं बड़े दादा। जो कभी त्याग का, कभी प्रेम का, कभी साम्य का तो कभी करुणा का पर्याय बन हम सबके सामने आते हैं वो हैं बड़े दादा। ऐसी तमाम खूबियां गिनाने के बाद भी हम उस व्यक्तित्व को संपूर्णतः बयां कर दें ये आसान नहीं है। और यकीन मानिये ये ऊपर गिनाई गईं कुछेक खूबियों में से यदि कुछ हमारे जीवन का भी हिस्सा बन सकी हैं तो उसका सबसे बड़ा कारण रहा है उस महान् दरख्त की छाया में हमारा भी पल्लवित होना। हम जहाँ और जैसे बड़े होते हैं दरअसल वैसे ही गढ़े होते हैं।

बड़े दादा के प्राचार्यत्व में टोडरमल स्मारक में अध्ययन करते हुये हमने जीवन का वो समय गुजारा है जिस वक्त में एक बालक से युवा होते हृदय पर सबसे ज्यादा अपने परिवेश का प्रभाव पड़ता है। इसलिये मैं या मेरे जैसे अन्य सैंकड़ों छात्रों पर ताउम्र बड़े दादा का प्रभाव जिंदा रहने वाला है या यूं कहें कि हममें कहीं किसी कोने में बड़े दादा ही जी रहे हैं।

बड़े दादा के अन्य तमाम अवदानों पर अनेक बातें कही गई हैं उन्हें दोहराना मेरे लिये अभीष्ट नहीं है। मैं तो उन्हीं अवदानों में से एक का जिक्र यहां पुनः कुछ अलग दृष्टिकोण से करना चाहूंगा कि परछाई होकर भी अपने हमसाये से कोई होड़ न करना कितना चुनौतीपूर्ण और कितने महान् आदर्श को दर्शाता है। राम की परछाई लक्ष्मण का हो जाना फिर भी बहुत आसान है या अकलंक के लिये निकलंक के बलिदान देने जैसे प्रसंग भी अनेक देखने को मिल जायेंगे। लेकिन क्या कभी ऐसे उदाहरण गिनाये जा सकते हैं कि लक्ष्मण के हुनर को बढ़ाने के लिये राम परछाई हो गये हों या बृहद हितों को ध्यान में रखते हुये अकलंक ने निकलंक के लिये त्याग किया हो। चीज़ें सुनने और समझने में हो सकता है बहुत आसान जान पड़े; लेकिन इस परिस्थिति के तल में जाकर विचार किया जाये तब शायद हमें बड़े दादा की गुरुता का अंदाजा लग सके। ताउम्र श्रेय लेने में पीछे रहने वाले और चुनौतियों के सामने आगे रहने वाले बड़े दादा, एक ऐसे राम की तरह रहे हैं जिसने वृहदतर हितों को ध्यान में रखते हुये लक्ष्मण की परछाई बनने में कभी खुद के अहम् को आड़े आने नहीं दिया। वे ऐसे अकलंक रहे हैं जिसने निकलंक की प्रतिभा को भांप उसे बड़े फलक पर फैलने के लिये परवाज प्रदान किये। यकीनन छोटे दादा यानि आदरणीय डॉक्टर हुकुमचंद भारिल्ल का निर्माण उनकी अपनी लायकात से ही हुआ है लेकिन उपलब्धियों के गगन में अपने हुनर के पंखों से उड़ान भरने वाले छोटे दादा को माकूल आबो-हवा प्रदान करने में बड़े दादा के योगदान को कतई कमतर नहीं माना जा सकता। यदि हम ये कहें कि बड़े दादा न होते तो शायद छोटे दादा का भी वो व्यक्तित्व हमारे सामने न आता जो समाज के एक बड़े तबके को दिशा देने वाला बना।

और जैसा मैंने इस लेख में पहले भी जिक्र किया कि अपनी कृतियों में भी बड़े दादा ने आगम के गूढ़ गंभीर सिद्धांतों को समझाने के लिये पेचीदा गलियारों का सहारा नहीं लिया बल्कि जनता की नब्ज को टटोलकर उन्हें आधुनिक अंदाज में मिठाई के भीतर रखी रोगमुक्ति की दवाई का आस्वादन कराया। बड़े दादा का न होना, उस महान परंपरा के अस्तित्व से भी इंकार की तरह होगा जिसकी सफलता की नई नई इबारतें गढ़कर हम इस कामयाबी पर इतरा रहे हैं। बड़े दादा किसी महान् पुस्तक के उस अहम् वरक़ की तरह हैं जिसे निकालकर पूरी किताब के मायनों को समझना ही हमारे लिये मुमकिन न होगा।

बहुत क्या कहें... आपकी कृतियां ही आपका व्यक्तित्व हैं। और जिन्होंने अपने अंतस में बसे सैंकड़ों मनोभावों और विचारों को अपनी कृतियों के जरिये साकार किया है उन्हें समझने के लिये तो इन कृतियों का ही आस्वादन करना श्रेष्ठतम होगा। किसी एक लेख में आपके व्यक्तित्व को समेट सके ऐसी किसी कलम में ताकत नजर नहीं आती। एक जीता जागता इंसान अपने आप में खुद किसी विशाल पुस्तकालय से कम नहीं होता और यदि वो इंसान बड़े दादा जैसे विराट व्यक्तित्व को लिये हो तो उसे भला और किन उपमाओं से दर्शाया जा सकता है और भला कैसे किसी लेख की चंद पंक्तियो में समेटा जा सकता है।

जन जन को **संस्कारों** का दिग्दर्शन दे, दुर्भावों से बचाने के लिये **अपने भावों का फल** दिखा आपने सम्यग्दर्शन का मार्ग प्रशस्त किया है। आपने **विदाई की बेला** से पहले ही ये विचारने की शक्ति दी है कि जीवन में हमने **ऐसे क्या पाप किये** जिससे **सुखी जीवन** दूभर हो गया। **समाधि और सल्लेखना** की विधि बताकर निरंतर द्रव्यदृष्टि को पुष्ट किया। ऐसे सुअवसर

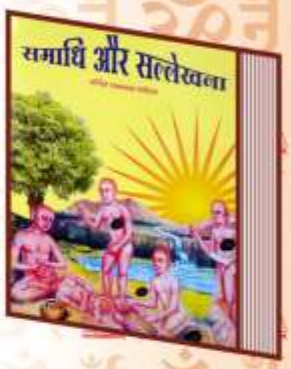

वस्तु जैसी होती है, वैसी दिखती नहीं; जैसी दिखती है, वैसी परिणमती नहीं। वस्तु है स्वतंत्र, स्वाधीन और दिखती है परतंत्र, पराधीन, निमित्ताधीन। वस्तु दिखती है निमित्ताधीन और परिणमित होती है स्वाधीन अपने-अपने स्वकाल में अपने स्व-चतुष्टय से।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

मिलने के बाद भी **यदि चूक गये तो** ऐसी दशा से भी आपने सचेत किया जिसके बारे में **हमने सोचा ही न था**। जैनदर्शन के **नींव के पत्थरों** का परिचय कराकर आपने इस अमिट सिद्धांत को हमारे हृदयों में अंकित किया जो **पर से कुछ भी संबंध नहीं** का पाठ हमें पढ़ाता है। **शलाका पुरुषों, हरिवंश** के नायकों और **जम्बूस्वामी** जैसे महान आदर्शों की कथायें बताकर हमें **चलते फिरते सिद्धों जैसे गुरुओं** के पथ पर ही आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। **णमोकार महामंत्र, पंचास्तिकाय, श्रावकाचार** और **जिनपूजन** आदि के रहस्यों को समझाकर हमें **जिन खोजा तिन पाईयां** के लिये उत्साहित किया।

वास्तव में आपको जानना, आपको पढ़ने से ही संभव है। इन आलेखों के आलोक में आपकों कदाचित देखा तो जा सकता है पर समझा नहीं जा सकता। खुद के जीवन को देख बस इतना ही कह सकता हूँ कि जीवन की तमाम उपलब्धियां और खुद में सहज ही गढ़ी गई विशेषताओं की बुनियाद आप ही हो। आपको संपूर्णतः अलग कर मैं शायद खुद को भी निहार पाने में असफल ही रहूंगा। हालांकि आपके पढ़ाये अनेक पाठों में से स्वावलंबन, आत्मबल और आगमबल के पाठ भी समाहित हैं। ऐसे में भले हम भेदविज्ञान की राह में स्वावलंबी होकर आगमबल से आत्मबल पाने की ओर अग्रसर हैं; लेकिन यदि इस उपलब्धि को भी हम पा गये तो उसमें भी आपके योगदान को विस्मृत करना बहुत बड़ी गुस्ताखी होगी।

आखिर में इन पंक्तियों से आपको स्मरण कर अपने श्रद्धासुमन अर्पित करूंगा।

तुम्हारे जाने से एक वरक़ पलट गया।
वो एक आसमां कहीं से सरक गया।। ●

ऐसी सरलता और कहाँ?

– विवेक शास्त्री, इन्दौर

मैं ये दावा नहीं करता कि मैंने उन्हें बहुत देखा है, पर जितना भी मैंने अपने जीवन में देखा है, बड़े दादा जैसी सरलता कहीं और नहीं देखी।

मेरा स्मारक में प्रवेश बड़े दादा के कारण ही हुआ था। मैं तब खुश भी हुआ और दादा से प्रभावित भी, जिनके कारण मुझे शास्त्री बनने का सौभाग्य मिला; पर जब मैं टोडरमल स्मारक में पढ़ने आया था, तब घर छोड़ने का बहुत दुःख था और होगा भी क्यों नहीं; एक 16 साल के बच्चे को घर से दूर रहना कितना कष्टसाध्य कार्य है, यह तो वही जान सकता है जो घर से दूर रह रहा हो। स्मारक में कुछ दिन बीतने के बाद जब बड़े दादा से फिर से मिलने, उनसे पढ़ने का अवसर मिला तो बहुत आनंद आया। अब मुझे घर छोड़ने का दुःख नहीं था; क्योंकि अब मुझे स्मारक में पूरा परिवार मिल गया था और परिवार के सबसे बड़े सदस्य थे बड़े दादा। इनका आत्मीय स्नेह हम सब छात्रों को हमेशा मिला। बड़े दादा वे व्यक्ति थे, जिनसे मिलने वाला व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। दादा में ऐसी अनेक विशेषताएं थीं, जो उन्हें सामान्य से विशेष बनाती थीं। सादगी उनके जीवन का सौंदर्य थी तो तत्त्व के प्रति दृढ़ श्रद्धा उनके जीवन का आधार। मुझे हमेशा दादा की सरलता ने प्रभावित किया। उनके जैसे सरल व्यक्ति बहुत कम होते हैं। मेरे जीवन में जो थोड़ी बहुत सरलता है, यह बड़े दादा की ही देन है। ●

सबके वन्दनीय गुरुवर्य

– परिणति जैन, विदिशा

मेरा सौभाग्य है कि मुझे बचपन से ही आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का निकट सान्निध्य, स्नेह, ज्ञान व मार्गदर्शन प्राप्त करने का शुभ अवसर मिला; क्योंकि मेरा जन्म ही स्मारक भवन में हुआ था। दादाजी का पोता सर्वज्ञ मुझसे छोटा है, हम (मेरी छोटी बहन प्रतीति, अभयजी ताऊजी के पुत्र-पुत्री ज्ञायक-ज्ञप्ति और भी हमउम्र कुछ बच्चे) अनेकों बार दादाजी के घर पर जाते थे और खूब धमाचौकड़ी मचाते थे। तब कभी-कभी बड़ी बाई (श्रीमती कमलाजी भारिल्ल) कदाचित नाराज होती थीं; लेकिन बड़े दादा हमेशा मुस्कुराते हुए हमारे खेल का आनंद लेते थे। उन्होंने कभी भी हमें डांटा नहीं। इस तरह उनका भरपूर सान्निध्य और स्नेह मुझे प्राप्त हुआ।

दसवीं कक्षा उत्तीर्ण होने के बाद जब महाविद्यालय में प्रवेश लिया, तब प्रवचन और कक्षाओं के माध्यम से ज्ञान और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। उनके प्रवचन तथा कक्षा सुनकर और उनके समग्र जीवन को देखकर मुझे उनके सबसे वंदनीय बनने का व श्रेष्ठ गुरु होने का रहस्य भी ज्ञात हुआ। जैसा कि निम्नांकित श्लोकों में वर्णित है –

वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधांमुचो वाचः।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्या।।

अर्थ – जिनका मुखमंडल सदैव प्रसन्न हो, हृदय दया से भरा हुआ हो, वाणी अमृतमय हो और करनी परोपकार के लिए हो; ऐसे लोग किसके वन्दनीय नहीं होंगे।

उनके अध्यापन व प्रवचन कौशल की बात करें तो –

सदवर्तनम् च विद्वत्ता तथाध्यापन-कौशलम्।
शिष्यप्रियत्वमेतद्धि, गुरोर्गुणचतुष्टयं।।

अर्थ – सदाचारमय जीवन, विद्वत्ता, पढ़ाने की कला और शिष्यों के प्रिय – ये गुरु के गुण चतुष्टय हैं। हमारे बड़े दादा उपरोक्त गुणों की साक्षात मूर्ति थे, इसीलिए मैं कह सकती हूँ कि वे सबके ही वन्दनीय गुरुवर्य थे। ●

एक अनमोल रतन

– प्रतीति जैन मोदी, नागपुर

पण्डित टोडरमल स्मारक के नाम से आज कोई अपरिचित नहीं है। उसी पण्डित टोडरमल स्मारक के एक अनमोल रत्न पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, जो स्वयं भी किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं।

सादी वेशभूषा और उतना ही सरल व्यवहार। जो अपने अंतिम समय तक भी धर्ममार्ग से विचलित नहीं हुये। जब तक शरीर में ताकत थी जिनवाणी की गद्दी नहीं छोड़ी। वृद्धावस्था के कारण वाणी शिथिल अवश्य हुई थी; परन्तु मन ने साथ नहीं छोड़ा था।

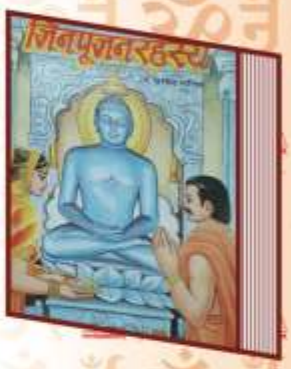

समाधि तो हमारा जीवन है, सुखी जीवन का नाम ही तो समाधि है, यह मृत्यु का सन्देश नहीं है। ऐसा सुखी जीवन जीने की कला का ज्ञान और उसका अभ्यास तो जीवन के मध्याह्न में ही करना होगा, यौवन में ही करना होगा; तभी तो हमें अन्त समय में सुख, शान्ति व समता के फल प्राप्त हो सकेंगे।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

यद्यपि मैंने अपने बचपन से ही उनको देखा और जाना था; परन्तु शास्त्री करते समय उनकी रचनाओं के माध्यम से उनको विशेष जानने का अवसर मिला, परन्तु उनके व्यवहार की विशेष छाप मुझ पर तब पड़ी, जब मैंने उनसे अपनी पत्रिका जैनस्टर्स के लिये उनका इंटरव्यू लेने का निवेदन किया। यह वह समय था जब उनकी वाक्शक्ति काफी कमजोर हो गई थी, फिर भी मैं नासमझी में उनके पास चली गई; परन्तु उन्होंने अपने स्वभाव के अनुरूप मुझे निराश नहीं किया और तुरन्त ही अपना इंटरव्यू देने के लिये मुझे समय दे दिया।

मैं ठीक समय पर उनके पास पहुँच गई और उनसे प्रश्न करना प्रारंभ किया, उन्होंने भी उत्तर देने का प्रयास किया; पर ये क्या ? उनकी आवाज तो मुझ तक पहुँच ही नहीं पा रही थी। मैं उनके थोड़ा और नजदीक बैठ गई और उन्होंने भी थोड़ा और तेज बोलने का प्रयास किया। तब भी उनके शब्दों को समझ पाना मेरे लिये मुश्किल हो रहा था। जब उन्होंने मेरी परेशानी को समझा तो कहा कि तुम अपने प्रश्नों को लिख कर दे दो, मैं तुम्हें अपने उत्तर लिखकर पहुँचा दूँगा।

मैं बहुत असमंजस में थी कि क्या वे इतने सारे प्रश्नों के उत्तर लिखने में समर्थ होंगे; पर मेरे लिये आश्चर्य की बात थी कि ठीक दूसरे-तीसरे दिन उनके स्वयं के हाथों से लिखे हुए उनके सारे उत्तर मेरे सामने थे। उनकी लिखाई देखकर ही समझ आ रहा था कि कितने कांपते हाथों के साथ उन्होंने वह सब लिखा होगा। उस समय समझ आया कि कुछ व्यक्तित्व ऐसे ही विशेष नहीं बन जाते हैं। धर्म के प्रति ललक, तत्त्वप्रचार के प्रति उत्साह, जिनवाणी के प्रति असीम श्रद्धा, धर्मप्रेमियों के प्रति स्नेह कुछ ऐसे गुण हैं, जो हर जिनवाणी के सपूत में देखने को मिलते हैं और जिनवाणी के सच्चे सपूत होने के कारण पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल भी इन गुणों से अछूते नहीं थे।

उनकी अनुपस्थिति यद्यपि मुमुक्षु समाज के लिये क्षति है; परन्तु वे जितना जिनवाणी का सार सरल और सरस भाषा में लिखकर गये हैं, उतना किसी के भी जीवन को सुधारने व संवारने के लिये पर्याप्त है। निश्चित रूप से वे अन्य भव में भी रत्न के समान ही स्वयं व अन्य के जीवन को धर्मज्योति से प्रकाशित करेंगे, कर रहें होंगे। निश्चित ही वे एक अनमोल रतन थे।●

अन्तरंग-बहिरंग सरलता की दिव्य चमक

– जिनकुमार शास्त्री, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल से विद्यार्थी, कर्मचारी, श्रोता ऐसे तीन रूप में जुड़ा हुआ हूँ। उक्त तीनों क्षेत्रों में दादा क्रमशः सफल अध्यापक, कुशल प्रशासक, लोकप्रिय प्रवचनकार हैं।

मैंने नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय संग्रह आदि अनेक ग्रंथों पर उनके प्रवचन सुने हैं, एतदर्थ आपका ऋणी रहूँगा। आपके बारे में लिख नहीं सकूँ ऐसी अनेकों उपलब्धि होने पर भी सभी कार्यों को करते हुए तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि बरकरार रखना और उस तत्त्व की बात को आसपास के लोगों को अतिप्रसन्नता के साथ बताना- ये आपकी ऐसी विशेषता है जो आपको समस्त जगत से अलग करते हुए उत्कृष्ट बनाती है।

मेरा आपके साथ एक प्रसंग उस समय का है, जब मैंने अधीक्षक (वार्डन) के रूप में महाविद्यालय में सेवाएं देना प्रारंभ किया ही था, अधिक उत्साह से भरा हुआ मैं कुछ उद्दंड छात्रों की शिकायत लेकर उन पर कार्यवाही की मांग करता हुआ उनके (बड़े दादा-प्राचार्य) सामने जा खड़ा हुआ और बहुत आत्मविश्वास के साथ कहने लगा कि दादा इन छात्रों पर आर्थिक दण्ड लगाना चाहिए; परंतु कार्यकुशलता के धनी बड़े दादा ने बहुत धैर्य से मेरी बात सुनने के बाद प्रेम से कहा कि देखो छात्रों की 1 रुपये की रसीद बनाकर उनके घरवालों को पत्र लिखो और पत्र के साथ रसीद भेज दो। मैंने कहा - दादा सिर्फ़ 1 रुपये की रसीद? तो उत्तर में दादा ने कहा छात्रों से दण्ड लेना मात्र हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए, छात्रों को अपनी गलती का एहसास हो, ऐसा दण्ड देकर उन्हें अपना बना लेना चाहिए। बस, फिर क्या था, दादा ने बहुत ही कुशलता के साथ मुझ नवीन कार्यकर्ता का उत्साह कम भी नहीं किया और छात्रों को अधिक दण्ड से भी बचा लिया। इस तरह ना केवल उनकी रीति-नीति दूरगामी थी; अपितु शिक्षापरक भी थी। दादा के बहिरंग की बात करूँ तो दादा को बाह्य अनुकूलता की कभी भी, किसी भी प्रकार की मांग करते हुए मैंने ना देखा ना सुना, जो कुछ जैसी व्यवस्था हो जाया करती थी, उसी से संतुष्ट होकर तत्त्व की बात करने लगते थे। सर्दी-गर्मी-बारिश अथवा जब भी जो भी समय प्रवचन के लिए उन्हें दिया जाता था, उसी समय पर प्रारम्भ करना और समय पर समापन कर देना, यदि कदाचित कुछ अधिक समय ले लें तो श्रोताओं से मुस्कुराहट के साथ क्षमा कहना और आते-जाते समय रास्ते में ही कोई छात्र मिल जाए तो प्रेम से हालचाल पूछना और छात्रों के पक्ष को गहराई से विचार करना आदि अनेक अनगिनत बातें अंतरंग और बहिरंग सरलता को ही तो दर्शाती हैं।

अंतिम कुछ वर्षों में प्रवचन सुनने के लिए घर से आते-जाते समय सड़क को क्रॉस करके आना-जाना पड़ता था, उस समय हम सब कहते थे कि चलो! दादा हम आपको घर तक छोड़ देंगे तो उत्तर में प्रसन्नता के साथ कह उठते थे कि जो होना है सो निश्चित है केवलज्ञानी ने गाया है। अंतिम समयों में जब अत्यधिक अस्वस्थ हो गए थे, तब भी रोज प्रवचन सुनने आना, शास्त्राभ्यास करना उनके जीवन का अभिन्न अंग था, अनेकों बार मेरे प्रवचन सुनने के पश्चात् अत्यधिक प्रफुल्लित होकर अनुमोदना करते और कदाचित् कोई तत्त्व की बात बताने में मुझसे भूल हो जाती तो बोल ना सकने के कारण लिखकर बताते कि तुमने जो बात कही थी उसको ठीक कर लेना - इस तथ्य के आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि बहिरंग में शारीरिक अस्वस्थता होने पर भी उनकी अंतरंग चेतना तत्त्वज्ञान के दृढ़ श्रद्धान से आनंदमयी थी और चित्त वस्तुस्वरूप के चिंतन से सदा प्रसन्न रहा करता था। आज उनके अभाव में उनकी मधुर स्मृतियों को याद करते हुए आंखें नम हो जाती हैं, हृदय भर आता है... अस्तु। अंत में इन शब्दों के साथ विराम लेता हूँ कि कोई आत्मरसिक जीव मेरे और हम सबके भाग्योदय से कुछ समय के लिए हम सबके बीच में आये और आत्मकल्याण की भावना भाते हुए आत्मकल्याण का ही उपदेश देने के बाद उसी उपक्रम को अधिक मज़बूती देने के लिए उर्ध्वगामी हो गए। ●

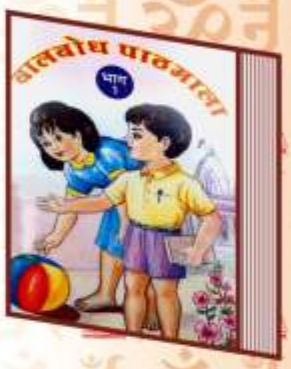

यदि दूरदृष्टि से विचार किया जाय तो मृत्यु जैसा मित्र अन्य कोई नहीं है, जो जीवों को जीर्ण-शीर्ण-जर्जर तनरूप कारागृह से निकाल कर दिव्य देहरूप देवालय में पहुँचा देता है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सदी के महानायक पुरुषोत्तम आदरणीय दादाश्री

– शुभम् शास्त्री

(प्राचार्य– ज्ञानोदय दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय दीवानगंज, भोपाल)

आदरणीय बड़े दादाश्री के जीवन संघर्ष और व्यक्तित्व को मैं जितना भी गहराई से समझने जाता हूँ, उतना-उतना अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हूँ और महसूस करता हूँ कि मैं सचमुच भाग्यशाली हूँ जो कि दादाश्री जैसे पुरुषोत्तम पुरूष के युग में जन्म लिया। हाँ! आपका व्यक्तित्व ही आपको महान बनाता है। मुझे यह कहने में कतई भी संकोच नहीं कि आप इस कलिकाल की महान आत्माओं और पुरुषोत्तम पुरूषों में से एक थे। आपमें बड़ों का बड़प्पन, चन्द्रमा-सी शीतलता, माँ का स्नेह, सच्चा भ्रातृत्व, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, सरलचित्तता और न जाने ऐसे कितने ही गुण विद्यमान थे। जो कि आपकी पुरुषोत्तम संज्ञा को सार्थक करते हैं। आपका मुखमण्डल मंद मुस्कुराहट के साथ चित्त को शांति प्रदान करने वाला होता था। आपका तत्त्वज्ञान मात्र सूखा ज्ञानाभ्यास नहीं था, वह प्रायोगिक था, जिसे आपने जीवनभर आत्मसात् किया। आपकी कालजयी रचनाएँ सरलता से सूक्ष्म तत्त्व को हृदयंगम कराने में अद्वितीय है।

आदरणीय दादा बहुत समय से स्वास्थ्य की कमजोरी के चलते सक्रिय प्रचार-प्रसार की गतिविधियों से कुछ निवृत्त से हो गये थे; परन्तु आपकी आत्मसाधना कभी कमजोर नहीं पड़ी। हमें एक समय के लिए भी दादा की अनुपस्थिति का आभास तक नहीं हुआ; क्योंकि लौकेषणा से दूर सहज और निस्पृह वृत्ति ही दादा को अन्य से अलग और विशेष बनाती है। दादा के संबंध में उक्त कथन बिल्कुल सत्य ही है कि **'उनकी लघुता ही, उनके बड़प्पन का आधार है।'** दादा जैसी सरलता सदियों में होती है। आपकी सरलता का यदि मापन करें तो **आप इस सदी के महानायक हैं।**

आपके व्यक्तित्व के संबंध में आपके अनुज और छोटे दादा के नाम से विख्यात तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का उक्त कथन बिल्कुल सत्यार्थ है -'विगत 70 वर्षों के अनवरत साथ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे जगत के दंद-फंदों से दूर रहने वाले अपने काम से काम रखने वाले अपने में ही मगन रहने वाले एक सीधे-सच्चे इंसान हैं। एकदम सादा शुभ्र धोती-कुर्ते में करीने से लिपटी दुबली-पतली, गोरी-भूरी काया, खादी की नोकदार शुभ्र टोपी से सुशोभित मुस्कुराता मुखमण्डल, जगत से निस्पृह कोई व्यक्ति चला आ रहा हो तो समझ लेना कि वे सुनिश्चित रूप से पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ही होंगे।

आपका और छोटे दादा का भ्रातृत्व स्नेह इस युग में आदर्श है। आपकी जोड़ी जगत प्रसिद्ध एवं अनुकरणीय है। महापुराणों की साम्यता स्थापित करना शायद उचित न हो, फिर भी ज्यों लक्ष्मण ने राम के मात्र साथ रहने के लिए सहर्ष वनवास स्वीकार कर लिया, त्यों ही आपने और छोटे दादा ने अनेकों बार लौकिक दृष्टि से नुकसान उठाकर भी साथ रहना स्वीकार किया। आपने स्वयं की और धर्मपत्नी बड़ी मम्मी श्रीमती कमला भारिल्ल की शासकीय सेवा त्यागकर छोटे भाई के साथ आजीवन जयपुर प्रवास स्वीकार किया।

आप एक ऐसी सुदीर्घ विद्वत् परंपरा का आचार्यत्व करते थे, जो देशभर में अपनी

बुद्धिबल, कौशल एवं वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रति अगाध समर्पण से बिना किसी भय और लोभ के साधर्मियों को अमृतपान कराया करती है; आपके जाते ही उनके माथे से स्नेह व आशीर्वाद का एक 'निःस्वार्थ-निश्छल' हाथ उठ गया। उस समय की उनकी मनःस्थिति और भावनाओं का चित्रांकन करना, मुझ जैसे लघु कलमकार की क्षमता के बाहर है और शायद किसी भी कलमकार की क्षमता में नहीं है। बस रह- रहकर एक ही विचार स्मृति पटल पर आ रहा था कि अब दादा नहीं रहे। जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा और शायद कभी हो भी न; क्योंकि हजारों मील दूर बैठे दादा हमारे निकट कभी नहीं थे, पर हर समय साथ थे । अपने स्नेह से, मधुर मुस्कुराहट से, अपने कर्तव्य से और न जाने, किस-किस से वह हमारे नजदीक ही थे और हमेशा रहेंगे; उनका वियोग तो हमें कभी होने से रहा ।

आदरणीय बड़े दादा की रिक्तता की पूर्ति कभी संभव नहीं; पर आपके जीवन को हम आदर्श बनाएँ, आपके द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान को जीवन में आत्मसात् करके अपने आपको मोक्षमार्ग में आरूढ़ करें एवं जगत जीवों को भी यथाशक्य माँ जिनवाणी के अमृत सरोवर में स्नान कराएँ, यही हमारी आपके प्रति सच्ची गुरू-दक्षिणा होगी।

कहना-लिखना तो बहुत चाहता हूँ; परन्तु अन्त में बस इतना ही -

गुरु-पिता तेरे उपकार, कथन की।
न मुझमें सामर्थ्य और न कलम औकात।। ●

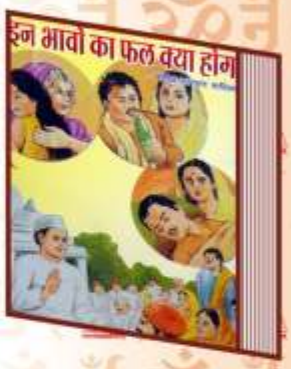

सहजता की प्रतिमूर्ति -बड़े दादा

- रूपेन्द्र शास्त्री, जयपुर

हम भावना भाते रहते है कि सहज जीवन हमारा हो; परन्तु यह मात्र वाणी तक ही सीमित रह जाता है, आचरण में यह दिखाई ही नहीं देता। वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना हम रह ही नहीं पाते है, फिर वही राग-द्वेष प्रारंभ हो जाता है; परन्तु मैं गर्व से कह सकता हूँ कि हाँ! मैंने एक ऐसे अनोखे व्यक्तित्व को देखा है, जिनके जीवन में यह उक्ति चरितार्थ होती थी। हमेशा शान्त एवं सौम्य मुद्रा, चहरे पर हल्की सी मुस्कराहट, धोती-कुर्ता और टोपी जिनकी पहचान थी, सहज भाव ही जिनके जीवन का आधार था - ऐसे आदरणीय बड़े दादा के बारे में कुछ कहना तो सूरज को दीपक दिखाने के समान ही है। लगातार 10 वर्षों तक आदरणीय दादा का सानिध्य मुझे निरंतर प्राप्त हुआ है, अध्ययन काल में षट्कारक, निमित्त-उपादान, नियमसार आदि विषयों पर प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। इसके अलावा ऐसे क्या पाप किये?, विदाई की बेला, इन भावों का फल क्या होगा? उनकी इन अमर कृतियों ने मेरे जीवन में ऐसी अमिट छाप छोड़ी है कि अब जिससे विपरीत परिस्थितियों में भी चित्त को सहज रखना आसन हो गया है। दादा तो अब हमारे साथ नहीं हैं; परन्तु उनके द्वारा जिनवाणी लेखन, प्रवचन के द्वारा जो तत्त्वज्ञान प्रदान किया गया है, वह तो हमारे साथ है ही। हम सब इनका अध्ययन कर दादा के समान तो संभव नहीं है, पर उनसे प्रेरणा प्राप्तकर यथासंभव अपने जीवन को सहजतामयी बनाने का प्रयास करें। ●

संयोग न सुखदायक हैं और न दुःखदायक हैं; संयोगी भाव निश्चित ही दुःखदायक हैं। अतः संयोगों की जैसी जो स्थिति हैं, उसी में सहज रहना चाहिए। संयोगों के प्रभावित न हों।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

अध्यात्म के बीजारोपक

– नीशू शास्त्री, जयपुर

'लपकी गाय गुलेंदो खाय, बेर बेर महुआ तर जाये', 'मंदर जाओ अंदर जाओ' जैसी अनेक बुंदेलखंडी बोली के अहाने (कहावत) जब-जब सुनता हूँ, तो आज भी 2009 में उपाध्याय कनिष्ठ की याद आ जाती है कि कैसे जब हमें अध्यात्म का 'अ' भी नहीं आता था, तब बड़े दादा कितनी सरलता और सहजता से हमें आत्मा की बात सिखाते थे, इसलिए मैं अपने जीवन में अध्यात्म के बीजारोपण के लिए बड़े दादा का बहुत बड़ा उपकार मानता हूँ।

यूँ तो शायद ही स्मारक का कोई विद्यार्थी होगा जो आपसे आपके जीवन से प्रभावित न हुआ हो; क्योंकि जितना हमने आपसे सीखा है, उससे कहीं ज्यादा हमने आपको देखकर सीखा है, आपको पढ़कर सीखा है।

प्रत्येक शिविर के प्रथम प्रवचन, षट्कारक की कक्षा और प्रतिदिन के प्रवचन में बिलकुल सही समय पर प्रवचन हॉल में आपको पाया है, यह हम सभी विद्यार्थियों के लिये प्रेरणास्पद है। शायद हमारी ही कक्षा अंतिम होगी, जिसने पूरे 5 साल आपका लाभ लिया और मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे आपसे पढने सौभाग्य मिला, आपको पढ़ने का सौभाग्य मिला।

आपके जैसा सरल, सहज, निर्विकल्प व्यक्तित्व शायद ही कोई दूसरा हो। ●

स्वाभाविक विद्वान : आदरणीय बड़े दादा

– जिनेन्द्र शास्त्री, जयपुर

जिसप्रकार जल में शीतलता, सूरज में प्रकाश, आसमान में विस्तार स्वाभाविक होती है, ठीक उसी प्रकार आदरणीय बड़े दादा में भी विद्वत्ता स्वाभाविक थी। उन्हें किसी ने विद्वान बनाया नहीं था, उनका व्यक्तित्व ही विद्वत्ता से परिपूर्ण था, उनके जीवन की एक-एक गतिविधि विद्वत्तापूर्ण थी।

आदरणीय दादाश्री के प्रवचन में कभी भी किसी कषायों के दर्शन न होकर विशुद्ध तत्त्वज्ञान की निर्मल गंगा के अविरल प्रवाह के ही दर्शन होते थे, उन्होंने अपने प्रवचनों में कभी भी कोई व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण बात या किसी व्यक्ति विशेष की निंदा-प्रशंसा, आलोचना, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन, नहीं किया; क्योंकि वे तो विशुद्ध विद्वान थे। राजनीति में धर्म होना चाहिए; परंतु धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए - इसी उक्ति को उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ किया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में रंचमात्र भी राजनीति नहीं की; क्योंकि मान-सम्मान, यश- अपयश, लाभ-अलाभ आगे कुर्सी-पीछे कुर्सी, पहले नाम-बाद में नाम - इन सभी तुच्छ विषयों से वह बहुत ऊपर थे; क्योंकि उन्हें किसी कषाय ने नहीं, स्वयं अन्तर की प्रेरणा ने उन्हें विद्वान बनाया था। प्रायः हम सभी धर्म को मानते हैं; परंतु धर्म की नहीं मानते और विद्वान तो एक कदम आगे ही चलते हैं, वे तो दूसरे लोगों की मनवाने में माहिर होते हैं; परंतु दादा धर्म को मानते थे और धर्म की भी मानते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन धर्ममय था। विद्वान के वचन ही उनका उपदेश होते है; परंतु दादा के वचन के साथ-साथ उनका जीवन भी उपदेशमय था, जिसे देखकर भव्य जीव सहज ही उपदेशित होते थे।

दादा का सारा जीवन सहज था, सारी क्रिया-प्रतिक्रियाएं सहज थी। कभी भी किसी भी प्रकार की कोई लागलपेट या मायाचारी उनके जीवन में नहीं थी, सो सत्य ही है; क्योंकि मायाचारी तो तिर्यंच का श्रृंगार है और सहजता विद्वान का श्रृंगार है। प्रायः आजकल ज्यादा भीड़, अच्छी विद्वता का एक पैमाना माना जाता है; परंतु यह बाह्य प्रदर्शन से ज्यादा कुछ नहीं है। दादा के लिए सब कुछ समान था, चाहे दो लोग या 2 हजार और उसी तन्मयता, लगन और पूर्ण रुचि के साथ वे अपने सभी प्रवचन पूरे किया करते थे। आज के समय की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आज सुनाना सभी चाह रहे है; परंतु सुनना कोई भी नहीं चाहता और अपने से छोटी उम्र वालों को तो कतई भी नहीं; परंतु दादाश्री द्वारा चाहे स्वयं का, बड़े विद्वान का या विद्यार्थी विद्वान का व्याख्यान हो, दादा उसको पूरी तन्मयता के साथ सुनते थे; क्योंकि वे किसी व्यक्ति विशेष के नहीं, वे जिनशासन के पक्षधर थे। ●

मेरे लिए हमेशा शिक्षाप्रद बड़े दादा का जीवन

– गौरव उखलकर, जयपुर

आदरणीय बड़े दादा शांतप्रिय, प्रसन्नचित्त, सहजता के धनी और एक सरल व्यक्ति थे। उनके प्राचार्य के कार्यकाल में मुझे टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में अध्ययन करने का मौका मिला। महाविद्यालय में अध्ययन करते समय उनके जीवन से मुझे कई सारी शिक्षाएँ मिलीं। आज भी मैं उन शिक्षाओं का लाभ लेता हूँ तो बड़े दादा ही उन सभी शिक्षाओं का निरीक्षण कर रहे हो ऐसा प्रतीत होता हैं। जब वे प्रवचन करते थे तो वे बहुत ही सरल शैली में तथा सहजता से करते थे। श्रोता एवं विद्यार्थियोंको प्रवचन के विषय को सहज बोधगम्य कराते थे। वे अपने प्रवचन में रोज आगम का सार दोहराया करते थे – 'पर से खस, स्व में बस, आएगा अतीन्द्रिय आनंद का रस, इतना कर तो बस।' यह बात कहकर वे जीवन की सहजता और सरलता को कैसे प्रयोग में लाया जाय यह खूब स्पष्ट करते थे। कंठपाठ में ,भी उनकी लिखी हुई कहानियां सुनाते थे तो वह सारी कहानियां एकबार पढ़ने में ही सहज बोधगम्य हो जाती थी और उनको पढ़कर के एक अलग ही आनंद मिलता था। एक नई उमंग उत्पन्न होती थी जिससे उनकी सभी पुस्तकें पढ़ने का मानस बनता था और उसे पूरा भी किया। उनकी कई सारी पुस्तके हैं उन सभी पुस्तकों में मुझे प्रभावित करने वाली 'सामान्य श्रावकाचार' नामक पुस्तक है। जिसमें सभी प्रकार के श्रावकाचार का सरल संक्षेप और सर्वागमगर्भित ऐसा व्यवस्थित संग्रह किया गया हैं। उनके इस पुस्तक से मुझे भी जैन धर्म के कई सारे विषयों की खोज करके उनके संग्रह करने के लिए सीखने मिला। उनके जीवन से एक और शिक्षा मिलती है वह है कभी भी हिम्मत नहीं हारना – जब तक उनकी आवाज थी तबतक उन्होंने प्रतिदिन प्रवचन किये और जबतक शरीर में ताकत थी तबतक रोज मंदिर में आते रहे। उक्त कार्यों में कभी भी वे शरीर के वश में नहीं हुए बल्कि शरीर को अपने वश किया। उन्हें जब कभी मिलते थे तो वे हमेशा प्रसन्न चित्त ही मिलते थे। कभी भी नाराज या तनाव की अवस्था में कभी नहीं पाते थे। हमेशा हंसते रहते थे। इसप्रकार आदरणीय बड़े दादा का जीवन मेरे लिए हमेशा शिक्षाप्रद ही रहा है। ●

जब तक वक्ता के प्रति श्रोता की सच्ची श्रद्धा भक्ति नहीं होगी और सम्पूर्ण समर्पण नहीं होगा एवं उनके प्रवचनों को ध्यान से नहीं सुनेगा तब तक उसे तत्त्वज्ञान का लाभ नहीं होगा।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

बुन्देलखण्ड गौरव : आदरणीय बड़े दादा

– अमित जैन 'अरिहंत', मड़ावरा (प्रधान संपादक – अक्षरा 'ई' मासिक)

आदरणीय बड़े दादा के जीवन को अपने शब्दों में देखना यह हमारे लिए तो नामुमकिन जैसा है। मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने अपने जीवन में अनेक विद्वानों को देखा पर हमने जो बड़े दादा को देखा वैसा अन्य किसी को नहीं देखा।

पूज्य गुरुदेवश्री के पुण्य प्रभावना योग में आपका नाम प्रथम पंक्ति के रूप में हमेशा स्मरण किया जाता रहेगा। आपका जन्म उत्तरप्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के ललितपुर जिले के बरौदास्वामी गांव में हुआ था। बड़े दादा ने छोटे दादा के साथ मिलकर जो तत्वज्ञान की प्रभावना की है, वह हमेशा चिरस्थायी रहेगी और समाज इसके लिए आपका चिर ऋणी रहेगा। आप जैसे सरल, सहज, सौम्य मुद्रा के धनी का बुन्देलखण्ड की माटी में जन्म होना, यह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का गौरव है, जिसे इतिहास के झरोखों में हमेशा देखा जा सकेगा।

आदरणीय बड़े दादा हमारे गुरुणाम् गुरु हैं। आपके नेतृत्व में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा हजारों विद्वान तैयार किये गए, जो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अनूठी छाप छोड़ रहे हैं। आप पण्डित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के यशस्वी प्राचार्य रहे हैं, आपका सानिध्य जिनको मिला वह भी अपने आपको धन्य अनुभव करते हैं।

मेरा जीवन से जुड़ा हुआ एक प्रसंग है कि 2010 देवलाली प्रशिक्षण शिविर का समय था। वहाँ पर ही हमारे जीवन की दिशा का निर्णय होना था; क्योंकि उस समय हम दसवीं कक्षा तीर्थधाम सिद्धायतन से पास आउट कर चुके थे। श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के इंटरव्यू डॉ. शांतिजी जयपुर, पण्डित सोनूजी सोनगढ़ और पण्डित पीयूषजी जयपुर द्वारा संचालित किये गए। उस समय मेरी कक्षा के सभी सहपाठियों का जयपुर में प्रवेश हो चुका था; परन्तु मेरा प्रवेश वहाँ नहीं हो सका, जिसका मुझे बहुत दु:ख हुआ; क्योंकि मैं भी जयपुर से ही शास्त्री करना चाहता था। उस समय हम बड़ी मम्मी और बड़े दादा के पास बैठकर बहुत रोये कि मुझे कुछ भी हो जयपुर ही पढ़ना है, तब आदरणीय अन्नाजी ने बहुत समझाया और बड़े दादा ने उस समय मुझे जो स्नेह से समझाया कि यहाँ प्रवेश होना सम्भव नहीं है; क्योंकि राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की प्रवेश प्रक्रिया में हमारी आयु की समस्या हो रही थी, जिस कारण से मुझे जयपुर से शास्त्री करने के लिए एक साल और प्रतीक्षा करनी पड़ती; परन्तु बड़े दादा ने कहा कि मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा एक साल खराब हो, इसलिये बांसवाड़ा भी जयपुर की ही संस्था है, वहाँ से शास्त्री करो, कोई दिक्कत नहीं होगी। यद्यपि मन तो नहीं था; पर अब सबका कहना मानकर हमने बांसवाड़ा प्रवेश ले लिया और शास्त्री कर भी ली; किन्तु आज भी मुझे इसका खेद रहता है कि मैं जयपुर से शास्त्री नहीं कर पाया। उस समय जो बड़े दादा के पास बैठकर हमें दादा और बड़ी मम्मी ने स्नेह दिया और स्नेह से समझाया वह चित्र हमारे मानस पटल पर सदा चिर स्थायी है; अतः हमारे जीवन में बड़े दादा का परम उपकार है कि हम बड़े दादा और पण्डित कोमलचन्द्रजी टडा की प्रेरणा पाकर शास्त्री करने बांसवाड़ा चले गए। यदि हम वहाँ नहीं गए होते तो फिर पता नहीं कि हम कहाँ होते? और क्या कर रहे होते?

बड़े दादा से अनेक बार प्रशिक्षण शिविर/पंचकल्याणक और जयपुर शिविर में मिलना हुआ और आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जो हमारे लिए गौरव है। आपने साहित्य के क्षेत्र में भी जनमानस का मनमोह लिया है, बालबोध पाठमाला भाग-01, संस्कार उपन्यास, इन भावों का फल क्या होगा?, जिनपूजन रहस्य, णमोकार महामन्त्र अनुशीलन, प्रवचन रत्नाकर भाग 01-11तक आदि अनेक कृतियाँ आपकी बहुप्रसिद्ध कृतियाँ हैं, जिन्हें जैन ही नहीं जैनेतर भाई-बहिन भी अध्ययन करके प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

आखिर बड़े दादा तो बड़े दादा ही थे और हमेशा हम सबके मानसपटल पर आपकी प्रसन्न मुखमुद्रा सदा जीवंत बनी रहेगी; अतः आपका जो हम सबके ऊपर उपकार है, उसके लिए हम सदा चिर ऋणी रहेगें। ●

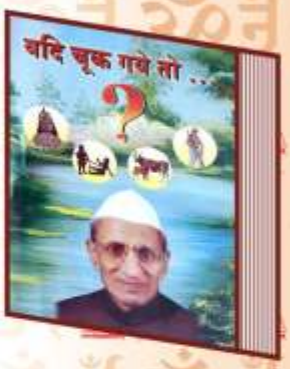

यह एक युग का ही अंत है।

– अनुभव शास्त्री, खनियाँधाना

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल को बड़े दादा के नाम से सम्बोधित करना ठीक कुछ वैसा ही है, जैसा पण्डित गोपालदासजी बरैया को गुरुजी बोलना। जैसे 'गुरुजी' शब्द उनका पर्यायवाची हो गया था, ठीक वैसे ही 'बड़े दादा' शब्द भी पर्यायवाची हो गया था। यद्यपि भौतिक रूप से सभी व्यक्ति लगभग समान होते हैं; किन्तु मानसिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक रूप से कोई भी दो व्यक्ति कभी समान नहीं हो सकते, अतः आदरणीय बड़े दादा के स्वतंत्र व्यक्तित्व को किसी के साथ सर्वथा जोड़कर देखना उनकी मूल छवि को धूमिल करने के समान है। दादा का जीवन निश्चित ही एक महापुरुष का जीवन रहा है, जिसमें मुरैना की शिक्षा का संघर्ष, बबीना के व्यापार का संघर्ष, तत्कालीन समाज की मानसिकता का संघर्ष, जिसमें अशोक नगर के क़िस्से प्रधान हैं, ऐसे अनेकों संघर्षों के साथ भी सहजता की प्रतिमूर्ति का उत्कृष्टतम उदाहरण दादा का व्यक्तित्व है। सरकारी नौकरी को क्षणभर में छोड़ देने का साहस आपकी इस कर्मठता एवं विवेकीपने का चलता-फिरता आदर्श है कि जीवन में धन नहीं धर्म एवं संतुष्टि का स्थान ही सर्वोपरि है।

आप जैन परम्परा के एक सर्वोत्तम लेखक, कुशल वक्ता, कर्मठ कार्यकर्ता एवं सत्य के विचारक तो थे ही; किन्तु इन सभी से अधिक आप एक निश्चल साधक थे। आपका व्यक्तित्व आपके विचारों से तो महान है ही; किन्तु उस महानता का मूल आधार आपकी साधना है। सहजता को जिस तरह दादा ने अपने जीवन में शृंगारित किया वह ऐसा था मानो ग्रंथों के पन्ने असल में सामने उतर आए हों। आप अपने जीवन के अंत समय तक न केवल तत्त्वज्ञान से जुड़े रहे; अपितु असीम उत्साह एवं सजगता के साथ आपने तत्त्वज्ञान को अपने जीवन का अंग बनाया।

अक्सर ऐसा होता है कि ज्ञान के साथ अहंकार भी बढता चला जाता है, विद्वान हों या साधु दोनों ही अनेकों बार मान-सम्मान के जाल में फँस जाते हैं और अपने सरल एवं साधारण व्यक्तित्व, जिसके बल पर वे इतने बड़े हुए हैं, उसे नष्ट कर देते हैं; किन्तु दादा के

प्रायः होता यह है कि दुनिया की दृष्टि में तीर्थंकर तुल्य महत्वपूर्ण होने पर भी पत्नी पुत्र, पुत्रवधू और घर-परिवार वालों को धर्म का परिचय और प्रीति न होने से घर के विद्वान वक्ता की महिमा नहीं आती।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

व्यक्तित्व में सफलता भले ही कितनी भी ऊँचाइयों पर क्यों न रही हो; लेकिन अहंकार कभी भी उन पर हावी न हो सका। आप उन विद्वानों में से एक थे जो अपने समय के सर्वोत्कृष्ट विद्वान होने के बाद भी अपने से लघु विद्वानों के प्रवचन आदि को सुनने में असहजता महसूस नहीं करते थे।

एक क़िस्सा मुझे याद आ रहा है जो इस बात का प्रबल उदाहरण है कि जीवन में जिस कार्य के प्रति हमारी रुचि और लगाव होता है, वह कार्य करने में हम कभी भी स्वयं को थका हुआ या वृद्ध महसूस नहीं करते हैं। प्रशिक्षण शिविरों की शृंखला में कुछ ही वर्षों पूर्व इस शिविर का आयोजन मेरठ में किया गया था। उस समय वहाँ पर दादा की तबीयत कुछ ठीक नहीं थी, सौभाग्य से दादा और बाई से विशेष लगाव होने के कारण दिन में लगभग तीन से चार बार दादा और बाई से मिलना हो ही जाता था। एक रात लगभग कोई 10:30 बजे दादा को देखने मैं उनके कमरे पर गया तो दादा मुझे देखते ही बिस्तर से उठ खड़े हुए और अलमारी में से अपना कुर्ता निकालकर पहनने लगे। ये देखकर जब मैंने दादा से पूछा कि अभी आप कहाँ जा रहे हैं? तो दादा ने अति उत्साह के साथ कहा कि सुबह हो गयी है, वहाँ पर सुमतप्रकाश जी के प्रवचन प्रारम्भ हो गए होंगे। तब मैंने दादा से कहा कि आप आराम कीजिए और ये कुर्ता मुझे वापस दे दीजिए। अभी रात के 10:30 हुए हैं, और सभी अपने निवास स्थान पर वापस आ गए हैं। तब उस समय दादा के मुख से वही एक अद्भुत मुस्कान निकली और कहने लगे मुझे लगा कि कहीं प्रवचन शुरू तो नहीं हो गए हैं। ये सिर्फ़ एक क़िस्सा है, इसके अलावा बहुत अधिक तबीयत खराब होने पर, बहुत अधिक ठंड होने पर, किसी भी विद्वान के प्रातःकाल के प्रवचन होने पर इतनी अधिक वृद्ध अवस्था में भी आपका सदैव प्रवचन सभा में उपस्थित होना न केवल विद्वत समुदाय के लिए आदर्श है; अपितु स्वयं की सरलता एवं सहजता की परीक्षा करने हेतु किसी उत्कृष्टतम उदाहरण से कम नहीं है।

आदरणीय दादा का वियोग एक तरह से एक युग का ही अंत था; किन्तु साहित्य किसी को मरने की स्वीकृति नहीं देता, अतः दादा आज भी हम सभी के बीच उसी विचारधारा के साथ जीवित हैं, जिस विचारधारा के साथ वे भौतिक रूप से हमारे बीच थे। ●

सहजता के प्रतीक बड़े दादा

– आकाश शास्त्री हलाज

अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (बड़े दादा) से मेरी मुलाकात तब हुई जब मैं पढने आया। जब बड़े दादा को मैंने पहली बार देखा कि ये हमारे प्राचार्य हैं, कितने शांत एवं सहज। उनको देखते ही मेरा मन प्रसन्न हो गया। जब भी आप बड़े दादा को देखोगे तो आप कितना भी उदास हो, अपने आप आपका मुख हँसमुख हो जायेगा।

मेरा सौभाग्य रहा है कि मैंने भी बड़े दादा के मुख से प्रवचनों का लाभ लिया, जब वे पंचास्तिकाय पर प्रवचन किया करते थे। दादा की संस्कार, ये तो सोचा ही नहीं, इन भावों का

फल क्या होगा आदि कृतियों से मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। साथ ही बड़े दादा ने जो भी अपनी कृतियों में लिखा है, वह सब उनके आचरण में दिखाई देता था। उनको मैं एक आदर्श व्यक्ति के रूप में देखता हूँ। अत्यंत अस्वस्थ रहते हुए भी देवदर्शन नहीं छोड़ना, स्वाध्याय में आकर बैठना आदि बातें बहुत प्रेरणा देती हैं। उनका जीवन 'सादा जीवन उच्च विचार' की उक्ति को चरितार्थ करता था।

मैं तो यही कहता हूँ कि बड़े दादा आज भले ही शरीररूप से हमारे बीच विद्यमान न हों, पर साहित्य के रूप में हमारे बीच विद्यमान हैं और निरंतर रहेंगे। बड़े दादा ने जो कुछ भी तत्त्वज्ञान सिखाया है, उसका जीवनभर प्रचार-प्रसार करता रहूँ - इसी मंगल भावना से विराम लेता हूँ। ●

खोजी प्रवृत्ति से सीखें

- हितंकर शास्त्री, उदयपुर

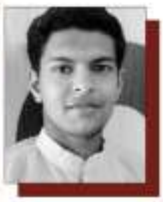

आदरणीय दादाजी से बचपन में कई बार मिला, उन्हें देखा था; लेकिन बालबुद्धि के कारण उनसे इतना परिचय या उनके स्वभाव से जुड़ना नहीं हो पाया। उसके बाद दादाजी को जानने का मौका तब मिला जब दोनों दादा एक बार उदयपुर आये थे। उस समय आदरणीय बड़े दादा को जानने का मौका मिला और उस समय ही उनके प्रवचन और स्वभाव से परिचित हुआ। मैं सबसे ज्यादा उनके स्वभाव से प्रभावित हुआ, एकदम समताभाव व सहज रहने से। फिर उसके बाद तो अनेक शिविरों में पंचकल्याणक वगैरह पर मिलना होता रहता था - अपने पापा के कारण। फिर जब मैंने स्मारक में प्रवेश लिया, उस समय से दो साल तक हमें उनके प्राचार्य पद का लाभ मिला। तब मुझे दादा को और गहराई से जानने का अवसर मिला। मैं बड़ी मम्मी से भी बहुत प्रभावित रहा। मेरे पापा जब जयपुर आते थे, तब अवश्य पापा के साथ दादा के घर मिलने जाया करता था। मैं सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ दादा के चरित्र से। कितनी प्रतिकूलतायें होने के बावजूद रोजाना मन्दिर आना और उसके अलावा ध्यान से प्रवचन सुनना। जैसे वे पहले सुनते थे, वैसे ही अस्वस्थ रहने पर भी सुनते थे।

दादा के द्वारा रचित साहित्य में से मैंने थोड़ा बहुत पढ़ा है, जैसे- 'सामान्य श्रावकाचार', 'ये तो सोचा ही नहीं', 'जिनपूजन रहस्य', 'संस्कार' नामक उपन्यास आदि। दादा के साहित्य को पढ़कर दादा के चिन्तन और खोजी प्रवृत्ति से भी प्रभावित हुआ। मुझे संस्कार नामक उपन्यास काफी पसंद आया। उसमें से मुझे यह बात बहुत अच्छी लगी कि जिसप्रकार किसान खेत को साफ करे, जोते, नींदे, गोड़े, पानी भी देवे, बाड़ भी लगाये, पूरा परिश्रम करे और बीज न डाले तो क्या उस खेत में धान की फसल उगेगी? नहीं, बिल्कुल नहीं उगेगी, भला बीज बोए बिना भी कभी फसल उगती है? बस यही स्थिति धर्म की है। सम्यग्दर्शन धर्म का बीज है और बाह्य क्रियाएँ धर्मरूप खेत की निदाई, गुड़ाई, सफाई व सिंचाई करने के समान है। हमें भी दादा के समान चिन्तन व खोजरूप प्रवृत्ति को प्रकट करना चाहिए। ●

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिसके जिन गुणों की प्रशंसा की जाती है, उसके उन गुणों का विकास तीव्र गति से होने लगता है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

रतनरंगम : कलाओं की आज़ादी का मंच

– पवित्र जैन, आगरा (शास्त्री तृतीय वर्ष – टोडरमल महाविद्यालय, जयपुर)

चलिए, मैं आप सभी को ले चलता हूँ सिद्धान्तसूरि रतनचन्दजी भारिल्ल की धरोहर पर। कौन सी धरोहर? घबराइये मत, प्रकृत में उनकी धरोहर से मेरा आशय है उनका स्वर्णिम पद्य-साहित्य।

यही इन रतन का वह रंगमंच है जहाँ सभी कलाएँ आज़ादी से अपना नृत्य प्रस्तुत करती हैं अर्थात् बड़े दादा के पद्यों का कलापक्ष बलात् आरोपित नहीं है, अपितु यदि आध्यात्मिकता उनके काव्य की आत्मा है तो सरलता उसका शरीर और कलाएँ उस शरीर के अंगोपांग हैं।

अरे! सरलता तो उनके काव्य की समस्त कलापक्षीय विशेषताओं का केन्द्र है राजधानी है। कैसे?

चलिए, देखते हैं –

'तीर्थंकर-स्तवन' के अनेक पद्यों में विभिन्न अलंकार, गुण, रसादि का अद्भुत वैचित्र्य नयनपथगामी होता है।

जैसे – 'श्री पद्मप्रभ स्तवन' में समासोक्ति, 'श्री सुविधिनाथ स्तवन' और 'श्री श्रेयांसनाथ स्तवन' में विरोधाभास और विभावना, 'श्री कुन्थुनाथ स्तवन' में अभंग यमक, 'श्री नमिनाथ स्तवन' में मानवीकरण, 'श्री पार्श्वनाथ स्तवन' में उदाहरण, 'श्री मुनिराज स्तवन' में रूपक, 'श्री शीतलनाथ स्तवन' में आध्यात्मिक शृंगार रस इत्यादि।

इन्हीं के साथ प्रयुक्त वीर रस, भक्ति-वात्सल्य रस एवं प्रसाद-माधुर्य गुणों के नृत्य(प्रयोग) भी मनमोहक हैं।

अरे! निम्न पद्य में तो अनुप्रास के पाँचों भेदों का संगम मानो कोई आठवाँ ही आश्चर्य हो –

अनुप्रास :

उदाहरण – निश-दिन निज का चिन्तवन, चर्चा निज की होय।
चर्या में निज ही प्रमुख, चाह अन्य नहिं कोय ।।

कारण –

1. छेकानुप्रास – यहाँ प्रथम चरण में 'न' वर्ण की प्रथमवर्ण के रूप में एकबार आवृत्ति दृष्टव्य है।

2. वृत्यानुप्रास – प्रस्तुत पद्य में 'च' – 'न' वर्णों की अनेकबार आवृत्तियाँ हुईं हैं।

3. लाटानुप्रास – यहाँ 'निज' की अनेकबार आवृत्ति हुई है।

4. श्रुत्यानुप्रास – यहाँ उपर्युक्त आवृत्ति वाले वर्णों के कारण ये शब्द कर्णप्रिय होते हैं।

5. अन्त्यानुप्रास – यहाँ द्वितीय व चतुर्थ चरण के अंत में तुकबंदी दृष्टव्य है। इसी के एक सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त के रूप में 'श्री नेमिनाथ स्तवन' दृष्टव्य है।

इस विषय के संदर्भ में मेरा एक लघुशोधपत्र भी है, जिसे मैं प्रपंचभय से यहाँ प्रस्तुत नहीं कर रहा हूँ।

इसप्रकार यह सिद्ध हुआ कि दादा! आपके पद्यसाहित्य में कोई अलौकिक ही कलापक्ष

एक आधारात्मक एवं विषयात्मक अध्ययन

– मानष जैन, बाँसवाड़ा

देश विदेश में ख्यातिप्राप्त विद्वान आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (बड़े दादा) द्वारा कई उपन्यास जैसे संस्कार, विदाई की बेला, इन भावों का फल क्या होगा, सुखी जीवन, ये तो सोचा ही नहीं आदि अनेकानेक साहित्य रचित है, जिसमें हर एक पुस्तक/ग्रंथ में अनेकानेक विषय एवं ग्रंथों के आधार हैं। यदि हम एक उपन्यास को देखे यथा इन भावों का फल क्या होगा तो पाते हैं कि इस उपन्यास में 22 पात्रों द्वारा जिनागम के गूढ़ विषयों को समझाया है, जिसमें मुख्य पात्र धर्मेश द्वारा धर्म का स्वरूप एवं मुख्यतः प्रायोगिक शैली में ध्यान का स्वरूप समझाया गया है। यह उपन्यास जो केवल 214 पृष्ठ का हैं उसमें अनेकों ग्रंथो का सार, 15-16 विषय एवं 40-50 ग्रंथों, आचार्यों, कवियों आदि के आधार लिए गए हैं।

इस पुस्तक के विषयों को देखा जाए तो हम कुछ यह पाते हैं –

पूजन-पूजा, निमित्त-उपादान, ईश्वर कर्ता है या नहीं इसका विश्लेषण, सिद्ध भगवान का स्वरूप, मिथ्यात्व, ध्यान, तत्समय की योग्यता, नरक का वर्णन, मनुष्य पर्याय की दुर्लभता, ध्यान और ज्ञान में अंतर, इष्ट – अनिष्ट क्या है, बारह भावना, आलोचना पाठ – इसप्रकार हम एक ही पुस्तक से इतने विषयों को पढ़ सकते हैं तो हम दादा का पूरा साहित्य पढ़ेंगे तो हमें कितना लाभ होगा।

अब हम ग्रंथ/आचार्य/विद्वान/कवि/पूजन/वंदना/भक्ति आदि के आधार पर देखें तो वह कुछ इस प्रकार है –

आचार्य	पण्डित/विद्वान/कवि	पूजन/पाठ/वंदना	ग्रंथ/पुस्तक	अन्य
आचार्य अकलंक	बुधजन जी	आलोचना पाठ	ज्ञानार्णव	माखनलाल चतुर्वेदी
आचार्य अमृतचन्द	भागचन्दजी	दर्शन पाठ	हरिवंशपुराण	गीता
आचार्य रविषेण	बनारसीदासजी	आदिनाथ भगवान की पूजन	राजवार्तिक	कबीर
आचार्य योगीन्द्र	जौहरीजी	महावीर वंदना	नियमसार	बिहारी कवि की सतसई
आचार्य पूज्यपाद			प्रवचनसार	हिन्दू पुराण
आचार्य माघनन्दी			कार्तिकेयानुप्रेक्षा	तुलसीदास
आचार्य कुन्दकुन्द			द्रव्यसंग्रह	सिकंदर बादशाह का दोहा
आचार्य अमितगति			ध्यानसूत्राणि	
			छहढाला	
			महापुराण	
			राजा सत्यंधर की कथा	

यदि एक पुस्तक में इतने विषय एवं आधार है तो दादा का पूरा साहित्य मिला कर गणना की जाए तो कितने विषय एवं कितने आधारों का हमे ज्ञान होगा जरा विचार करियेगा ?

इसलिए हमें निरंतर अध्ययन करना चाहिए। •

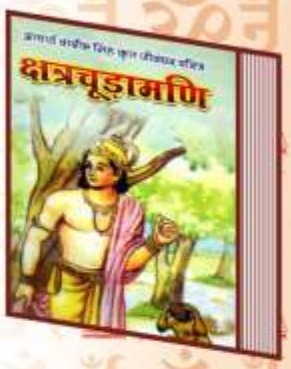

बुरी बात को इस कान से सुनो और उस कान से निकाल दो। उसे गले से निगलो ही मत। निगलने से ही तो पेट में दर्द की संभावना बनती है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

मुझे कुछ कहना है

– प्रो. सुदीपकुमार जैन, नई दिल्ली

आज प्रसंग 'श्रद्धा की अंजलि'
समर्पित करने का है,
और 'श्रद्धेय' भी ऐसे हैं,
जो अपनी 'लघुता' से सबसे बड़े बने थे,
'विनम्रता' और 'सरलता' के बावजूद
सबके 'दादा' थे। वे जब तक थे, हम
सब निश्चिंत थे, अपने बचपने को जी रहे थे।
आज जब वे 'सदेह' हमारे मध्य नहीं हैं,
तब 'अहसास' गहरा रहे हैं,
'बहुत कुछ' कहना चाहता हूँ,
किन्तु, कहने के लिये शब्दकोश
रीता प्रतीत हो रहा है।
फिर भी एक बार बाल-हठ
जोर मार रहा है,
कुछ कहने के लिये। उन सभी से,
जो 'दादा' के 'बड़प्पन' की
छाँव में निश्चिंत थे,
आज वे सभी सहमे से हैं,
सिर से आशीर्वाद का हाथ उठ जाने से,
हमारे विचलित होने पर भी
जिनकी उपस्थिति का अहसास भर बहुत
कुछ लगता था,
आज उनकी रिक्तता की स्थिति में,
मुझे कई लोगों से कुछ कहना है।

(1)

'बड़ा भाई' एक ऐसा अक्षयवट होता है,
जिसकी उपस्थिति भर
हमारा बचपन बरकरार रखती है,
उनकी रिक्तता का अहसास से
आज जिनका 'लघुत्व' छिन गया है,
उन 'छोटे दादा' से कुछ कहना है।
'दादा'! आज आप 'बड़े' हो गये हैं
अपने 'बड़े दादा' की विरासत
आपकी बाट जोह रही है,
कृपया उसे संभालिये
और
हमें ऐसा अहसास तक नहीं होने दीजिये कि
'बड़े दादा' अब हमारे बीच नहीं हैं।

(2)

'सहधर्मिणी' का दायित्व अनुपम होता है;
क्योंकि एकमात्र यही रिश्ता है,
जिससे जुड़कर भी 'धर्म' शब्द
'सगेपन' को ज्ञापित करता है। आपने 'बड़े दादा' की सहधर्मिणी बनकर
सचमुच उस धर्मवृक्ष को 'सींचा' और
'संवारा' था। आज आपकी मन:स्थिति
'अकथनीय' है,
किन्तु बाई!
आपके 'बबलू' अनेकों हैं,
जो आपके पूर्ववत्
निश्छल-स्नेहामृत के लिये लालायित हैं।
आपसे विनती है कि कृपया आप
अपनी बड़ी-भूमिका को अपनाइये
और
हम सबकी 'धर्ममाता' बनकर
हमें पहले की तरह डाँटिये, दुलारिये
व दादा की कमी का
अहसास तक मत होने दीजिये, हम सब भी
वचनबद्ध हैं कि
आपके 'वरद-हस्त' को
कभी कंपित नहीं होने देंगे।

(3)

प्रिय बबलू!
मुझे तुम्हारे वे लरजते हुये शब्द कर्णकुहरों में
अब भी गूँज रहे हैं कि
'सुदीप जी! दादा नहीं रहे'
इन शब्दों के पीछे निहित तुम्हारी
मनोव्यथा को मैं महसूस करता हूँ;
परन्तु भाई! मेरे,
अब पुन: यह बात कभी मत कहना, वे
'नश्वरकाय' से 'यश:काय' अवश्य बने हैं,
किन्तु आज हर हृदय में
उनकी उपस्थिति मूर्तिमती है।

हम सबके हृदयपटलों पर अंकित
'बड़े दादा' को निहारो तुम
और उनके इस देहवियोग को
एक संकल्प की तरह लो,
क्योंकि
'अभिशापों में वरदानों के
सुन्दर-फूल खिला करते हैं'
बाबूजी के ये शब्द तुम्हारी ऊर्जा बनें और
हम सब तुम्हारे सफ़र के संगी हैं।

(4)

मुझे उनके शिष्य-समुदाय से भी
कुछ कहना है,
जो दूर होकर भी
अपने 'बड़े दादा' के संवेदन को
कभी विस्मृत ही नहीं कर सका था,
आज उसे लग रहा है कि
वास्तव में 'बड़े दादा'
आज 'सदेह' हमारे पास नहीं हैं,
वे 'विदेह' बनने के मार्ग पर
अग्रसर अवश्य हुये हैं,
परन्तु हमारी संवेदनाओं में
उनकी हर बात आज भी,
अभी भी प्रतिध्वनित है,
सचेत होओ, सुनो कि
हमें बड़े दादा ने क्या कहा है?
समझो उसे,
और दृढप्रतिज्ञ बनकर
उसे पूरा करने का संकल्प लो,
'बड़े दादा' के अहसास को
और अधिक प्राणवन्त बना दो, तथा
उनके निर्देशों को
अपनी चर्या में जीवन्त बना दो।

(5)

अन्ततः 'मुमुक्षु-जगत्' से भी
मुझे कुछ कहना है
मेरे आत्मीय साधर्मीजनो!
आज संकल्प उठाओ कि
हम 'बड़े दादा' की हर संवेदना को
अपने स्वरों में ढालेंगे,
उनके अहसास को
और अधिक जीवन्तता के साथ मूर्तिमान्
बनायेंगे।
'पूज्य गुरुदेवश्री' के 'प्रभावना-योग' के
ये स्तम्भ अब धीरे-धीरे
अपनी आयु पूर्ण कर रहे हैं। हम सभी का
कर्त्तव्य बनता है कि
पूज्य गुरुदेवश्री के द्वारा प्रदर्शित-पथ को
यावज्जीवन 'बड़े दादा' की
निष्ठा के अनुरूप अपने जीवन में आदर्श
बनाकर जियें
और जन-जन में
'यावच्चन्द्र-दिवाकरौ' के संकल्प के साथ
गतिशील करें।

रतन से पारसमणि हुए

शाश्वत बालिका - समय सत्य प्रधान शास्त्री द्वितीय वर्ष

वट वृक्ष बने, खुशहाल किया,
विद्या से पूरित लिए हिया।
रतन नहीं पारस महिमा,
तब दादा नाम पुकार हुआ।।
गुरुवाणी जन हृदय पटल
अंकित उसको की हर पल।
गाथाएँ भी अध्यात्ममयी,
अध्ययन तब हो गया और सरल।।
तुम उपकारी उपकार किए,
हम छात्रों का उद्धार किए।
प्रेरणामयी वाणी ऐसी थी,
जन सैलाब को अपने पास किए।।

(जो अध्यात्म जगत में क्रान्ति लाए, जिनके उपन्यासों को पढ़ जन-जन अध्यात्म से जुड़ने लगा प्रथमानुयाग को जिन्होंने अलग ढंग से उभारा ऐसे हमारे प्रिय बड़े दादा को शाश्वतधाम की बालिकाओं की ओर से सादर श्रद्धांजलि।)

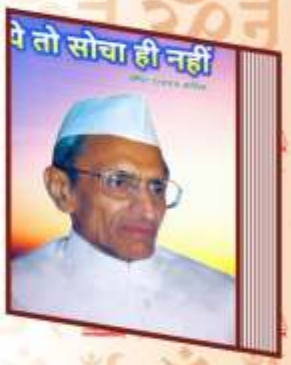

मांसाहारी पशुओं की मजबूरी की बात तो समझ में आती है, परन्तु यह समझ में नहीं आता कि मनुष्य को ऐसी क्या मजबूरी है जो मांसाहार करता है। मनुष्य तो प्रकृति से शाकाहारी ही है। मांस उसके दांतों और आतों के भी अनुकूल नहीं है।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

मैंने देखा है

आपको पूजन-प्रवचन करते हुए, कक्षाएँ लेते हुए मैंने देखा है
पर टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर रहते हुए
किसी को डाँटते-डपटते हुए नहीं देखा है।
आपने महाविद्यालय के छात्रों में अनुशासन का बीज अंतस् में बोया था, बाहर में रोपा नहीं था
इसलिए अनुशासन का वह पौधा कभी कुम्हलाया नहीं,
अपितु नित नव-नव पल्लवित, प्रफुल्लित, फलभरित होता रहा।
आपने व्यवहार को फूल की तरह पाला
फूल खिलता रहा, खिलता रहा और
फलने का समय आने पर खुद झड़ गया।
फूल के बिना फल का क्या अस्तित्व होगा?
क्या रूप होगा और क्या गंध होगा?
आपने यह कहा, यह कहना व्यवहार है
पर व्यवहार के बिना निश्चय का क्या स्वरूप होगा?
व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग के दो चरण हैं
जिनका व्यवहार सही है, उनका निश्चय भी सही है
यही मोक्षमार्ग की पगडंडी है।
आप हमें अनाथ कर गए हैं यह कहना व्यवहार है
पर इस व्यवहार के बिना निश्चय भी सही नहीं है।
आपने जीवनभर व्यवहार और निश्चय को बराबर निभाया।
आपकी आगामी यात्रा मंगलमय हो
आपको शीघ्र ही शिवपद की प्राप्ति हो
यही हमारी मंगल कामना है।

– बाहुबली भोसगे, कर्नाटक

दीप यूँ जलते रहेंगे

दीप यूँ जलते रहेंगे, फिर कमल खिलते रहेंगे।
वक्त की अंगड़ाइयाँ हैं, चुभ रही तन्हाइयाँ हैं।।
ठहरी शीतल सी हवाएँ, गीत कैसे गुनगुनाएँ।
रे अचल अब देख ले तू, सब बदलते ही रहेंगे।।
दीप यूँ जलते रहेंगे .....
दीप कुछ तो बुझ गए हैं, कुछ दियों में कशमकश है।
घोर तम की चाप गहरी, पर निशाना दूर तक है।।
घोर मावस कालिमा में, रत्न निकलते ही रहेंगे।
दीप यूँ जलते रहेंगे .....
दूरियां दिल की मिटा दें, सांध सारी ही हटा दें।
स्वर्ण दिनकर की सुआभा से निजालय को सजा दें।।
दो कदम हम तुम बढाएँ, मार्ग मिलकर ही रहेंगे।
दीप यूँ जलते रहेंगे .....
जो थे कल तक मुस्कुराते, आज तन्हा कर गये हैं।
त्याग दे मदहोश निद्रा, संदेश सा वे दे गए हैं।।
ज्ञान के नवगीत होंगे, वे जहाँ पर भी रहेंगे।
दीप यूँ जलते रहेंगे .....
ये रतन तो सूर्य सा था, हो न इसका ओज ओझिल।
इस रतन से अनगिनत से दीप हो गये हैं सु झिलमिल।।
रच दिया इतिहास अनुपम, शब्द सारे कम पड़ेंगे।
दीप यूँ जलते रहेंगे .....
रत्न आभा हुई ओझिल, दीप बन हमको जगाया।
जीव को जीवन्त करने वाले को अब मौन भाया।।
क्या लिखूँ कितना लिखूँ, मैं आँसू छलकते ही रहेंगे।
दीप यूँ जलते रहेंगे, फिर कमल खिलते रहेंगे।।

– विराग शास्त्री, जबलपुर

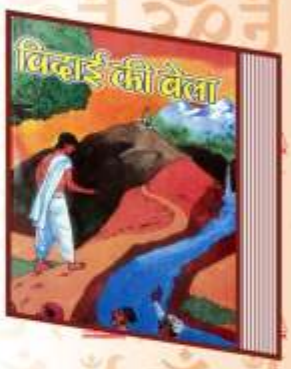

मुक्ति का मार्ग कितना सरल, कितना सहज है? वस्तुतः मुक्त होने के लिए बाहर में कुछ भी तो नहीं करना है। पर में कुछ करने में तो धर्म है ही नहीं, पर से तो मात्र हटना है और स्व में मात्र लगना है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

आ. बड़े दादा के जन्मदिवस सहजता दिवस पर -

एक छोटी सी शाब्दिक श्रद्धांजलि!

वे निश्छल थे!
बड़े सरल थे!!
चट्टानों-सी दृढ़ता वाले,
सागर जैसे बहुत तरल थे!!
आकर्षण के अन्धेरों में,
निर्लिप्ति की तेज किरण-से,
और सहजता की धरती पर,
उन्नत मन के नील गगन-से।।
जग में रहने वाले! जग से,
कितने निश्छल,
बड़े अटल थे!! वे निश्छल...!!
अद्भुत प्रतिभा, वाणी निर्मल,
अधरों पर मुस्कान निराली।
चेहरे पर था ओज केन्द्र में,
सच्ची दृष्टि परखने वाली।।
पाषाणों में मूर्ति चुनते,
आशाओं के
शीशमहल थे!! वे निश्छल ...!!
ज्यों बुद्धि, व्यवसाय भी वैसे
फिर सहाय, भवितव्य भी ऐसे।
होने वाला, होकर रहता,
लग जाओ! भगवान के जैसे!!
इन भावों के फल को कहकर
बेला विदाई में
बहुत अचल थे!! वे निश्छल..!!
सबका आना - जाना निश्चित,
अनुबन्धी आधार यही था!
चेतो! लगो! धर्म मार्ग में,
अन्तिम भी सन्देश यही था!!
स्वर्णपुरी के रत्नाकर में,
अध्यातम के
स्वर्ण-कमल थे!! वे निश्छल..!!

- गणतंत्र ओजस्वी, आगरा

प्रकृति के अनुपम उपहार आ. बड़े दादा

संस्कार की बगिया में जिन्होंने हमको महकाया।
तत्त्वज्ञान के सिवा जिन्हें और कुछ भी रास नहीं आया।।
जिनका जीवन संघर्षों की इक आदर्श कहानी है।
लिखने की जो सोच रहा मैं ये मेरी नादानी है।।
सज्जनता की प्रतिमूर्ति, न्याय-नीति के पथ पर हो।
जिनशासन के उन्नायक हो, तुम प्राचीन धरोहर हो।।
जिनका जीवन उपमाओं और उपमानों से आगे है।
जिनका जीवन कागज के इन सम्मानों से आगे है।।
जिन्होंने चिन्तन की गहराई में खुद को समा लिया।
जिन्होंने जिनवाणी को अपनी साँसों में बसा लिया।।
जिनसे पावन ना तो ये गंगा-यमुना का जल होगा।
भावों में गर छल होगा तो भावों का क्या फल होगा।।
चेतन अपनी ओर निहारो बाहर बड़ा झमेला है।
जिनकी कृतियों में सबसे अद्भुत विदाई की बेला है।।
जिनसे आंगन की रौनक है, जिनसे ही फुलवारी है।
जिनकी सेवा में हाजिर ये सूर्य-रश्मियाँ सारी है।।
मैं लिखूँ आपको महापुरुष मैं नवयुग का अध्याय लिखूँ।
मैं लिखूँ प्रखर दिनमान तुम्हें मानवता का पर्याय लिखूँ।।
ग्रह-नक्षत्र-सितारे शोकाकुल बैठे थे प्रांगण में।
मानो चाँद उतर आया हो स्मारक के आंगन में।।

- संयम जैन, गुढाचन्द्रजी (शास्त्री द्वितीय वर्ष)

कल भी थे कल भी होंगे दादा

- समकित शास्त्री, खनियांधाना

किसने कहा अब नहीं है दादा, कल भी थे कल भी होंगे दादा।
ऊँचे कद ऊंचे पद वाले, इतने ही उच्च आचारों वाले।
उच्च विचार और जीवन सादा, कल भी थे कल भी...
सहज, सरल जीवन वाले वो, जिनवाणी की राह चले जो।
तत्त्वप्रचार का जिनका वादा, कल भी थे कल भी...
हम सबको संस्कार दे दिए जिनश्रुत घन का सार जो दिए।
प्राचार्यत्व से महाविद्यालय साधा, कल भी थे कल भी...
पूर्ण रीति-नीति से रहते, अपनी धुन में मस्त वो रहते।
बोलते कम और चिंतन ज्यादा, कल भी थे कल भी...
कई ग्रन्थों का मर्म लिख दिया, सरल शैली में धर्म लिख दिया।
आत्मानुभूति बस एक इरादा, कल भी थे कल भी...
सत्य मार्ग पर अड़े वह रहे, लघुता से वह बड़े बन गए।
अजर अमर है जिनकी गाथा, कल भी थे कल भी...

भगवान आत्मा आधि-व्याधिजनित पीड़ा से सर्वथा पृथक ही हैं; क्योंकि आत्मा राग और रोग दोनों से पृथक हैं। इसकारण ज्ञानी को वेदना होते हुए भी वेदना जनित भय नहीं होता और शरीर तो व्याधि का ही मन्दिर हैं, रोगों का ही घर हैं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

सदा अमर रहेंगे...

आदरणीय बड़े दादाजी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, उनकी सद्गति की कामना तो मैं नहीं करूँगा; क्योंकि वह तो निश्चित ही होगी, इस बात में कोई संदेह नहीं है। मैं तो बस इतना कहना चाहता हूँ कि निश्चित ही उनका देह विलय हुआ है; परन्तु वे हमारे हृदय-पटल पर अपनी रचनाओं के माध्यम से सदा अमर रहेंगे।

हरदास पिता के ज्येष्ठ पुत्र, जो जग के उपकारी हैं।
रतनचंद जी नाम आपका, यथा नाम गुणधारी हैं।।
रत्नाकर को समझा उनने, रत्नत्रय व्यापार किया।
शुद्धातम की बात बताई, गणधर का उपकार किया।।

देह विलय हुआ है निश्चित, पर वो तो हैं अनादि-अनंत।
अमर रहेंगे हृदय पटल पर, कृतियों से हैं वे जीवंत।।
अनुवाद रचना सम्पादन, ऐसे आपके ग्रंथ अनेक।
सरल भाषा में अनुबद्ध हैं, करता हूँ उनका उल्लेख।।

गुजराती से हिन्दी किया, और सम्पादन का किया है काम।
अभूतपूर्व हैं वे सब कृतियाँ, सुनलो पहले उनके नाम।।
'समाधि-शतक' 'पदार्थ विज्ञान', 'सम्यग्दर्शन' अरु 'भक्तामर'।
इन सबको समझाया उनने, भर दिया गागर में सागर।।

कहान गुरु ने छुपे हुए जिस, गूढ रहस्य को बतलाया।
दादाजी ने उस रहस्य को, गुजराती से हिन्दी में समझाया।।
ना रही अब कोई शंका, हो गया सब कुछ स्पष्ट।
गुजराती से हिन्दी कर दिया, लगभग 6 हजार पृष्ठ।।

अहिंसा महावीर की दृष्टि में, क्या है जन-जन को बतलाया।
अहिंसा के पथ पर उन्होंने, चलना हम सबको सिखलाया।।
गुणस्थान विवेचन बतलाकर, विचित्र महोत्सव बतलाया।
'प्रवचनरत्नाकर' का अमृत बरसाकर, धरमरूपी पुष्प खिलाया।।

ये तो हुआ गुजराती से हिन्दी, और सम्पादन का काम।
सुनलो अब दादाजी की, मौलिक कृतियों के नाम।।
'साधना समाधि और सिद्धि', सर्वोत्कृष्ट काम है जीवन का।
सरल साहित्य लिखा आपने, दूर किया संशय मन का।।

'चलते-फिरते सिद्धों से गुरु' ने, 'सुखी जीवन' का मार्ग बताया।
'द्रव्यदृष्टि' का विषय बताकर, 'जिनपूजन का रहस्य' बताया।।
'शलाका पुरुष' 'हरिवंश कथा', और 'क्षत्रचूड़ामणि परिशीलन'।
'पंचास्तिकाय पद्यानुवाद', और लिखा 'षट्कारक अनुशीलन'।।

समयसार मनीषियों की दृष्टि में, बोलो किसने बतलाया।
'जम्बू से जम्बूस्वामी तक', पूरा चरित्र चित्रण बतलाया।।
'नींव का पत्थर' आप हि हो, आप हि हो पहली पाठशाला।
जब से मैंने होश सम्हाला, पढी 'बालबोध पाठमाला'।।

'जिन खोजा तिन पाईयां', वह मुक्तिपुरी को जायेगा।
गर रहा 'संस्कार' साथ तो, पर से एकत्व हट जायेगा।।
'णमोकार महामंत्र' को समझो, कर लो पंच प्रभु का ज्ञान।
'तीर्थंकर स्तवन' भी कर लो, कर लो आतमप्रभु का ध्यान।।

पर में सुख को खोजा मैंने, निज में ही अब खोज रहा हूँ।
कर्ता माना पर को मैंने, अब 'जान रहा हूँ देख रहा हूँ'।।
पर में सुख माने मूढ हुए, 'पर से कुछ भी संबंध नहीं'।
'ऐसे क्या पाप किये' हमने, 'ये तो कभी सोचा ही नहीं'।।

'सामान्य श्रावकाचार' न जाने, सोचो उनका क्या होगा।
'यदि चूक गये तो' अपने, 'इन भावों का फल क्या होगा'।।
'अमित' अनादि भव सागर में, संसार दुःखों का मेला है।
जो करना है जल्दी कर लो, जीवन तो 'विदाई की बेला' है।।

ये थी आपकी अमर साधना, ऐसे थे अद्भुत योगी।
नहीं कामना सद्गति की, वो तो निश्चित ही हुई होगी।।

– अमित शास्त्री, गुना

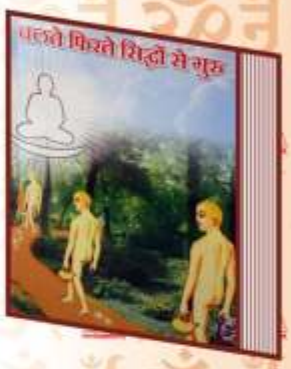

शराब पीकर मूर्च्छित हुआ या मोह में मूर्च्छित दोनों में कोई अन्तर नहीं है. मूर्च्छा तो दोनों में हुई न। अतः मोही जीव का मोह भी एक प्रकार से शराब पीने जैसा व्यसन ही है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

वो सच्चे नायक थे

है नहीं अभी वो पास यहाँ जो सहज पुरुष कहलाये थे।
जीवन जिनवाणी में बीता सचमुच वो सच्चे नायक थे।।
प्रथमानुयोग शैली न्यारी हंसमुख ही दिखने वाले थे।
हो भले कभी प्रतिकूल समय वो कभी न डिगने वाले थे।।
दो कदम नहीं चल पाये कि बाधकजन मग में आये थे।
पर धीर-वीर वे रहे सदा इसलिए सफल हो पाये थे।।
द्वय-भ्राता का संघर्ष देख जग ने भी शीश झुकाए थे।
लिख-लिख आगम की वो बातें जग-जन के हृदय समाए थे।।
नि:स्वार्थ सरल जीवन जिनका बस एक ही सीख सिखाते थे।
जल भिन्न कमल शुद्धात्म सिद्धि सर्वज्ञों की जो गाते थे।।
है हुकुम चलाया कभी नहीं वो स्वयं कार्य निर्णायक थे।
जीवन्त रहेंगे सदा हृदय वे सबके मन को भाये थे।।
है धवल वस्त्र मन स्नेह भरा वे मानव जग के नायक थे।
विस्मृत न होने दूंगा मैं वे हम सबके गुरु नायक थे।।

– अभिषेक जैन, देवराहा

बड़े दादा के लिये...

(द्रुतविलम्बित)

विगतशक्तिरपि प्रवच: पपौ,
भगवतस्सदसञ्च समुद्यत:।
सहजशान्तसुहासपुमानयम्
"रतनचन्दगुरु"-र्जयतात् सदा।।

(उपजाति)

वात्सल्यरत्नं, जिनधर्मरत्नं,
प्रज्ञानरत्नं लिपिकर्मरत्नम्।
नष्टे शरीरेऽपि न तस्य नाश:,
अस्त: कथं तर्हि वदैष रत्न:।।

1. जिन्होंने (शारीरिक) शक्ति नहीं होने पर भी जिनवचनों का पान किया, जिनायतन में जाने को सदा उद्यत रहे, सहज, शान्त और सुन्दर स्मित वाले आदरणीय गुरु रतनचन्दजी जय को प्राप्त हों।

2. जो वात्सल्य के रत्न हैं, जिनधर्म के रत्न हैं, ज्ञानरत्न हैं, लेखन में रत्न हैं - शरीर के नाश होने पर भी उनका नाश नहीं हुआ - तो कहो, यह रत्न कैसे नष्ट हुआ? (अर्थात् नहीं हुआ)।

– विपाशा जैन (साहित्याचार्य),
शाश्वतधाम, उदयपुर

विभिन्न संस्थाओं की दृष्टि में

सुबोध शैली के धनी

– पूज्य श्री कुन्दकुन्द कहान धर्मरत्न पण्डित श्री बाबूभाई मेहता दिगम्बर जैन सत्समागम पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, चैतन्यधाम, गांधीनगर (प्रमुख श्री – अमृतलाल चुन्नीलाल मेहता, उपप्रमुख–अनिलकुमार ताराचन्द गांधी, मंत्री श्री राजूभाई वाडीलाल शाह, मंत्री श्री प्रतीकभाई चंद्रकांत शाह)

आपका सम्पूर्ण जीवन जिनशासन की प्रभावना में व्यतीत हुआ, जिसमें पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट में रहकर भावी सिद्धों का मोक्षमार्ग प्रशस्त करने में एवं पामर से परमात्मा बनाने की विधि के आप विशेष शिल्पी रहे हैं।

आपका सरल व्यक्तित्व, सहज जीवन, सुबोध शैली के धनी, श्रेष्ठ वक्ता, अपनी कुशल लेखनी के माध्यम से जिनधर्म के रहस्योद्घाटन करने वाले, हजारों शास्त्री विद्वानों के सर्जक तथा आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार से सम्मानित – ऐसे आदरणीय बड़े दादाजी आपने यह धर्म प्रभावना केवल आप तक सीमित न रखते हुए धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवीजी, पुत्र शुद्धात्मप्रकाशजी, पौत्र सर्वज्ञ भारिल्ल को भी इस मार्ग हेतु सदैव प्रेरित किया, जिसके कारण से आज देश-विदेश में समस्त मोक्षार्थी जीव तत्त्वज्ञान से लाभान्वित हो पा रहे हैं। छोटे भ्राता आदरणीय डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं आप दोनों की जोड़ी ने न केवल मुमुक्षु समाज को, अपितु समस्त दिगम्बर जैन समाज को तत्त्वज्ञान के प्रति उत्साहित किया। ●

सौम्यता की प्रतिमूर्ति

– श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल ट्रस्ट, खुरई एवं श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, खुरई

श्रद्धेय बड़े दादा सरल स्वभावी, सरल एवं निर्भीक वक्ता, मृदुभाषी, बाल रुचिकर साहित्य के सृजनकर्ता, पितृतुल्य व्यक्तित्व, वात्सल्यमूर्ति, सौम्यता की प्रतिमूर्ति, कुशल लेखक, सुयोग्य प्रशासक, सर्वदा हंसमुख स्वभावी होने के साथ-साथ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के यशस्वी प्राचार्य पद को सुशोभित करते रहे, उनके जाने से मानो वसुन्धरा प्राचार्य रहित हो गई हो।

आदरणीय बड़े दादा के द्वारा किये गये सृजनात्मक कार्य जैसे आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समयसार ग्रन्थ के प्रवचनों को सुनकर 'प्रवचनरत्नाकर' के रूप में अध्यात्म रत्नाकर प्रदान करने का कार्य तो तत्त्वपिपासु जीवों को 'इन भावों का फल क्या होगा?' लिखकर संसार से विरक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। आपके द्वारा लिखित 'बालबोध पाठमाला भाग-1' बच्चों को 'संस्कार' देने का कार्य करती है तो दूसरी तरफ 'णमोकार मंत्र' को आराध्य मानने वाले जीवों को 'जिनपूजन रहस्य' के माध्यम से 'सामान्य श्रावकाचार' सिखाते हुए 'मैं जान रहा हूँ देख रहा हूँ' का बोध कराते हुए 'विदाई की बेला' का भी पाठ पढाती है।

ऐसे अनेकानेक पुस्तकों के लेखक, अनेकानेक शास्त्री विद्वानों के जनक, श्री टोडरमल स्मारक भवन के आधार स्तम्भ को सम्पूर्ण भारतवर्ष की समाज कभी विस्मृत नहीं कर पायेगी। अपने प्रारंभिक समय में गुरुकुल को भी आपका मार्गदर्शन एवं खुरई जैन समाज को आपका लाभ प्राप्त हुआ, जिसके लिये हम हमेशा ऋणी रहेंगे। ●

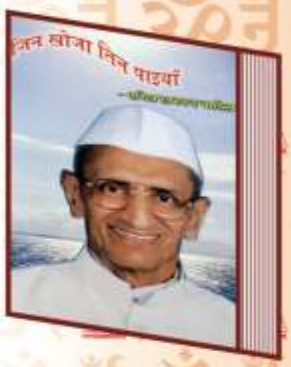

कोई अपने मनोविकारों को कितना भी छिपाये, पर चेहरे की आकृति हृदय की बात कह ही देती है। खोटी नियत जाहिर हुए बिना नहीं रहती और खोटी नियत का खोटा नतीजा भी सामने आ ही जाता है।

– पं. रतनचंद भारिल्ल

अपना जीवन धन्य किया

– अजितप्रसाद जैन (अध्यक्ष-श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, दिल्ली)

वात्सल्य एवं करुणा के धनी, अध्यात्म के प्रवक्ता, जन-जन के हृदय में जैनधर्म का जयघोष करने वाले, जिनशासन जयवंत वर्ते -ऐसी भावना से जीवित रहने वाले, जिनधर्म की पताका को हमेशा लहराने वाले, जिनधर्म की जन-जन में धार्मिक एवं सामाजिक संचेतना जगा देने वाली ऐसी अद्भुत रचनाएँ करने वाले, हमेशा मुस्कराते रहने वाले, हम सबके हृदय के हार, मस्तक के ताज आदरणीय बड़े दादाजी के देहांत का समाचार सभी साधर्मीजनों को वैराग्य जननी बारह भावनाओं के मंगल चिंतन का अवसर दे रहा है।

संसार का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि जन्म-मरण के झकझोरों में घूमता रहता है, किन्तु ज्ञानी का मरण नहीं होता है। वह तो अपने शुद्ध आत्मा की चकाचौंध में अनुभूति के बल पर अपना जीवन जीता रहता है। सच में ऐसा ही अद्भुत जीवन तत्त्वज्ञान के बल पर जीकर आदरणीय बड़े दादाजी रतनचंदजी भारिल्ल ने अपना जीवन धन्य किया। ●

साहित्य जगत में अविस्मरणीय योगदान

– श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट एवं ज्ञानोदय दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, दीवानगंज (म.प्र.)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा उद्घाटित वीतराग जिनधर्म के प्रवर्तक, अध्यात्म रत्नाकर हजारों शास्त्री विद्वानों के जीवन शिल्पी आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के आकस्मिक देह वियोग से संपूर्ण देश-विदेश की मुमुक्षु समाज को गहरा आघात लगा है। आदरणीय पण्डितजी पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य आराधक, स्वाध्यायी सरल हृदय अध्यात्म के प्रति गहरी रुचि रखने वाले, बाल सुलभ साहित्य के जनक महान व्यक्तित्व थे। आपके द्वारा पूज्य गुरुदेव श्री जीवन दर्शन एवं वाणी को अपने जीवन की अमूल्य धरोहर मानकर आजीवन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये देश के कोने-कोने में अलख जगाने का अभूतपूर्व कार्य प्रशस्त किया, साथ ही पण्डित टोडरमल स्मारक महाविद्यालय में शुरुआत से वर्तमान तक प्राचार्य पद पर रहकर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। साहित्य जगत में आपके द्वारा अविस्मरणीय योगदान दिया, जिसमें हमारे 'श्री ज्ञानोदय तीर्थधाम' के प्रति आदरणीय पण्डितजी साहब के अगाध प्रेम के साथ-साथ अमूल्य निर्देशन भी समय-समय पर प्राप्त हुआ। ●

व्यवहार कुशल व्यक्तित्व

– डॉ. महेन्द्र सिंह डागा (अध्यक्ष), डॉ. के. एल. जैन (मानद महासचिव) राजस्थान चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री के पदाधिकारी व सदस्यगण, जयपुर

पण्डित रतनचंदजी विनम्र, संवेदनशील, मृदुभाषी, मिलनसार और व्यवहार कुशल व्यक्तित्व के धनी थे। धर्म व कर्म के प्रति उनकी दृढ आस्था थी। उन्होंने अपने आचरण में हमेशा मूल्यों को वरीयता दी। उनकी कर्तव्य-निष्ठा सर्वत्र प्रशंसनीय रही। दीन-दुखियों के प्रति उनके मन में सदैव दया भाव रहता था और उनकी सहायता को वे हमेशा तत्पर रहते थे। वे अध्यात्मरत्नाकर, आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार से सम्मानित जैनधर्म के मूर्धन्य विद्वान एवं श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य थे। उनका निधन आपके परिवार के साथ ही समाज एवं मानवता की अपूरणीय क्षति है। ●

सादा जीवन उच्च विचार

– तीर्थधाम सिद्धायतन परिवार, द्रोणगिरि, छतरपुर

आदरणीय पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल सादा जीवन उच्च विचार के प्रत्यक्ष प्रतीक रूप में अवस्थित थे। इनमें सरलता, मृदु भाषण एवं स्पष्ट कथन आदि अनेक ऐसे गुण थे, जिनके द्वारा इनका व्यक्तित्व मानवीय जीवन से भी उच्च हो गया था।

सदा भारतीय परिधान में दिखने वाले एक महामान्य, जिनके आचार्यत्व में अनेक शिष्यगण संस्कारित होकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं।

आपने आजीवन अपना कार्यक्षेत्र शिक्षा जगत को रखा। शिक्षण के साथ-साथ सरल सुबोध एवं आकर्षक शैली में साहित्य रचनाकर, जिनवाणी माँ की सेवा के साथ-साथ मानव समाज का मार्गदर्शन किया। ●

विदाई की बेला

– अजितप्रसाद जैन (अध्यक्ष-श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन शासन प्रभावना ट्रस्ट, इन्दौर)

तीर्थधाम ढाइद्वीप जिनायतन से आपका अपार स्नेह था। समय-समय पर आपका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा, आप तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन भी पधारे, आज आपके जाने से न केवल मुमुक्षु समाज अपितु सम्पूर्ण जैन समाज में अपूरणीय क्षति हुई है।

मुमुक्षु समाज को आपके माध्यम से प्रवचनों, आध्यात्मिक साहित्य, आपके वात्सल्य का अपार लाभ प्राप्त हुआ है। आपके द्वारा दिये गये तत्त्वज्ञान की पूँजी को हम अपने जीवन में आत्मसात कर उसे जन-जन तक पहुँचाएंगे - ऐसा हम प्रण करते हैं। आपके लिये यही सच्ची श्रद्धांजलि एवं विनयांजलि है। ●

सच्चे एवं अच्छे धर्मविद्या गुरु - हमारे बड़े दादा

– सुमेरचंद बेलोकर (ट्रस्टी-गजपंथा फाउन्डेशन ट्रस्ट)

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।

यथार्थ ज्ञान सच्चे गुरु से ही मिलता है। वास्तव में हमारे बड़े दादा अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंदजी सच्चे एवं अच्छे धर्मविद्या गुरु थे। बात है सन् 1975 की, तब मेरी उम्र 16 साल की थी, मुझे छिन्दवाड़ा में ग्रीष्मकालीन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ मेरा जाना अनियोजित था, इसलिये मैं 2-3 दिन लेट पहुंचा व बड़े दादा से मिला तो उन्होंने बड़ी सहजता से व प्रेमभाव से प्रवेश दिलाया। उनका भोलाभाला चेहरा, विद्यार्थियों के प्रति आत्मीयता व मधुर वार्तालाप मुझे आज भी याद है। जैन तत्त्वज्ञान व सिद्धांत वे बड़े ही सरलता से एवं शांति से पढाते थे। यह शिविर मेरे जीवन में जैनधर्म की रुचि निर्माण करने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। बड़े दादा के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही मेरी पत्नी व तीनों बेटियों ने बालबोध शिक्षण-प्रशिक्षण पूरा किया।

हम आपके ऋणी हैं। आपको शत-शत वंदन। ●

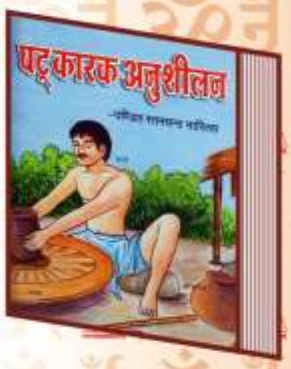

पैसे का आना-जाना तो पुण्य-पाप का खेल हैं। पुण्योदय से छप्पर फाड़कर चला आता हैं और पापोदय से तिजोड़ी तोड़कर चला जाता हैं।

- पं. रतनचंद भारिल्ल

मेरा धाम

शुद्धातम है मेरा नाम
मात्र जानना मेरा काम।
मुक्तिपुरी है मेरा धाम,
मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम।।

जहाँ भूख का नाम नहीं है,
जहाँ प्यास का नाम नहीं है।
खाँसी और जुखाम नहीं है,
आधि व्याधि का नाम नहीं है।।

सत् शिव सुन्दर मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम।।

स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे,
निज आतम का ध्यान धरेंगे।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे,
चिदानन्द रस पान करेंगे।।

सब सुखदाता मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम।।

– पण्डित रतनचंद भारिल्ल

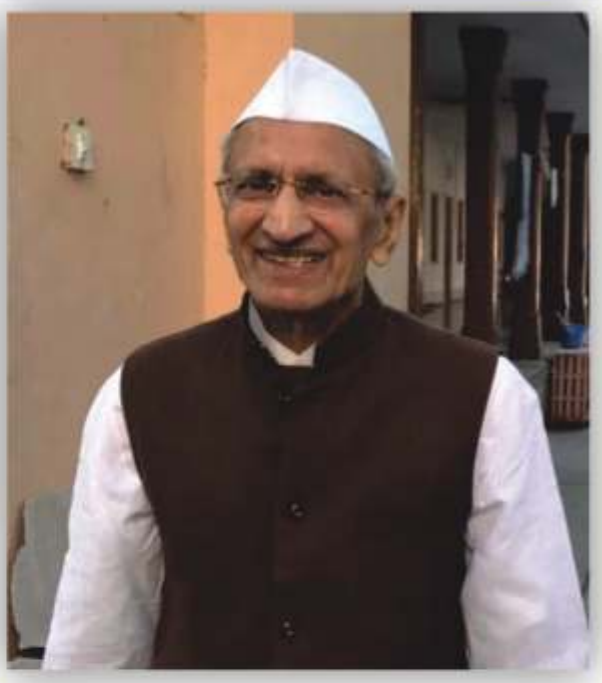

श्रद्धांजलि सभा

श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर, दिनांक 14 नंवबर 2019

17 नवंबर - 2 दिसंबर 2020, कुल पृष्ठ : 148, मूल्य : 2\- आर. एन. आई. 31109/77 JaipurCity / 224 / 2018-20

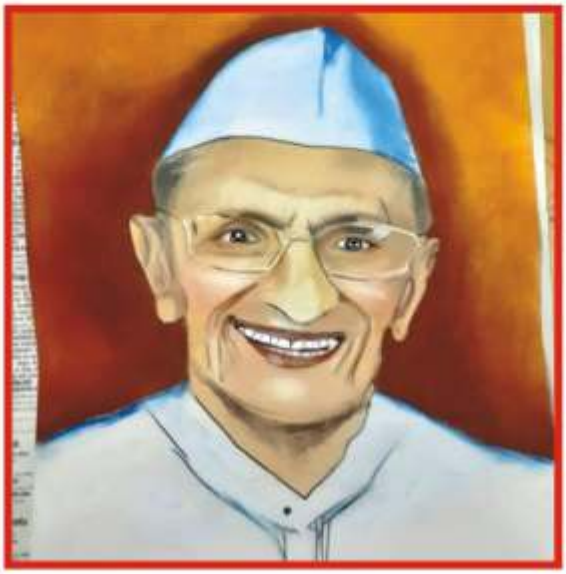

भारतीय अध्यात्म दर्शन साहित्य सृजन में आपके द्वारा दिए गये योगदान को हमेशा याद किया जायेगा। – माननीय अशोक गहलोत, मुख्यमंत्री राजस्थान

संस्थापक सम्पादक :
अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंद भारिल्ल

सम्पादक : डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.

सह-सम्पादक : पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल

प्रकाशक व मुद्रक : ब्र. यशपाल जैन द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन :(0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur67@gmail.com

प्रकाशन तिथि : 28 नवम्बर 2020

प्रति,